

चतुर्दिक्



राजकमल प्रकाशन

दिल्ली ६

पटना ६

चतुर्विक्

शिवप्रसाद सिंह

मूल्य रु० १२ ००

© डा० शिवप्रसाद सिंह

प्रथम संस्करण १९७२

प्रकाशक राजवमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड,

८ फ़ाज बाजार, दिल्ली ६

मुद्रक जी० आर० कम्पोजिंग एजेंसी द्वारा

शाहदरा प्रिंटिंग प्रेस, बे १८, नवीन शाहदरा दिल्ली ३२

आवरण हरिप्रकाश श्यामी

आदरणीय प० वाचस्पति पाठक को

उनके अरसठवें जन्म दिन

२५ सितम्बर के अवसर पर

‘चत्वारि वाक् पदानि’

ऋग्वेद में वामदेव ऋषि ने एक अदभुत दृश्य का साक्षात्कार किया। उन्होंने देखा कि एक महावपुष आकाश में हुंकार रहा है। उसकी चार सीमें हैं तीन पर हैं, दो शिर हैं, और सात हाथ हैं। त्रिधा बँधा होने पर भी वह उछल रहा है और उसकी गजना से उच्छलित अमृत पूरी सृष्टि के मत्स्य जनो को रससिवा बना रहा है।

वाक् की ऐसी अदभुत कल्पना शायद ही किसी और देश के किसी तत्त्व दर्शी ने की हो। परा, पश्यन्ती मध्यमा और वैखरी में विभक्त यह चार पदों वाली वाक् ही सम्पूर्ण विद्या की जननी है। समूचे विश्व में साहित्य के रूप में जो भी रचा जाता है, उसका जन्मदाता यही महावपुष रब है जो प्रणव है और उसके उत्स हैं रुद्र। इसीलिए रुद्र को सभी आत्माओं में व्याप्त वाक् रस का समुद्र कहा गया है। सर्वांतरात्मा रुद्रो वाग्रससमुद्र।

मैंने जब ‘चतुर्दिक्’ नाम की कल्पना की तो मेरे मन में चार प्रकार के त्रिधा के मात्र सकलन की बात नहीं थी। यह सही है कि इस सकलन में चार तरह के ललित निबन्ध संग्रहीत हैं, किन्तु इन निबन्धों को इस मोटे वर्गीकरण में रख देने मात्र से ही मेरे भीतर का रुद्र वाग्रससमुद्र प्रसाद को प्राप्त नहीं होता उसे मनचाही प्रसन्नता और सन्तुष्टि नहीं मिलती। और इसे चाहे तो रचयिता का मोह कह सकते हैं क्योंकि रचना भी एक प्रकार का सज्जन है और हमेशा ही मोह विद्ध होने के कारण होता है।

पर क्या इस मोह को जान लेने में कोई हानि है? हाँ यह आप कह सकते हैं कि आपके पास निबन्धों को पढ़ने की ही फुमत कम है फिर ऊपर से यह ‘उपदेश सुनने का दृष्टिकोण’ करें। आपको सत्य बताऊँ सस्कृत वाङ्मय में प्रयुक्त शब्दों के नानावर्णों रत्नछायाव्यतिकर अर्थों ने मुझे बहुत मोहा है पर यदि किसी शब्द से मुझे वाकई वितण्णा है तो वह है उपदेश। मुझे स्वयं

इससे घृणा है और जिस दिन मुझे लगेगा कि मैं इस फरेबी गब्द का शिकार हो रहा हूँ मैं आपको विस्वास दिलाता हूँ, इस वक्तुय से मैं स्वयं विरत हो जाऊंगा। मैं आपको उपदेश देने नहीं, आपके साथ सह चिन्तन करने निकला हूँ इसलिए हम यदि यात्रा के पहले उसके माग और दिक् को नक्शो में देख लें तो क्या हज है ?

आप कहेंगे और आपके कथन की प्रामाणिकता में मीनमेख खोजना, मैं साहित्यकार के दायित्व को नकारना मानता हूँ, इसलिए जब आप कहेंगे कि क्या आपने हमसे ज्यादा दुनिया देखी है जो निशा और माग आपसे पूछा जाय तो मैं निवेदन करूँगा कि अनेक जागरूक यात्री भी अपने रास्ते में बहुत कुछ ऐसा छोड़ आते हैं जो ऊपर से बहुत आकर्षक नहीं होता, मासल चका चौध पदा करके अपनी ओर आने का निमंत्रण नहीं भेजता नक्ली और फरेबी एजण्टो के द्वारा अपनी मनोहारिता का विचापन नहीं देता फिर भी विचलित पयटक कद्रा और स्थाना से वह ज्यादा तसल्ली देने वाला और निमग्छिक तथा गालत होता है। आप जीवन की आवाधापी में निरंतर जीते ही हैं, चाह भी तो उससे उबरकर वहाँ जाएंगे परन्तु अपनी इस दैनंदिन यात्रा के बीच कभी आपने सोचा है कि यहाँ कुछ ऐसा भी स्थल है नसर्गिक सौंदर्य के स्रोत हैं अनछुय भावलोक की छवियाँ हैं जो अपनी यात्रा के बीच ही आपको सहज उपनम्य हो सकती हैं।

हाँ हाँ होगी हम नहा दीयती आपको उनके जाने में कैसे पता चल गया ?

आपकी गाराजगी स्वाभाविक है। मैं अपने को सबज्ञ मानने की मूलता नहीं कर रहा नहीं कर सकता। मैं आपका बीच का ही अन्ता इतान हूँ। बसी ही त्रिबानभरी और बोर करन वाली यात्राएँ प्रतिनिधि करता रहता हूँ। हम सभी त्रिषावद्ध हैं भूग से प्याग से और उन्निद्रा से। त्रिषा बद्धो वषमो रोरधीति — श्रम तो श्रम वषम की तरह हवार भी करें तो हमारी गजना में गुग्ग का गाज फेन ही ज्ञाना होगा सातिन्यायक अमृत नहीं है, वह सामक गाम तरय वहाँ से आ सरता है ?

पर क्या आपने कभी सोचा है कि यहाँ इस कमरे में जहाँ मैं और आप

आप अनजाने एक दूसरा आरोप कर रहे हैं। आपको विश्वास नहीं हो रहा न? मुझे भी नहीं होता था क्योंकि यह विश्वास जितना कुतूहल भरा है उतना ही भ्रमरनाक है। नाटक शांति का गंवाने वाले इस विचार का अभी न डोना ही अच्छा है, चाहे आइंस्टाइन जैसे वैज्ञानिकों की खोजों पर भरोसा ही चिल्लाकर कहा गया हो। वैज्ञानिक विकास के दौर में एक तथ्य प्रिलुल स्पष्ट हो गया है कि भौतिक जगत् में ऐसा कोई रहस्य नहीं है जो अपने से भिन्न एक महान रहस्य की ओर संकेत न कर रहा हो। बौद्धिकता के सभी प्रशस्त रान्ते, मिट्टा-तो और कल्पनाओं के सभी उपमाएं इस बात की घोषणा कर रहे हैं कि अन्ततः हम उस सच के पास पहुंच गये हैं जिसको नापने की क्षमता हमारे पास नहीं है। (द यूनिवर्स एण्ड डा आइंस्टाइन, पृ० ११७) आखिर यह प्रमापनीय अनेक तत्त्व क्या है? यह पूरा विश्व त्रिदिक् है, और इन तीनों त्रिदिक् में प्राप्त जगत् में कुछ भी ऐसा नहीं है, जिसे जाना जा सके। लाचार इस अनेक दिक् को 'चतुर्दिक्' कहने के अलावा बहरहाल कोई चारा नहीं।

“तो क्या आपके निबंध इस 'चतुर्दिक्' की व्याख्या के लिए लिखे गए हैं?” आप का पूछना स्वाभाविक है।

कमाल है, जिसे नील्स बोर (Niels Bohr) जैसे लोग परिभाषित करना तो दूर अनुमानित करने का भी साहस नहीं कर रहे हैं, उसे मैं अपनी छोटी बुद्धि से निबंध में बांधने की दुस्साहसिकता दिखाऊंगा यह आपने कैसे सोच लिया। चतुर्दिक् यदि जब मेरे मन में उठा तो निश्चय ही उमका अर्थ चारों ओर या चारों दिशाएं मात्र नहीं था पर मैंने वैज्ञानिकों के द्वारा अनुमानित और अनेक चौड़े त्रिदिक् को विश्लेषित करने का संकल्प नहीं किया है। त्रिदिक् "प्राणी जीवन के कक्षमक्ष में ही इतना कुछ कहने और सुनने को है कि अभी निबंध के अनेक संग्रह लिखे जा सकते हैं लिखे जायेंगे। हाँ एक बात जरूर है कि इस स्थूल त्रिदिक् के भीतर कभी-कभी अचानक अनायास कुछ ऐसा भाँक जाता है जो इस दुनिया से भिन्न किस्म का एक नया संस्पर्श लिए होता है कुछ ऐसा जो पकड़ में नहीं आता पर अपनी प्रभावशाली शीतल छाया से हम आह्लादित कर देता है। कवि के शब्दों से परे, चित्रकार की तूलिका से बंध और रेखाओं से भिन्न, वास्तुकार की छेनी और हथौड़े तथा विनाश पाषाण खण्ड से अलग कुछ ऐसा जरूर है जो अपनी हल्की उपस्थिति मात्र से कवि की रचना की चित्रकार के चित्र को और वास्तुकार की मूर्ति को संगीत के स्वप्न ससार को एक नई प्राणवत्ता दे जाता है मैंने कोशिश की है कि जाने पहचाने रोज़मर्रा की त्रिदिग्ब्यापी जिन्दगी के गान्त जल में पड़ने वाली यह चतुर्दिक् की हल्की छाया भी यदि कहीं शब्दों में बँध सके तो ऐसा अवश्य किया जाय।

यह मेरे ललित निबंध का तीसरा संग्रह है। 'गिगरो के सेतु' के बाद

घाटियों की यात्रा स्वाभाविक है। 'वस्तूरी मृग' उसी भटकते हुए मृग के चरण चिह्नों को उरेहने की कोशिश है। 'कस्तूरी मृग' की यह 'चतुर्दिक' भागमभाग हो सकता है आपको व्यथ लगे, पर परम बुद्धिमान मनुष्य भी आज तक इस अकल्पनीय गति का कारण नहीं बता सका है। नदी बहती क्यों है, नक्षत्रों की परिक्रमा किस लिए है परमाणुओं की दौड़ के पीछे क्या रहस्य है यदि आप इन प्रश्नों का उत्तर जानते हैं तो आपको वस्तूरी मृग की चतुर्दिक दौड़ बहुत व्यथ नहीं लगेगी। बहरहाल दिक् बाल के बिना भ्रूक्ष है। आप यदि चतुर्दिक को समझना और उसे तराजू पर चढ़ाना चाहते हैं, जो आपको हर हालत में करना चाहिए ही, तो निवेदन है कि जिज्ञा और घावक मग दोनों को ए। प्र रखकर उनकी परस्परावलंबिता पर अवश्य ध्यान दें।

मुषर्मा १३ गुदघाम, वाराणसी ५
गारदीय नवरात्र स० २०२६

— शिवप्रसाद सिंह

अनुक्रम

विधेय साधनिक

समयामाता	११
कही कुछ गडबड है	२८
बूढा बसत और मैं	३०
भादमी माने 'ब्रेक' का बडल	४४
सब प्रिये प्यारकर बसन्ते	६३
बबुआप्रिय बिब्वोक बिबो बसते	६६
बदमा मनसोजात	७५
बदमादन	७६
बनारस लो गया है	८३
विश्वास के मुछौटे	८८
राह प गुजर याद आया	९३
मदन काशी	९६
पाक पाक तोमार थोडागाडी आमरा हेंटे इ जाबो	१०२
वाल्ड व्हिटमन क नाम एक खुला पत्र	१०७
अविससा—शवासन—खामखाली	१११

परस्मैपद भूतकाल पाच श्रद्धाजलिया

धीहूड पथ के महापात्रिक राहुल	१२७
प्रवृत्ति का गोतालो	१३२
अधेरी रात का गुलाब	१३७
बधी दृष्टि मुक्त हँसी	१४७

ऊचा पवत और अजापुत्र का चिह्निलास १५४

द्विवचन तीन अतर्वातिर्तौ

नारिकेल कुजा का बूढा ऋतुराज शकर कुरूप १६५

एक जलती शाम द्विवेदी जी के साथ १७३

गुबारे बारवा बाकी १८१

आत्मनेपद तीन आत्मवीक्षाएँ

मन का दपण बनाम कुछ न होने का कुछ १८६

मेरी कहानी रचना की नेपथ्य भूमि २००

मारकेस्टा के बीच एक अलग आवाज २०६

विधेय सार्वत्रिक

समयामाता

जब भी समयामाता का ध्यान आता है बाबू अलियारसिंह का चेहरा मरी आखा के आगे नाचने लगता है। समयामाता मेरे परिवार में दृष्टदेवी की तरह पूजित होती है। मैं नहीं जानता कि हिन्दुओं का सँतीस करोड़ देवताओं में वह किस स्थान को सुगोभित करती हैं पर बचपन में उनकी पूजा के जो भी दृश्य देखे हैं वे उन्हें सबसे अधिक मायाविनी, क्रूर पूजालोलुप और आशु तापिणी देवी के रूप में निःसंदेह बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान देने की मिफारित करत हैं। वर्ष में एक निश्चित दिन पर समयामाता की पूजा होती। गोबर से लिप आगन में बीचोबीच आटे से चौका पूरा जाता। चौके के बीच खेतों से जुने हुए गोबर के कड़े सुलगा दिये जाते। उनकी घुमली भाग पर रत्ना मिट्टी का खप्पर दूध से भर दिया जाता। भाग के दक्षिण पाद में पंडित और भाग के सामने पूजाभिमुख बाबू अलियारसिंह। आगन में बठी स्त्रियाँ गीत गाती। खप्पर के सिरे पर बँधी कनर के फूलों की माला लपटा में झुलसने लगनी। दूध उफनाता। दरवाजे पर बजते नगाड़े की आवाज़ आरोह लेती कि अलियार सिंह लौना हाथ हिला हिलाकर अनुमान, दहाड़ने गरजने लगते। वे हवन की आग हाथ में उठा लेते—“डाल धी, डाल धी, बोल समयामाता की ज—बोल बोल समयामाता की ज पंडितजी पल्लव से उठाया धी अलियार सिंह के हाथ में रखी आग में डालने लगते। देवी मायाता हवन माँग रही है। दूध उफनाता। अलियार सिंह जलते दूध में हाथ डालकर फेंक हलकोरकर सामने झुके पुजारी के सिर पर चार से आघात करते— जो कल्याण होई।’

जरा झुल के महारानी ई क्या गरदन दबाय के बोल रही हो देवी जब हियरा खोल के पूजा से रही हा तो हियरा खोल के रच्छपाल भी बोलो। हरबू साखा समयामाता को छेत्ते। हियरा खोल के पूजा कहाँ मिली सबक। समयामाता शिकायत करती— न तो धन वह बढ़िया कहावर (पोली धोती)

मिलती है, न उतता रोन् (गुड की मीठी पूरी) न मिठाई, न गहमी, न धार ।' समयामाता का चेहरा धूम्र से विरूप हो जाता ।

'जमाना गही देगती महरानी, चारो तरफ गिराती छाई है । ऐस म सयक से जो जुटा बना, कर लिया । मुंहारी भरनाग म तो बमी नही घाई, तो मुंह भी रच्छपाल बोलने न बपट गही करना चाहिए ।' हरगू सोचा फिर टूना देते ।

तुरन्त तुरन्त पानी म नहलाया भरियस मेमना जो मस्ती की अनिवायता की पूर्ति के लिए जरूरी था, समयामाता के सामने खीनकर लाया जाता । पड़ित उसके गल म बनेर की माला डालत तिर पर रोरी लगात, उसके ऊपर अक्षत डालकर उसे देवग्राह्य बनाते । हरगू सोचा एक भटके से गरदन काटने म इतने प्रसिद्ध थे कि भरियस मेमने का देसकर गहात की जाँच की तौहीन सम-भक्त । हल्के से बार के साथ बटो गरदन सप्पर के पास धर दी जाती । समयामाता एक बिलस खून मुँह म डाल सेती, और पड़ित बटो गरदन पर पल्लव से पानी डाल गलकर सरसी के हिसत हाठा की तातिपाठमुनाते । नगाह की भावाउ फिर गुडगहाती । भिगोय बने, लड्डू और रोट का प्रसाद उपस्थित लोगों म बाँट दिया जाता । इस तरह समयामाता की पूजा समाप्त होती ।

मैं अनेक बार इस देवता के बारे म जिज्ञासा से भरा बचल बना इधर-उधर टकड़ोरता रहा हूँ । यह पूजा पूर्वी उत्तर प्रदेश म काफी दूर-दूर तक प्रचलित है । और स्थानों मे होती है या नहीं पता नहीं । वाराणसी म बमच्छा पर सम्मो भाई का मंदिर है । मैं इस देवता के नाम पर जब भी साचा विचारा है एक मजीब भावजय से मन भर गया है । समय और कुछ नहीं, समय का ही स्पीलिंग रूप है । समय की पूजा वस्तुतः बारा की वक्त की जमाने की पूजा का ही नाम है । समय से बड़ा और देवता हो भी क्या सकता है । सुख और दुःख मे ही दो सत्य देवता को अनुप्य के लिए अनिवाय बनाते हैं और सुख और दुःख की स्थिति समय के बिना सिद्ध वहाँ होती है । बाल की स्त्री वाली है, समय की समय ।

बाल दिक् से क्यादा सूक्ष्म तत्त्व है समय, इसी कारण क्यादा विविध देवी है । बाल निक सपहो वतमान या बाल दिक् के अवसान के बाद भी विद्यमान रहना है शायद इसीलिए अथर्ववद म कहा गया —

काले मन बाले प्राण काले नाम समाहितम् ।

काले सर्वान् दन त्वागतेन प्रजा इमरा ॥

[१९।६३।७]

बाल से ही सबका जन्म होता है । जो भी जनन करने की शक्ति से समुक्त है, बाल उसका भी जनक है । ज जाना जनक बाल (भाषापरिच्छे) । यह बाल

इतना सूक्ष्म है कि इसके माप के सभी प्रयत्न व्यर्थ हो जाते हैं। ससार में समय के मापने के बहुत से तरीके हैं। सभी प्राचीन सभ्यतियों में समय की कोई न कोई माप प्रचलित है पर समय की माप की भारतीय पद्धति निःसंदेह अपनी विगदता और विराटता में सबसे अधिक प्रभावित कर देती है। लघु-लघु घटियों से भरा यह विनालकाय समय मापयंत्र इतना घटिहीन है कि सहसा वृद्धि पगु हो जाती है। समय का सबसे छोटा यानी लघुतम खंड निमेष है। निमेष यानी पलक गिरने में जितना समय लगे। दो निमेष की एक घटि और १० घटि का एक प्राण और ६ प्राण का एक पल होता है। साठ पल की एक घटी। ६० घटी का एक दिन और ३६० दिना का एक वर्ष। सबसे छोटा युग कलियुग है और सबसे बड़ा सतयुग। कलियुग की आयु चार लाख बत्तीस हजार वर्ष की है जबकि सतयुग की १७ लाख २८ हजार वर्ष की। कलियुग का दूसरी द्वापर और त्रिगुनी यैता की आयु मानी गई है। इस प्रकार जब ये चतुर्गुण बीत जाते हैं तो एक महायुग बीतता है। एक कल्प में इस तरह के एक हजार महायुग होते हैं।

यह सारी गणना निश्चय ही हमारी पत्नी के लोग की पृथ्वी की सापेक्षता पर आधारित है। आज भी हिंदू जब कोई व्रत त्योहार या पूजा अनुष्ठान करना है तो अपनी सत्ता को विराट ब्रह्माण्ड में निश्चित दिक् काल देने के लिए सकल्प करते हुए कहना है—श्री पुराणपुरोत्तमस्य श्री विष्णोरानया प्रवत मानस्याद्य श्री ब्रह्मणी द्वितीयपराद्धे श्री श्वेतवाराह कल्पे वैवस्वतमवतरेऽष्टा विंशतितमे कलियुग प्रथम चरणे जम्बूद्वीपे भारतवर्षे बौद्धावनारे वतमाने यथा-नामसवत्सरे मासानाम उत्तमे अमुक मासे अमुक तिथौ अमुक नक्षत्रे आदि आदि ।

इस सन्कल्प से स्पष्ट है कि इस समय वतमान ब्रह्मा के दिवस का द्वितीय पराध चल रहा है। श्वेतवाणह कल्प है। भवस्वत मन्वन्तर है। यह मन्वन्तर प्रथम पराध का अंतिम भाग है। यहाँ से ब्रह्मा दिवस की समाप्ति और ब्राह्मी रात्रि का उदय होता है। सार्वणि को ब्राह्मी रात्रि का प्रथम मनु कहा गया है। ब्रह्मा की अपनी अहोरात्रि के हिसाब से १०८ वर्ष की आयु कही गई है। उसकी समाप्ति पर अखिल सृष्टि का लय हो जाता है। उस समय पुराणपुरयोत्तम श्री विष्णु की पलक गिर जाती है और उनका एक निमेष पूरा हो जाता है।

यह सारी बातें हमारे ब्रह्माण्ड की हैं। विराट के त्रिया कलाप में हजारों ब्रह्माण्ड बुलबुला की तरह निरंतर उदित और बिलीन होते रहते हैं।

ऐसा है विराट कालचक्र । और यह कालचक्र, जिसका ऊपर विवरण दिया गया क्या अंतिम और अक्षर है । नहीं । यह सिर्फ एक ब्रह्माण्ड की जिसमें हमारी पृथ्वी है और जिसमें हमारी अवस्थिति है, काल प्रक्रिया है । इस तरह के हजारों हजार ब्रह्माण्ड इस अनन्त भूयः में निरन्तर उत्पन्न और विलीन होते

रहत है, उनका कोई हिसाब नहीं। हम तिराट कामचक्र को देखन हुए भी कुछ मामूली पथरीवर्षों तक जीवित रहने वाला मनुष्य अपने ज़ोरे का अभिमान डोना है। जितना अपनाप है यह होना और यह होने का दम।

ब्रह्मवचन पुराण में इन्द्र के मामग की एक वया दी हुई है। यह वया प्रचारातर से समयामाता की ही वया है। वत्रामुर से नष्ट अमरायनी को पुनः प्राप्त करके इन्द्र ने उसकी पुनरचना का निश्चय किया। देवगिरी विश्वकर्मा पुर से वर्षों तक रचना में लगे रहे। ऐसा सुन्दर सुरम्य नगर नाप ही नहीं बना हो, परन्तु देवराज इन्द्र सन्तुष्ट नहीं हुए। वे एक न एक ऋटि निजालतर देव शिल्पी का अपमान करते रहे। साधार विश्वकर्मा अपने आराध्य महतम विश्वकर्मा ब्रह्मा के पास पहुंचे और अपनी परेशानी बताई। ब्रह्मा ने विष्णु से प्राप्ति की और विष्णु एक ब्राह्मण ऋषि के वेग में इन्द्र के दरबार में उपस्थित हुए।

‘इन्द्र, तुमने एक अद्भुत नगर का निर्माण करवाया है। लेकिन मुना अभी तुम हमसे पूरी तरह सन्तुष्ट नहीं हो। ऐसा नगर पहन के किसी भी इन्द्र ने नहीं बनवाया अभी उसके निर्माण में विश्वकर्मा को और कितने वष प्रयत्न करना होगा?’

ब्राह्मण बालक की बात से कुछ-कुछ सन्तुष्ट कुछ रुष्ट इन्द्र ने कहा—‘आप किन्ने इन्द्रों को जानते हैं?’

बालक ठठाकर हँसा—‘मैं तुमसे पहले के अनेकानेक इन्द्रों को जानता हूँ। तुम्हारे पिता कश्यप को उनके पिता मरीचि को मरीचि के पिता देवश्वर ब्रह्मा को भी।’

‘मुझे उस एकाक्ष प्रलय का भी पान है जो सम्पूर्ण प्राणियों को नष्ट एक भयानक लगता है। इन्द्र यह सृष्टि कई प्रकार की है। कल्प भी अनेक हैं और ब्रह्माण्ड भी अनेक। उन ब्रह्माण्डों में अनेक ब्रह्मा विष्णु अथवा इन्द्र होते रहते हैं। उनकी गणना कौन कर सकता है। मुरेश्वर भूतल के धूलिकणों की गणना आसान है इन्द्रा की नहीं। इन्द्र की आयु सिर्फ इकठ्ठर चतुस्रुत तक है। अठ्ठाईस इन्द्रों का पतन हो जाने पर ब्रह्मा का एक दिन रात बीत जाता है। इस प्रकार ब्रह्मा की कुल १०८ वष की आयु होती है।’

इन्द्र यह सब आश्चर्य से सुन ही रहा था कि ब्राह्मण बालक कमरे में घुसती हुई चींटियों की कतार देखकर हँसा। इन्द्र ने मोड़ा छपटकर पूछा—‘ऐस क्यों हँस रहे हो?’

य सभी पूवजन्म के इन्द्र हैं। ब्राह्मण बालक वम ही हँसता रहा—‘अभी भी इनका इन्द्रासन का मोह नहीं गया।’

तभी एक जजर बाष्ठाकार परमवद्ध ऋषि सिर पर बास की छतरी ओढ़े दरबार में हाजिर हुए।

“ब्रह्मन् आपका परिचय ?” इन्द्र ने दुगुने कुतूहल से पूछा—“आपके सारे शरीर पर इतने रोम क्या हैं ? और य बीच क कुछ रोएँ किमने उग्राड दिय हैं । आप सिर पर चटाई रखकर क्यों घूम रहे हैं ?”

मेरा नाम लोमश है । चटाई लेकर इसलिए घूमता हूँ सुरेन्द्र, कि इतनी छोटी आयु पाई है उसके लिए घर क्या बनाऊँ ? इसीलिए विवाह भी नहीं किया । मेरी आयु ब्रह्माजी के एक दिन का सिर्फ आधा हिस्सा मान है यानी ब्रह्म दिवस का एक पराघ । फिर तुम्हीं कहो इतनी छोटी आयु वाले व्यक्ति के लिए क्या मकान बनवाना चाहिए ?”

और रोएँ ? इन्द्र को पसीना छूट रहा था ।

मुनि लोमश मुसकराए—“इनकी भी एक कहानी है ।” उन्होंने अपने दक्ष पर बचे हुए रोमों पर प्यार से हाथ फेरा—“जब एक इन्द्र मरता है, तब एक रोमों उलझ जाता है ।”

क्या ?”

इन्द्र अब भी से ताकता रहा । तभी दोनों व्यक्ति, बद्ध और बालक अंतर्धान हो गए । हाथ बेचारा इन्द्र ।

तो यह है समयमाता के अछोर दामन का विस्तार जिसमें हजारों ब्राह्मण अन्न के लघु लघु कणों की तरह घूमकत रहते हैं, और किस झटके में कब और कैसे कोई अन्नक कण आचल से खिंच जाता है कौन जाने ?

समय की ये सारी मापिकाएँ जसा पहले ही कहा गया, व्यक्ति सापक्ष्य हैं । व्यक्ति ही इनके कद्र में है व्यक्ति ही इनके बाहर । व्यक्ति की पलका का गिरना निमेष है तो उनका सदा के लिए बंद होना कालभोग । व्यक्ति जय इस कालवक्त्र के भीतर अपने को असहाय पुजों की तरह सोबकर निष्क्रिय हो जाता है तो वह समयमाता के आचल की घुणन में निक्षेप घूमता रहता है । मनुष्य की गति इस काल का वशीभूत करने में है या इसे प्रसन्न करके अपने अनुकूल बनाने में निहित है ।

कोई भी काल बुरा नहीं होता, कोई भी काल अच्छा नहीं होता । अकाल, सकाल, निकाल, कुकाल तो सिर्फ हमारी असमर्थता के विभिन्न नाम हैं अथवा हमारी मजबूरी के पर्याय हैं । हमारे दश में सबसे बुरा काल कलियुग कहा गया है क्योंकि इस युग में धर्म का वृषभ सिर्फ एक पाद पर आरुढ़ है । उसके तीन पाद नष्ट हो चुके हैं । एक पर वाला वृषभ निश्चय ही गतिहीन और पशु प्राणी का प्रतीक है । सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग के विशेषण नहीं उससे टकराने वाली व्यक्तिस्वत्ता के विशेषण हैं । सतयुग उसके लिए है जो चारा परोस यानी पूर्ण गति से गतिमान है सक्रिय है, प्रबुद्ध और चलायमान है । त्रेता निश्चय ही उस प्राणी की दिनचर्या का नाम है जो खड़ा ता रह सकता है पर चलन

की दिशा नहीं जानता । जो विवेकहीन और विवृतव्यभूत है । द्वापर सदेहप्रस्त प्राणी का काल-पर्याय है जो मुक्त और आप्रत अवस्था के बीच मनबुद्ध पड़ा है । कलि का एक चरण निरनिद्रा और वृतव्यहीनता का सूचक है । इसीलिए ऐतरेय ब्राह्मण की घोषणा है —

कलि गयानो भवति सजिहानस्तु द्वापर ।

उत्तिष्ठत्त्रेता भवति कृत सम्पद्यते धरन ॥

[७।१५]

तुम सोये हो तो कलियुग है, भलसाए हुए जागे भी, पर कुछ करते नहीं तो द्वापर की स्मिति जानो, उठ तो गए पर चलने की दिशा का ज्ञान नहीं तो त्रेता है, कृतयुग चलने का नाम है ।

तो भाई चलो । यदि चाहते हो कि समयामाता तुम्हें अपने मादक मनछोर दामन में लपेटकर निरन्तर घुमाती ही न रहे तो उठो, खड़े हो सक्रिय बनो, चलो । क्योंकि जो चलता है, वह बचन में नहीं पड़ता । इसीलिए श्रुति चिल्लाकर कहते हैं—चरवेति चरवेति ।

काल से डरने की भी जरूरत नहीं । तुम जिसे काल समझते हो वह वस्तुतः किसी तीरस पदार्थ का भ्रष्ट फलाव भर ही नहीं है । जिसने काल की जान लिया, जो उसके सूक्ष्म तत्त्व और शक्ति के स्रोत से परिचित हो गया वह जानता है कि काल स्वर्गिक मधु और अमृत से भरा हुआ है । यह वह नहीं है जिसके ऊपर कालकूट की उष्ण तरंगें हैं, ज्वाला है पर इसने भीतर निरन्तर शीतल अमृत प्रवाहित हो रहा है । उपनिषदों की मधुविद्या कालविद्या से कतई भलग नहीं है ।

इस अमृत का रहस्य क्या है ? वैज्ञानिक कहता है कि काल चौथा दिक् है । त्रिदिक् से परे उससे अलग । यानी इस भ्रष्ट को देखने का समझने का, इसका रहस्य जानने का ढंग भी कुछ न कुछ अनोखा तो होगा ही ।

वह अनोखापन है काल का मनुष्य प्रदत्त विशेषणों से भलग करके देराना । विशेषण से रहित होत ही काल शुद्ध सत्त्वमय हो जाता है । घूरे प्रभाव यत्र जाएँ, भाग हुए दुःख सभी सुखद स्मृति में बदल जाते हैं । हम किस रहस्यात्मक प्रसन्नता के साथ अपने विगत दुर्दिनों को याद करते हैं । बीता हुआ समय इस तरह सुखद क्यों बन जाता है ? बीमारी, कष्ट यातना के गुजरे क्षण हमारे लाम सिन और राजसिक सम्बन्धों से भलग होत ही सत्त्वमय आनन्द सत्ता का भग बन जाते हैं इस दृष्टि से अतीत हमें ही सतयुग है वतमान हमेशा ही कलि युग । क्या हम वतमान का विशेषणहीन काल या सतयुग नहीं बना सकते ? काल क्या है ? यह और कुछ नहीं तुम्हारी साक्षी अन्तरात्मा का ही नामांतर है । कालोन्तरात्मा सवदा सवदानी [भग विज्ञा की टीका] । मला कोई अपनी

मतरात्मा से डरता है, भाई अपने से ही अपना डुराव करे तो फिर बचाव कहा ?

इसलिए मनुष्य को कभी भी समय असमय सुसमय-नुसमय जस शब्द प्रयोग में नहीं लाने चाहिए । लोग कहते हैं—भाई क्या करें, बड़ी दूरी घड़ी भाई है । यदि यह वाक्य समयमापक आधुनिक यंत्रिका के लिए कहा जाय, तो कुछ हद तक सही हो सकता है पर यदि घड़ी का अर्थ घटी है तो उसके घटने में कुंभा सुंभा क्या सम्बंध । घड़ी कुछ नहीं, घटी की ही बेटो है जैसे कटाह की बेटो कडाही । तो कुंघड़ी-मुंघड़ी का अर्थ क्या हुआ । लोग घटने को भी सामान्य ढंग से घटने देना नहीं चाहते । ऐसे ही लोग के हाथ में काल विषयर सप की तरह खँस जाता है, और वे सारा दोष समयमाता के मरये डालकर रोते रहते हैं । जो घटने वाला है, उसे घटने दो । उसमें आसक्ति होगी तो 'लव निमेष' 'कल्प' के समान और कल्प लव निमेष के समान व्यतीत होगा, इसमें शक नहीं । सापेक्षतावाद के उदाहरण के लिए यह सब तो ठीक है कि एक सुंदरी युवती के साथ बिताया हुआ एक घंटा दस मिनट के बराबर और एक बदबूदार गली में बिताए दस मिनट एक घंटे के बराबर लगते हैं । वही तुलसीदास को "सब निमेष परमान जुग लगता है तो वही निमेष बिहात कल्प सम तेही" ऐसा प्रतीत होता है । पर ये सभी काल की सत्ता को सही ढंग से न समझने वाला के दृष्टिकोण के उदाहरण मात्र ही हैं ।

असल में काल निर्विशेष निरुपाधि सत्ता है इसे जानकर ही उसके भीतर छिपे अमृत का सघन विद्या जा सकता है । काल की सत्ता से रजस और तमस को निकाल सकना ही अधुमती विद्या है । जो ऐसा कर सकता है, वही उसके भीतर के अमृत को जान पाता है ।

इसे कबीर जानत थे, इसीलिए उन्होंने बड़े विश्वास के साथ थोड़े रोग स कहा —

कहैं कबीर कोई सत्त जन सूरमा

काल निचोरे क अमृत पीव ।

कबीर के लिए काल की सत्ता सत्ता मात्र रह गई और उन्होंने उस निचोड़ कर उसका अमृत पी लिया इसीलिए उनके लिए समयमाता की पूजा जरूरी नहीं थी । न तो उन्हें भेदने की बलि देनी पड़ी और न ही भयभीत होकर किसी भोभा के सामने घुटने झुककर प्रणिपत्य करने की आवश्यकता आई ।

भविष्यत् शान्ति-पर्व

काशी ३१ १२ २०००। रात्रि साढ़े ग्यारह बजे का समय सिफ माथा घंटा और। फिर हमारी पथ्वी एक नई सहस्राब्दी की गोद में उतर जाएगी। दो हजार वर्ष पूर्व उस व्यक्ति को 'क्रूस' पर लटकाया गया था, जिसने धरती के मानवा को कठुणा और प्रेम का तथा पाप और उससे निष्कृति का संदेश दिया था।

कसा दारुण और रहस्यमय होता है समय चक्र।

ईसा से दो हजार वर्ष पूर्व ठीक ऐसी ही रात्रि को बल्कि साँझ के झुट पुने में ही एक बहैलिय ने उस व्यक्ति को विपला तीर मारा था जिसने अनासक्त कमयोग का संदेश दिया था।

और कृष्ण से भी दो हजार वर्ष पूर्व? क्या हुआ था? शायद नविकेता यम के द्वार पर जीवन अग्नि का रहस्य पूछने के लिए उपस्थित हुआ था। यम के द्वार पर स्वयं अपने ही पिता के हाथों भेजा हुआ। क्या प्रत्येक दो हजार वर्षों के बाद किसी-न किसी महामानव का 'क्रूस' पर चढ़ना जरूरी होता है? क्या मनुष्य अपने को जीवन कम और प्रेम का संदेश देने वालों की हमें हत्या ही करता रहेगा? क्या एक पीढ़ी अपनी सतति को अपने ही हाथों यम के द्वार पर भेजने की परम्परा हमेशा डोती ही रहेगी?

आज की रात्रि मेरे सामने ये प्रश्न भी उठे मैं मानता हूँ पर सिफ एक क्षण को ही। क्योंकि २००० ईसवी की यह अंतिम रात्रि इतनी सद्महीन है कि मैं चाहकर भी इसे इतिहास से जोड़ नहीं पाऊँगा। सारा इतिहास हमारे अस्तित्व से फटकर लापते की धक्क में छटपटा रहा है। छटपटाना मिया शायद ठीक नहीं है, अवसर हो चुका है। सन १९८१ में शुरू होनेवाला विद्व युद्ध अभी अभी समाप्त हुआ है। लोग कहते हैं कि दो एक पीढ़ियाँ पहले से ही हम इतिहास से अलग होने लग गयीं किंतु असली अलगाव तो हमी भोग रहे हैं, मही मर्षों में स्थूल मर्षों में अलगाव। मुझे मालूम नहीं कि विद्व क हमरे

स्थाना में, इतिहास के साक्ष्य इतिहास कुछ बचे खुचे, रहे सह। पर अपने देश में तो कुछ भी साबुत न बचा। न तो पूवजों की निशानी भ्रज ता एलोरा बची, न ताजमहल बचा न भाखडा नगल रहा, न अणुभट्टी अप्सरा ही बची। सभी कुछ महाकाल के अध उदर में समा गया। इतिहास इस बदर घायल और दल विभल साक्ष्य ही कभी हुआ हो। धर्मविश्वासी पुराणा के मंदिर और स्तूप तो गए ही, विज्ञानवादियों के आधुनिक मंदिर भी इस विभीषिका से बच न सके। कालगत इतिहास जब इतना निरर्थक और अस्तित्वहीन बन गया तो देशगत भूगोल की बात क्या करूँ। 'भू' तो अब भी गोम ही है पर जाना पहचाना भूगोल समाप्त हो गया है। हस्वमामूल अणु के भीतर छिपी गरमामूल शक्ति का उदघाटन करनेवाले पूवजों की मेधा क्या इनका छोटा-सा तथ्य भी जान न सकी कि देशों की सीमाएँ भूगोल शास्त्र का दिल बहनाव मात्र होती हैं। जमीन का एक चप्पा चाहे हम नक्शे में रहे या दूसरे में, कोई फर्क नहीं पड़ता। पर नक्शा को बदलने की नामुराद स्वादिष्ट नै आज इसान को इस बदर बदल दिया है कि उसे पहचानना भी मुश्किल हो गया है।

तृतीय महायुद्ध जब शुरू हुआ तो मैं सिर्फ बारह साल का था। मैं डॉक्टर की पिता राजनीति के प्रोफेसर। हमारा छोटा सा परिवार था। खूब खुश, खूब प्रसन्न। पर मुझे हमेशा लगना था कि कोई काली सी डरावनी चीज बरसूरत चील की तरह पल फलाए हमें। हमारे बंगल पर मँडराया करती है। मैं भूत-सूत में विश्वास नहीं करता पर चाहकर भी उस मनहूस छाया को भुला नहीं पाता। धोले हँसत बानें करते, चाय पीते, रेडियो सुनते अचानक पिताजी कापने लगते। उनका चेहरा पीसा पड़ जाता। सलाट पर पसीने की बूँदें उमर आती। मा दीदी दीदी आती। ठण्डे पानी से उनका मुह धोती। गानों को थपथपाती।

बन्द करो रेडियो।" वे चीखकर मुझे डाटती—'सो बार कहा कि रेडियो मत खोलो मत खोलो। इन्हें 'हायर टेंशन' है। पर तुम सुनते नहीं।'

'मम्मी, मैंने नहीं खोला। मैं धीरे से कहता।

नहीं खोला तो ठीक है चलो, भागो, जाओ उधर खेलो बगीचे में।

मैं चुपचाप बगीचे में चला जाता।

मम्मी जब अस्पताल चली जाती पिताजी फिर रेडियो खोल लेते या अखबार लेकर बैठ जाते। उस समय उनका चेहरा देखने लायक होता। वे अक्सर वड़वड़ाते नकमलवादी। भूखी पीढ़ी।

मैंने एक दिन बहुत साहस करके उनसे पूछा 'पापा क्या नकमलवादी भूखी पीढ़ी से लड़ रही है?'

वे बहुत प्यारे ढंग से मुसकराए ।

‘नहीं बेटे ।’ उन्होंने मेरे गाल पर हलकी सी चपत लगाते हुए कहा,
“इतिहास भूगोल से लड़ रहा है ।’

मे कुछ समझ न पाया ।

“क्या नक्सलवादी और भूखी पीढ़ी एक ही आदमी के दो नाम हैं ?” मैंने
फिर साहस करके पूछा ।

‘अरे नहीं माई ।’ वे इस बार प्रोफेसराना आदाब में बोले, ‘इन दोनों
में बहुत फर्क है । नक्सलवादी चीनी रेडगाड से प्रेरणा लेती है जब कि भूखी
पीढ़ी अमेरिकी बीटनियस से ।’

तो दोनों में बहुत फर्क है ?’

हा, हा बहुत फर्क । चीन और अमेरिका एक-दूसरे के दुश्मन हैं । एकदम
विरोधी, एक दूसरे के बिल्कुल उलटे ।’

तो उनके एटमबमों में भी फर्क होगा ?’ मैंने पूछा ।

अचानक पिताजी का चेहरा टेढ़ा होने लगा । उनके सारे बदन में कंपकंपी
होने लगी । घर में अगमी भी नहीं थी । मैं बिल्कुल खबर गया । मुझे समझ में
न आया कि क्या करूं । मैं धीरे से बगीचे में भाग गया ।

लोग कहते हैं कि सन १९६७ इस शताब्दी का बहुत महत्वपूर्ण साल था ।
आज जो कुछ भी हो रहा है इस समूचे निरर्थक और रहस्यात्मक घटनाचक्र
की एक पूर्य भूतक उस वक अचानक मिल गई थी । नियति बहुत कजूस और
क्रूर होती है । वह अपने भ्रूण में विकसित होती दयाकार घटनाओं को इस
तरह गोपनीय बनाये रहती है कि कहीं से भी कुछ संकेत नहीं मिलता । नियति
का दूसरा नाम ही आकस्मिकता है । इस आकस्मिकता को आकस्मिक रहने
देना मानव की पराजय है असफलता है । समय से पूर्व इस ज्ञान लेना जानने
की कोशिश करना उसकी शक्ति का चोथक है उसकी साधकता है । इतिहास
मनुष्य का प्रयत्न है भूगोल नियति की क्रीडा । इनके बीच की खाई पाटने का
प्रयत्न ही ज्ञान है विज्ञान है ।

सन ६७ में अचानक नियति के भ्रूण का आवरण थोड़ा चिटक गया था ।
पश्चिम एशिया में अरबों और यहूदियों का युद्ध, चीन द्वारा हाइडोजन बम का
परीक्षण, भारत के आम चुनावों का टूटना, और नक्सलवादी का
विद्रोह आदि घटनाएँ थोड़े थोड़े शीपका म छपी थीं । ये स्थूल घटनाएँ थीं ।
उतनी ही स्थूल जितना चीन में सवत्र रेडगाड से की धमनवीय सक्रियता
अथवा यूरोप और एशिया के अनेक भागों में बीटनियस हिप्पीज और
बीटल्स का आश्रमण । ये घटनाएँ सिर्फ सुनिर्वा बनकर रह गईं । ये तो

उपलक्षण मान थी, स्थूल बाहरी 'सिम्पटम्स' भर। इनके पीछे इनके भीतर, तल में छिपे असली विस्फोटक सत्त्व को जानने की न तो कोशिश की गई और न ही उसकी रोक थाम का उपाय ही। हाथ री इन्द्रियबोधपरक सत्सृति।

पिताजी का स्वास्थ्य निरंतर बिगड़ता जा रहा था। परेशान तो सभी थे। समूचा जीवन त्रम उसलट गया था। युद्ध की 'गुस्सात' के वे आरम्भिक वष सिर्फ स्नायु परीक्षा के वष थे। चारो तरफ भय, दहशत, और ध्वंस। मैं सोचता हूँ कि पिताजी युद्ध की खबरो और ब्लकमाउट की मनहूस रूटीन को भेल नहीं पाते थे। पर शायद यह कहना ठीक नहीं है।

'क्या आप युद्ध से परेशान हैं?' यह तो कोई अलग की व्यक्तिगत चीज नहीं, सभी इसम फँसे हैं फिर आप ही क्या इतना चिन्तित होते हैं?' मैंने एक दिन बुजुर्गाना अदाज में पूछा।

'मैं युद्ध से परेशान नहीं हूँ बेटे।' उनका चेहरा अचानक चमक उठा— सच कहो तो मैं बहुत दिनों से उसकी प्रतीक्षा में था। मैं परेशान सिर्फ इसके आकस्मिक मोड़ की आशंका से हूँ।'

'आप युद्ध की प्रतीक्षा में थे?' मुझे सहसा पिताजी की बातों पर विश्वास नहीं हुआ। मेरे पिता बहुत ही कोमल मन के स्नेह भरे व्यक्ति थे। ऐसे आदमी के मुँह से ऐसी गंभीर बात सुनकर मुझे धक्का लगा।

'तुम गलत सोच रहे हो।' उन्होंने कहा, युद्ध की प्रतीक्षा इतनी सरल समस्या नहीं कि तुम इस पर अच्छे-बुरे का लेबल सुरत बिपका दो। यदि युद्ध नहीं होता तो बाकी दुनिया में जो कुछ होता, सो होता, भारत बिला जाता। खत्म हो जाता। युद्ध में भी वह खत्म होगा, बहुत-कुछ टूट-फूट जायेगा, पर अब कुछ बच भी रहेगा। और जो बचेगा वह बचने लायक होगा। सम्भावना-पूर्ण रहेगा। सन '६७ के बाद ही मुझे लगने लगा था कि यदि जल्दी युद्ध न हुआ तो हमारा यह हजारों साल पुरानी जीण शीण सम्पत्ता का देश सड जायेगा। बिपले कीटाणुना का भोजन बन जायेगा। काश तुम सन '६७ में रहे होते। तुम्हें यह देखकर हैरत होती कि हर हिंदुस्तानी कितना बेगरत और दीन हो गया था। भुलमरी, अकाल, जाट और दूसरी ओर सबत्र वृभूमित सेक्स का धिनीता, अमानवीय प्रदर्शन। सारा सामाजिक ढांचा कील काँटा से हीन टूटी मशीन की तरह लडखडा रहा था। इसान की बुद्धि त्रिकोण में फस गई थी और उसका भूला शरीर कुत्ते की तरह हवा में टगा हुआ था। पतन की पराकाष्ठा यह कि लोग इस आत्मघाती, मानवद्रोही प्रेत-जीवन का आधुनिकता के ऊँचे ऊँचे फलसफे में इस कदर लपेटते थे कि इनसे बचकर सही रास्ते पर चलने वाले अपने को

बेवकूफ मानकर बीमत्स चुप्पी में खो गए थे। यो लगता सबको कि हाथ-जोड़ा और गतिमयता का झटका इस बात का सबूत है कि गाड़ी पतन की ओर तेजी से लुढ़क रही है, पर उसमें सवार हर व्यक्ति पतन की तेज रफ्तार का रस ले रहा था उस रोकना भल ही मुश्किल रहा हो उस पर से कूदकर भलग होना तो सम्भव था ही पर हवा की फरफराहट और जलते शरीर पर उसकी छुवन का मोह 'आत्मघाती प्लेनर' से नीचे उतरने भी नहीं देता था। बड़े बड़े गहरो की गलियों में खुलेआम नग्न मैथुन की चर्चा होती बीटनिकस और हिप्पियो की नकल में गराव गाँजा और भाग के प्रयोग चलते। गाली गलौज धुंकरा फजीहत, नगई बेशर्मी धीरे धीरे राष्ट्रीय नारा और उद्देश्य बन गई।'

तो क्या घाप समझते हैं, युद्ध के कारण वे चीखें बंद हो गई?

'मैं जानता हूँ कि बंद नहीं हुई। बंद कस होंगी, युद्ध से बड़ा घननिक शायद ही दूसरा कोई काय हो। इसलिए भावनाओं के पार्श्वीकरण की प्रक्रिया के रुकने का तो सवाल ही नहीं उठता। मोच-खसोट, बेईमानी घूसखोरी ब्लक मार्फेटिंग सब चालू हैं। बहिरु पहले से बड़ी ही हैं। सेक्स भाज भी व्यक्तिगत चीज न रहकर भीड़ की चीज ही है। उसका बाजारूपन ज्यों का र्यों है। किन्तु उसमें एक परिवर्तन आया है। उसके साथ मनजाने ही कुछ मूल्य जुड़ गए हैं। विवशता और सकटजय मूल्य। अब ड्रेनपाइप पहनकर सीटी बजाते, भस्मीय खेप्टाए करते गाजा शराब, भाँग में धुत पड़े नायका का स्थान लपटा से जूझते सनिको फायरब्रिगेड के आत्मबलिदानी नायकताओं रेडक्रास के स्वयंसेवकों, जान जोखिम में डालकर यातायात को चालू रखने वाले डाइवरो, परिस्थितियों के क्रूर पक्ष से निरंतर साहसपूर्ण ढंग से लड़ते नवयुवकों ने ले लिया है। सारा फेशन चक्क मटक फालतू बहसों और मोछे प्रदान कूल्हे मटकाते वाली प्रदाएँ हवा हो गई हैं। एक नई सकटजय सामाजिकता जन्म ले रहा है। अपने को राष्ट्र के रूप में उबारने की इच्छा ने हिमालय से क्याकुमारी तक के पूरे देश की एकता के सूत्र में बाँध दिया है। पूरा देश उबल रहा है। सारे देश की रंगा में एक ही रक्त प्रवाहित हो रहा है। भारतीय भाषाओं में इतनी निवृत्तता इतना समन्वय और आदान प्रदान शायद ही कभी हुआ हो। आज भद्रास से लेकर कश्मीर तक परस्पर विचार विनिमय बातचीत रोने हँसने प्यार करने और चीखने-कराहने की भाषा हिन्दी हो गई है। न तो इसे ससद ने किसी पर आरोपित किया न ही किसी ने जबरदस्ती थोपा फिर ऐसा करिश्मा कस हो गया। कहाँ गई भाषावार प्रान्तीयता हिन्दी साम्राज्यवाद का होवा—क्या हुई वे महान विवट समस्याएँ जिन्हें सुलझान में सरकार पसीने से लयपय हो जाती थी और तेनी व बस की तरह झटोतल लगाए एक ही परिधि में घूमती रहती थी। समाजद्रोही देशद्रोही तत्व जो छिने थे, नाना प्रकार के जन-वर्षाण

वादी नारो की आड़ में काय कर रहे थे, सामन आ गए। अब अग्नि-सपटो में स्नान करने वाली जनता को गुमराह नहीं बिया जा सकता। यही है इस युद्ध का आडिबल (अग्नि स्नान) और यही है इसका रोसरेक्शन (निष्कृति)।

‘तो आप इसी की प्रतीक्षा में थे?’

‘मैं ही नहीं बटे सामाजिक राजनीति को सही ढंग से समझने वाला हर व्यक्ति इसी प्रतीक्षा में था। आज स ४० वर्ष पूर्व विलियम सरोकिन ने भविष्य-वाणी की थी— ईद्रयबोधपरक यह संस्कृति युद्ध और खूनी क्रांतियों के लिए सर्वाधिक उबर भूमि है। यह बीमार खोखली संस्कृति यदि नष्ट नहीं हो जाती और तकमूलक विचारप्रधान संस्कृति (आइडियाशनल क्लचर) में बदल नहीं जाती तो बीसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध भयानक युद्धों और नरमेघ का इतिहास बन जाएगा। वह सर्वाधिक खूनी शताब्दी का सर्वाधिक खूनी सफट है। युद्ध क्रांति, बिखराव आत्महत्या मानसिक रोग गरीबी, अकाल, इस सफट के लक्षण और यही इसके परिणाम हैं। कोटाणुग्रस्त व्यक्तियों के अस्वस्थ मन के इद्-गिद केन्ति इस संस्कृति का और कोई नतीजा हो ही नहीं सकता। (द नाइमिस ऑफ़ धवर एज, प० ३२६)

इससे बचने का और कोई उपाय नहीं?’

“कोई उपाय नहीं जितना ही अधिक हम अपनी कुछ न सीखने की ज़िद पर अड़े रहेंगे और जितना ही अधिक हम स्वतंत्र रूप से अपने को बदलने से कतराएँगे उतना ही अधिक पोडामय दौर से गुजरना होगा, उतना ही क्रूर अग्नि स्नान का अनुभव होगा, उतनी ही निमम परिवर्तनकारी शक्ति की चपेट होगी, उतना ही विकट विनाश का नृत्य होगा।

‘फिर पिताजी यह जानत हुए भी आप परेशान क्या हैं?’

मोह है बेटे मिश्र मोह—जो आत्मा को शांत नहीं रहने देता। ‘मनु युद्ध में कुछ न उबेगा की चिन्ता हृदय की मध डालती है। सामान्य क्षेत्रीय युद्ध जहाँ हमारे राष्ट्र को जीने की नई शक्ति देगा वहीं अगर मनु-युद्ध शुरू हुआ तो सब-कुछ जलकर खाक हो जायेगा। मनुष्य शायद समाप्त हो जायेगा। यह एक ऐसा युद्ध होगा जिसमें अच्छा-बुरा अपराधी निरपराध सत्य असत्य पाप अपाप सभी कुछ समानभाव से भस्म हो जायेगा।’

उनका सोचना कितना सही था। आज नई सहस्राब्दी की इस बेला में चतुर्दिक फल घस के बीच इस ख़ादक में बैठा मैं उस चेहर को याद करके मिहर जाता हूँ। रेडियो अब हमेशा के लिए बन्द है। वर्षों से अलवार के दशन नहीं हुए, पर अचानक पना नहीं क्या शरीर में कँपकँपी होती है और मैं विभ्रष्ट की तरह ताकता रह जाता हूँ। मैं इस घड़ी में विगत सहस्राब्दी को अपनी हिवाकुंगा विभ्रष्ट पीढ़ी की ओर से श्रद्धाजलि दे रहा हूँ। इति।

कहीं कुछ गड़बड़ है

मैं जानता हूँ कि यह ताता मामूम बाबय है। उसे बाबय हमेंगा मामूम होते हैं। चाहे कर्त्ता उक्त हो या अनुक्त चाहे त्रिया सक्मक हो या धक्मक, बाबय मामूम होते ही हैं। उन्हें गड़बड़ कहने और सुनने वाला के चित्त की गड़बड़ी बनाया करती है। आज आप कोई सवाल कीजिए—जैसे “कहिए तबियत कसी है ? बगाल के क्या हाल हैं ? भारतीयकरण का क्या हुप्ता ? यूनिवर्सिटी में पढाई कसी चल रही है ? आपकी उस योजना का क्या हाल है ? आजकल के फलों पलों मसवार कसे चल रहे हैं ? उस मसवार का क्या मामला है ?”—आपको सिर्फ एक उत्तर मिलेगा, बिल्कुल तयार, थोड़ा लाचार, काफी टटका, बिना झटका कि कहीं कुछ गड़बड़ है।

यह उत्तर सुनते-सुनते आदमी ऊब गया है नेता ऊब गया है अध्यापक ऊब गया है, छात्र ऊब गया है नई पीढ़ी ऊबी है पुरानी पीढ़ी ऊबी है साहित्यकार ऊबा है मगर क्या मजाल कि इस बेइतहा ऊब से उबरने के लिए कोई दूसरा बाबय आपकी सहायता को आए। यानी आज की हर क्रिया की एक ही प्रतिनिया है कि कहीं कुछ गड़बड़ है। ऐसे ही मौकों पर पूबजों की याद आती है। गाँवाँ में जाकर लोग राम देते हैं कि चाहे मन को बुरा भी लग तो क्या, चाहे खुल्लमखुल्ला न भी सही तो कम से कम भापी में बंद करके ही बरात के बखत बूटों को ज़रूर ले जाना चाहिए। ऐसी ही मुश्किल में एक दिन साहित्य की बंद भाँपी में आटे से सील किया हुआ ढक्कन हटाकर मैंने कबीर से पूछा—“कहिए खीमान क्या हाल है ? कबीर अपने चरखे में तल्लीन थे, कुछ देर मौन रहे फिर बोल—

कबीर कहा किए आइक, कहा करेगे जाइ ।

इत के भए न उत के, चाले मूल गँवाई ॥

मैं पार्श्वय में उस बुढ़ के ओर देखता रहा। उसका चरखा चलता रहा

और वह बिना मेरी और देने अदृश्य सूतो पर ताकता रहा। लोग कहते हैं कि आदमी बड़ा ऐंठू था, जोर सरोर से भरा था, फक्कड़ था, मस्तमौला था, जान क्या क्या था, और भाँपी भीतर से जो आवाज आ रही थी, वह निहायत पस्त, एबसट, धकी हुई सत्रस्त, कुण्ठित, और निर्वामित व्यक्ति का एकालाप प्रतीत होनी थी। तो यही है कबीर ? इससे अच्छे तो हमी हैं कि बिना अफ सोस के, बिना थके थकाए, निश्चित भाव से कहते हैं—‘कहीं कुछ गडबड है।’

दूसरी भाँपी थोड़ी छोटी थी, पर ज्यादा माला फूलों से लदी लदाई थी। उसका ढक्कन आटे से नहीं गोपी चंदन से सील किया हुआ था। भाँपी देख कर ही लगता था कि मुगलकालीन किसी बनाम कलाकार ने बड़ी मेहनत से वह भाँपी बनाई होगी। ढक्कन खुलते ही भीतर से राम राम की आवाज गूजने लगी। मेरे मन में बार-बार विचार उठे कि कहीं सत्य है, पर उस आदमी का गम्भीर चेहरा देखकर चुप रहा। पूछा “श्रीमान क्या हाल है ?”

अति अनीति कुरीति भई, भुईं तरनि हू ते ताति।

जाऊँ कहँ, बलि जाऊँ, कहूँ न ठाऊँ, मति अकुलाति ॥

हूँ हूँ। यहाँ भी वही मति व्याकुलता। यहाँ भी वही रोना। वही दुखड़ा। अनीति-कुरीति यानी वही एबसडिटी, वही सत्रास, वही निर्वासन। कहीं भी जगह नहीं, कोई दिशा नहीं, नो एक्जिट, आगे की भाँपिया कौन खोले। दो से ही भर पाए। ये तो विसकुल दुखात्मक और उत्साहहीन नजर आते हैं। इनसे अच्छे तो हमी हैं। इस प्रसंग में अक्सर अपने ग्रामनिवासी बाबू भेदसिंह की याद आती है। वह कबीर तुलसी के भौंचक्केपन से भरी निराशा और कुण्ठा वाली वृत्ति से बिलकुल अलग किस्म का आदमी थे। गाँव में बिला बजह धानेदार आ जाए या एक घड़ी रात गए किसी निस्तब्ध गली से साड़ दीड़ पड़े या कहीं से अनजाने दो चार आदमी किसी के दरवाजे आ जाएँ अथवा किसी और गाँव जाते वक्त किसी काम से ठाक हरकारा किसी के पास विलम जाए तो अचानक गाँव में विचित्र किस्म की होनदिली फैल जाती। उस वक्त हर आदमी एक झुंझ रहस्य सरोवर में ऊँच झूम की हालत में होता। पर क्या रतबा था बाबू भेदसिंह का कि ऐसे भरहल पेश आने पर बिना किसी से कुछ कहे सुने लोग सीधे उनके पास उपस्थित होते।

सारी बातें सुनकर बाबू भेदसिंह एक क्षण गम्भीर बने रहते। उनका चेहरा चित्तन की प्रक्रिया में पटकोण बन जाता और फिर वह बड़े इतमीनान से सब लोगो की ओर वनखी से देखते हुए मुसकराकर कहते—‘कहीं कुछ गडबड है।’

गाँव में उनके इस वाक्य का ऐसा प्रभाव था कि इसे सुनते ही सब लोग वहाँ से उठकर धीरे धीरे अपने अपने घरों की चस देते, जैसे रहस्य पर पडा

पूरा पर्दा ही श्रीपा के सामने खुल गया हो। अब कोई जिज्ञासा नहीं रही।

एक बार भेदसिंह के लड़के जोधू से उनकी बहन-मुनी हो गई। लड़क ने गायद धक्का धुक्की भी कर दी। बहने बात तो यहाँ तक कहते हैं कि काफी पिटाई हो गई। गाँव में सबर फली। लोग सदा की भाँति बिना किसी त कुछ करते मुने बाबू भेदसिंह के दरवाजे पर हाजिर हुए।

वह इस बार भी एक क्षण गम्भीर बन रहे। फिर उसी तरह मुक़रारते हुए बोले— वही कुछ गड़बड़ है। जोधू तो कभी भी ऐसा नहीं था।

मैं छुट्टियों में गाँव पहुँचा। मुझे भी पूरा बताया। बर्द-बर्द सत्कारणा में मुनने को मिला। जोधू से एक दिन मैंने पूछ लिया। वह भी अपने पिता का योग्य पुत्र ही था। तपाक से बोला—“वही कुछ गड़बड़ है भैया, बाबू तो कभी भी ऐसे नहीं थे। किसी ने उनका बान मर रखा है।”

मैं सोचता हूँ कि यह स्वतन्त्र भारत की पहली महत्वपूर्ण घटना है जो मेरे ज़माने से गाँव में घटित हुई जिससे कारण और समस्या जा भी रही हो उत्तर एक ही था यानी पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी एकमत। अर्थात् वही कुछ गड़बड़ है, इस बात पर पूरा राष्ट्रीय मतभेद है।

ऐसे मौकों पर ऐतिहासिक दृष्टिकोण बड़ा ही दयनीय तत्त्व बन जाता है। मैं कबीर और तुलसी का साधना हूँ भेदसिंह और जोधू का सोचता हूँ तो परेशानी होती है। कौन सत्यद्रष्टा है, कौन स्वप्नद्रष्टा? पितृकुत्स के दिन पतरस ने भाषण दिया था—‘तुम्हारे नवयुवक दिग्गज नान पाएँगे और तुम्हारे वृद्धजन स्वप्नद्रष्टा होंगे।’ (यू टेस्टामेंट २।१२।१७)। लगता है कि वह बचन हिन्दुस्तान का पुरानी और नई पीढ़ी के सामने एकदम यथाथ में बदल गए हैं। यदि पुरानी पीढ़ी स्वप्नद्रष्टा है तो नई पीढ़ी भी दिव्य दशानो से इतनी जुड़ी है कि वह कम कौन सा सुविधाजनक नारा लेकर बल पड़गी कहना मुश्किल है। और मजदार बात यह कि इन नारों में से मासूम वाक्यों को हटा दीजिए सिर्फ उद्देश्य पर ध्यान दीजिए तो आपकी संवेधा कि धाक्रोश जसा भी हो दोनों नारों के अर्थ में पूर्ण मतभेद है। मैं बार बार सोचता हूँ कि इस गड़बड़ में मैं कौन सी शक्ति है कि सारा देश कुम्भक साध इसी पर आसन लगाए विराजमान है। आखिर यह है क्या चीज? आपने गड्डमड्ड गड्ड जहर सुना होगा। गड्ड मानी होता है भेड़। सम्प्रति में गड्डरिका या गड्डलिका इसी देशी गड़बड़ की अभिजात सत्तानें हैं। इसी से हिंदी का गडेरिया निकला। मड्ड है मद यानी घँसान। गड्डमड्ड है भेड़िया घँसान। मुझे बार बार लगता है कि गड़बड़ इसी विरादरी का गड्ड है। भेड़ इसकी शक्ति है यही इसकी मातृका है यही बीजमंत्र है जिसकी अपार शक्ति पर सारा देश टिका हुआ है। वही कुछ गड़बड़ है एक के पीछे एक चलते जाना। इन भेड़ों को दिना

देने वाला गडेरिया पता नहीं कब आएगा । पगम्बरो को इस देश में दिलचस्पी नहीं रही शायद ।

मैं यह सच निश्चय ही दुस्त होश हवाग की हालत में नहीं कह रहा हूँ । आपने ठीक ही समझा कि कहीं कुछ गड़बड़ है । न तो मैं चोटी का पण्डित हूँ, न ही टोपी वाला नेता । मैंने देशोद्धार का कोई बीड़ा भी नहीं उठाया है कि उसके लिए भठ बोलने का रोजगार करूँ । मैं घम की ध्वजा उठाए चतने वाला घुरीण भी नहीं हूँ कि अधम का लिबास पहनकर दुनिया को धोखा देता फिरू । मैं तो सिर्फ 'गोडो के इतजार' में बैठा तयाकथित हिंदुस्तानी बौद्धिक मात्र हूँ जिसे दूसरे दिन यह भी भूल जाता है कि कन किस पड़ में फासी लटकाकर झूने का इरादा किया था । समुएल बैंकेट व 'मफी' उपयास के नायक की तरह आरामकुर्सी पर बठा मैं सिर्फ दिमाग का खाली करने की कसरत करता हूँ ताकि एक दिव्य आनंद की अनुभूति की जा सके । यह बात अलग है कि इसी बीच कहीं कुर्सी के नीचे बिछे गस-पाइप का विस्फोट हो सकता है और मफी के नायक की ही तरह सारा कुछ राख की ढरी में बाल कर ऐसे पियेटर के पशाबखान पर छितरा सकता है । और फिर उसकी भी चिन्ता क्या । चाहे आप आरामकुर्सी पर बैठें हो, या गद्दे पर चाहे टाट पर बैठें हो या ठाट पर सारा हिंदुस्तान 'गस पाइप' पर टिका हुआ है । कब क्या होगा, कहना मुश्किल है । बीस बरसा से सभी को लगता है कि कहीं कुछ गड़बड़ है मगर आज तक किसी ने यह तकलीफ गवारा नहीं की कि स्वयं से पूछें कि क्या गड़बड़ है क्यों गड़बड़ है ।

कोई जानकर सचेत भाव से दुख स्वीकार करना क्यों चाहेगा । 'कहीं कुछ गड़बड़ है' कहकर अपने दैनंदिन त्रियान्ताप में लगे जाने में जो आनंद है, उस छोड़ना हर व्यावहारिक व्यक्ति के लिए मूल्यता होगी । और मूल्य होना या बनना कोई पसंद नहीं करता । भाषियो में बद के तमाम लोग जो सचमुच में बुद्धिमान थे, बौद्धिक थे, कवि थे, कितने दुखी हैं कितने परेशान हैं । हा सकता है कि वे हमारी तरह के व्यावहारिक बुद्धिमान न रहे हा क्योंकि अक्सर ऐसे लोग जो किसी सस्वृति की जीवन धरोहर होते हैं अपने समय के नितांत अयावहारिक व्यक्ति होते हैं । उनके समय के लोग उन्हें बूढ़ भी मानते हैं । ऐसे ही लोगो का कहना है कि बौद्धिक प्रौढ़ता हमेशा दुःखात्मक होती है । बद्धि से मेव्यार होने का अर्थ ही ट्रेजिक होना है । गांधी महात्मा कहा करते थे कि— जनता के लिए मूलभूत महत्व की वस्तुएँ केवल तक द्वारा नहीं प्राप्त होती । विरोधी को बदलने के लिए और विवेक की आवाज के लिए उसके कान खोलने के लिए जंगल के कानून की अपेक्षा दुख सहन कहीं अधिक सशम है । तब का प्रभाव अस्तित्व पर अधिक पड़ता है पर हृदय

म प्रथम दुःख प्राप्त हो जाता है। यह सुख व धार्मिक योग को प्रभाव करता है। तबपार मर्मा दुःख-मार्ग ही मान्य जाति का विस्तार है। (मम दर्शना ४ गणेश्वर, १६३१)। बचीर दुःखी है गुणगी दुःखी है भागी दुःखी है बूढ़ तो दुःख व प्रतीक ही थे। जो रते हम न माराव। हम मान्य दुःखी हों का मताभिप्राय क्या करा करें? गोपी का शपथ विनाश मरणा है धारणा। त्रि-रा-र तो गोपी मार ही गई। मर गए तो तबकीरें प्रपन्न घोर मृगियों तोहरे व धर्मिया का विचार बो। ऐसे लोगों की जाने गुरुर धनानाहक बडे-ठा। धारण म पहना विजयी बड़ी मृगता है।

मै शांति का मान मर कर मरने घोर भगुर शांति की का भाग्यं धर्म प्रमाणित करने का। क्या परमेस्वर म नहीं विना विना विना मान का मान मृगता है। ईशान मर पोतन हम धारण-मरणा का प्रमाण देने है। दूसरी घोर वह घोर भी धर्मिक धर्माम्भन हम न करता है—तुम तो विज्ञा हो के कारण सह्य मृगों का बहवार स-म हो। यदि कोई तुम्हें दागता म जकड़े, तुम्हारी पन-मरणा म जान तुमको ठके मरणा करे मा तुम्हारे मूँह पर पण्ड मारे तो तुम उमने प्रति गहि-म बनग हो। मै मरणा मरणा स्वीकार करता हूँ कि मुझ म लेगा करने की धारि नहीं है। इसलिए तुम मुझ म मृग समझा हो तो पाछे मरणा करन दा।

भांगिया म मर ये सभी लोग हमी प्रचार की उलटवारी मोलत है। ये मरणा भी करत है अपनी मृगता का बहवार भी, ये दुःख सहन भी करत है—मगर सत्य को धारण करती म मरणा धारण का धनुष नही करत।

घोर हम हैं कि इस मारी माता को गुनो से दार करत हुए अपनी विद्वत्ता म पागल है। धार्मिक मृग म मुठिधरी बांध सामने की दीवार म मरणा की पूछ को दार रहे हैं। घोर विरतर सोच रहे हैं कि यदि इतने छोटे स छ-स होकर माय दीवार पार कर ग- तो उसकी पूछ क्या पती है। हम सिर्फ इस विद्वत्ता मरणा से ही परेमान नही होन बड़े माहिस्त स उस पूछ को पकड़कर भागुदगी का अनुभव करते हुए बहवारते भी हैं—'वही कुछ गहवड है।

मै बताए देता हूँ भापको कि क्या गहवड है। भाप जो पूछ पकडे हैं वह जिन्दा माय की नहीं है, वह मर चुकी है। इसे पकडे पकडे भाप बतरणी पार करने का इरादा रखत हा तो इस से विरत हूजिए। श्रीमान्, अब जिन्दा माये बतरणी पार नहीं कराती वे अब राजनीति मे हैं। मुर्दा माय की पूछ जयादा खतरनाक होती है क्योंकि वे बखूबी भापको दुमछल्ला बना लेती हैं और भाप उसी मे चवरधिनी खेलते रहते हैं।

सोजिए मै चुप हा गया। गुस्ता बू- दीजिए। मगर वह पहली भांगी का

दबकन अपने प्राप क्या ऊपर की ओर उठ रहा है ।

“तुमसे एक बात कहने के लिए ।

हां, हाँ श्रीमान्, वह ढालिए । देर सही सही, आपने चमों से हाथ तो अलग किया । अब वह जाइए, जो कहना हो । और वह वृत्त उसी भाषी से बोलता है —

कबीर इस ससार कूँ समझाऊँ क बार ।

पूछ तो पकड भेड की उतरया चाहै पार ॥

बूढ़ा वसंत और मैं

१ अप्रैल १९६४

आज अप्रैल की पहली तारीख है। पहली अप्रैल—मूल दिवस। और आज मैं परेशान हूँ। मैं ? यानी मैं जो अपनी मूलता सहज ढंग से स्वीकार कर लेने को अभी तयार नहीं होता। मूलता का भी एक चक्र होता है। वष-चक्र की तरह। निमिष पल घटिका घाम दिवस, मास वष—यानी छोटी इकाई और उनका बीच का गुणात्मक सम्बन्ध। पुनः उनका एक चक्र, वसंत यानी प्रत्येक मूलता एक दूसरी को ही नहीं, अपने से भिन्न अनेक को जन्म देती है—और फिर जन्मजात मूलताएँ शिशुकाल में ही आधान धारण कर नये शिशुओं की माँ बनने का उपक्रम करती हैं।

एक माँ जो अपनी युवती लड़की के सामने किसी भी युवक प्रश्नकर्ता से अपनी उम्र बताते समय सख्याओं को हमेशा पीछे ठेल देती थी उस दिन बहुत दुःखी हो गई जब लड़की ने स्त्रीकृत हाथ भटकारते हुए कहा— 'माँ कम-से-कम अपनी और मेरी उम्र में नौ महीने का अंतर तो रखा ही करो।'

पर यहाँ तो शिशु मूलताओं को समय की ऐसी यड़बड़ी भी अभी लटकी नहीं क्योंकि मूलता प्राप्ति का यह 'बायलाजिकल' सत्य है कि हर मूलता जन्म लेते ही अनेक शिशुओं के प्रसव की योग्यता रखती है।

हाँ तो आज पहली अप्रैल है और मैं परेशान हूँ। मैं यानी मेरे भीतर का एक अजनबी जिसे आसानी से समझने के लिए बहुरूपिया भी कहा जा सकता है। अभी वह सीधा-सादा आमीष है निश्चल सहज और बेवकूफ जिसे नगर की सम्पत्ता अपनी रंगीनी और अजब चाकचक सज्जाती है तो अचानक अपनी भयानक गति बान के परदा को रेतने वाली आवाज़ और बदरग भीड़ की वृद्धि मानिषा से इतना परेशान कर देती है कि विस्तरे पर लगने का बाँस जागते जागते भी भोंपड़ी और सपरला की छाजन का भीतर से उठा हुआ कड़वा घुवा गीतन

कोहरे की तरह आँखों के सामने छा जाता है—एकदम भिनमारे अगहन के निथराये जल में स्नान करके सफे धुली साड़ियाँ पहन औरना की एक पात तालाब की ओर गात टूट जा रही है—

सगर सुपारिया लदलि मोरि नइया

कि हम घनि उतरब पासर

एकहक बिरवा में सबके रे देवों

हरि जी के देवो क छोइछा भार

में बनिजारिन राम की।

सगर सुपारियो से लदी हुई नावें। कहीं से आ रही हैं ये नावें। ठीक वर्षा के बाद नदिया के उद्वेग के उतरते ही ये नावें शायद किसी सुदूर पाना से लौट रही हैं। आज घनि अपनी बिरह-नदी के पार उतर जायगी। और हा, बाकी नाविका को तो वह पान का सिफ एक एक चीछा ही देगी, लेकिन अपने हरि को? उनके सामने तो पान भरा आँचल ही उलट देगी।

पर अब वे नावें कहा हैं? उनकी स्मृति में बच गए हैं बाँस के झोसों में लटके दीपक जो पता नहो किस भूले नाविक को अपने मद्धिम प्रकाश का दान देकर राह दिखा रहे हैं—विस्मृति के आकाशदीप। और नये धानो की बनी वह पीडिया जो किसी दूर दश आए नाविको को प्रेम के साथ बाँटी नहीं जाती, मिट्टी की हाँडिया में बंद करके पानी में बहा दी जाती हैं।

'तुम बिलकुल गावदी हो मेरे भीतर का यह नया मैं फुफकार उठना है। आधलक्षिता? यही पुरानी बहाव बलि यानी बहत्तपना। याद करो लीविस-ममफोड की। लोकगीता में खोकर आत्मप्रेचन करने की प्रवृत्ति क्या है? क्या है? यह एंटी हिस्टारिक एण्ड ऐंटी आरगनिक। किंतु मैं इस इतिहास विरोधी और विकास विरोधी क्यों मान लूँ? निफ इसलिए कि तुम्हारे लीविस और ममफोड ने यह फतवा दे दिया? 'नहीं इसलिए नहीं कि किसी ने ऐसा कह दिया, बल्कि इसलिए कि यह खुद में एक पलायन है जो हमें आधुनिक मूल्यों की तीखी ध्यास्या के उत्तरदायित्व से बरी करता है। माफ करना मैं फिर एक उद्धरण दे रहा हूँ मारजारी किनन रोलिंग्स का—रीजिनल्लिजम इज डेंजरस टु ए थाप एपरीगियेशन ऑव बैलूज (मूल्यों की तीखी विवचना के लिए प्रादेगिकता खतरनाक होती है) "अच्छा, अच्छा मान लिया कि यह सब पलायन है, तो होगा। तब किम।' मेरे भीतर का यह नया मैं' इस तरह मधुर-मधुर मुमकंराता है जैसे वह बहुत महान हा। उसे यह खयाल भा है 'नायद कि डाँट डपट इतनी ही ठीक होती है, जो नटगट लडके का किताब पेंक देने के लिए विवगन न करे। वह पुचकारकर कहता है—बुरा मान गए न्यिर मैं तो भई, तुम्हारी मदद करना चाहता था। तुम्हारे दुःख और भोग में सामो-

दार बनना चाहता था। भय देखो न, ममत्वा कुछ घोर है परेगानी का कारण कुछ दूसरा है मगर तुम वहीं घोर किसी चांगुरी की मूर्छना से बेगुप होकर ईहामृग की तरह भटकने के लिए बिना पर न्ये गए हो। एसी ही जाना है यह मादरता इन लावगीतों की, जो दुःख की सही व्याख्या म सगे मस्तिष्क को 'दुःखलाइजर' या नींद की दवा देकर बेहोश कर देती है। है न ?

प्रश्न कुछ दूसरा है। नायक यह कि आज पहली भ्रमल है और तुम परेगान हो। प्रयत्न यह होना चाहिए कि तुम पूछो अपनी गमूची धरि से, जागरूकता के साथ समूचे अंतमन को भ्रमभोर देने वाली निमग्न आवाज म पूछो कि तुम परेशान क्या हो ?”

प्रश्न यह नहीं है कि मुझे एक प्रश्न पूछना है। प्रश्न यह है कि मुझे यह प्रश्न किससे पूछना है।

मेरा नया मैं एक क्षण चुप रहता है। वह सायद सोच म पड़ जाता है। एक क्षण के लिए वह वृत्तबिद्य ग्लानि से गम्भीर हो जाता है, वह जानता है कि सवाल टेढ़ा है। आज हर कोई प्रश्न पूछने की तैयार है। हर मनुष्य कुछ पूछना चाहता है। मगर प्रश्न है कि वह किससे पूछे। एक क्षण तक सन्नत रहता है। मेरे दोना मैं एक दूसरे के प्रति इतने सहानुभूतिपूर्ण हो उठत हैं कि एक दूसरे से लिपटकर एकाकार हो जाते हैं। मुझे लगता है कि मैं यद्यपि परेगान भ्रम भी हूँ पर थोड़ी दूरतर कम हो गई है। मैं अपने म तदाकार म की खुशी के लिए लोकगीत भले न गाऊँ पर एक क्षण के लिए मुझे 'मूल्यो' की बात न उठाने की भी जसे स्वतंत्रता मिल गई हो।

लेकिन तुम दोनो ही बेवकूफ हो' यह मेरी आत्मा के भीतर एक तीसरा 'मैं' बोलता है। बुद्धिमान, समझदार, व्यावहारिक मैं जो शहरी है, नागरिक है। सभी तरह के व्यावहारिक ज्ञान से दीक्षित है। जो राजनीति से बाजार से यानी मयाय जीवन की सभी बारीकिया से खूब परिचित है।

प्रश्न के भीतर ही सबोध का रूप छिपा होता है। तुम प्रश्न बताओ। म बतझंगा कि यह सवाल तुम्हें किससे करना चाहिए।

मेरे दोनो एकाकार म उसकी ओर आश्चय से देखते हैं। दोनो उसकी अमर वाचालता पर खींचे हुए भूला पड़ते हैं— 'प्रश्न है कि मैं परेशान क्यों हूँ।'

तीसरा 'म' नि सकोच ताली पीटकर खिलखिलाता है।— 'इसलिए कि आज पहली भ्रमल है और तुम भूल हो। तुम खाना खा चुके हो। मुह म भगही पान के दो बीड़े भी हैं और सुगन्धित जर्दा भी। आनंद में टोंग पसारकर चारपाई पर सेट जाओ। दिन भर इधर उधर दौड़ते रहे हो। थूटो कर आये भ्रम आराम करो। पड़े पड़े नींद नहीं आती तो कोई चटपटा उपवास उठा

ली। उससे भी काम नहीं बनता तो पत्नी से छेड़ छाड़ करो। यदि वह तयार हो जाती है तो परेगानिया का कृत्रिम झाँपी और तूफान के मकारे में टूट-टूटकर उड़ जाने दो और यदि नहीं तो पर हाथ धोकर नौद बुसान की कोशिश करो कुछ-न कुछ घाराम मिल ही जायेगा—'

म इस नये 'म' की और विवृत चेहरा बनाकर देखता हूँ। बगलोल वहीं के। म' विरक्ति और घणा स होंठा के विदोर विदोरकर बहता हू—'यदि ऐसा ही होता तो मैं भी एक सफल इंसान हो गया होता। न सही ऊँचा पन, निचल दर्जे के लिए दो चार बोस बुस लिखकर ठाट से रकम चीर सकता था। न सही यह भी चार सौ रुपये ही क्या कम हैं।—प्रोफ़ेसर हूँ, दो चार छादमी जानते मानते हैं—गये—बलाभा में बकबका कर घले भाये। लहके-बकचो से बातचीत की। तानकर सो रहे—क्या मजे से जिंदगी कट जाती है। है कि नहीं। बहुत बुद्धिमानी सूझी तो यहाँ-वहाँ दरबारों में यदा-कदा हाजिरी दे दी। मौका देखकर इसकी उसकी सिकायत भाड़ दी।'

प्रोह। सो यूँ घार आल्सो एन इटेलीजेन्ट मैन।

श्री क' दाँत निपोरकर हँसे, मन भी दाँत निपोरकर अपनी बुद्धिमानी स्वीकार कर ली—यस सर, आई एम आल्सो इटेलीजेन्ट मन साइक यू वाह वाह। क्या बात है, जरा लाभा जी साहब के लिए एक कप चाय।' 'तो आपको पान खाने की आदत है?—मैं जानता हूँ कि श्री क' पान नहीं खाते इसी से बहुत भीठा बोल लेते हैं। मैं अपने अपराध को छिपाने के लिए यों हसता हूँ गोया मन कोई बहुत सुंदर मजाक कर दिया है—'जी नहीं, आदत बादत तो क्या बस, बनारस है न—सा कभी कभी खा लेता हूँ।—श्री क' खुश हो जाते हैं क्योंकि उन्हें लगता है कि घरेलू कामों का हल करके मौकर को पान खाने भेजने की मुश्किल से छुटकारा मिल गया। वह भी खुश। मैं भी खुश।। सभी खुश।।। कितनी अच्छी जिंदगी है यह—कोई परेशानी नहीं आई किफ़ नही।

पर मैं मूख हूँ। यह सब कुछ करके सीटने पर अपनी इस भान-ददायक चलासमय स्थिति से सतुष्ट नहीं हो पाता। कोई कसक है जो कलेज के भीतर दीसती है। कोई जीवत स्नायु भीतर में कहीं कट जाता है और फिर लाल लाल खून इधर उधर सब कहीं फलकर थक्के का थक्के जम जाता है।

मुझे लगता है कि सामने के पीपल की लसछोही छाया बहुत बहुत जुगुप्सा से भरी हुई है। लेकिन फिर मुझे उन मुलायम मुलायम महती लगी चिकनी हथेलियों की तरह, खूबसूरत पतियों पर बड़ी दया आ जाती है। मैं उन्हें बड़ी ललचायी-ललचायी नज़र से देखता हूँ। मेरे सामने जस असह्य हथेलिया फली हुई हैं। जसे हर एक घरघराती वापती कह रही हो मुझे धाम लो।

पनपी, मुझे कुछ नहीं मालूम ।”

“साथ को भाड़ म फेंको मिस्टर !” मैं भल्लावर उस ‘मैं’ के बच्चे का कालर पकड़कर भक्भोरता हूँ। गुप्ते के मारे मेरा सारा वदन थरथरा उठता है— मैं परेगान हूँ, घोर तुम्हें मजाक मूझना है। साथ का दास मैं नहीं हूँ तुम हो। तुम जो समझ लेते हो दुनिया म एक व्यक्ति की परेशानी या हैरानी का कोई अर्थ नहीं। यह तुम्हारे साथ ने कहा है न कि मनुष्य व प्रत्येक कम दरावर महत्व के हैं, चाहे वह अकेले बैठकर गारा पीना हो, चाहे किसी राष्ट्र का नेतृत्व करना ?”

आफ !

—सभी मुझे समता है कि मैं परेशान तब से हूँ जब से मैंन आज का भल्लवार पढ़ा है।

मैं आज का भल्लवार मेज से उठा लेता हूँ और प्रमुख खबरा को एक दम से नोट कर लेता हूँ

(१) गैल अन्दुला रिहा किये जायेंगे। कश्मीर के प्रधान मंत्री की घोषणा।

(२) कम्युनिस्ट पार्टी के सेक्रेटरी ने कामपक्षीय गुट को अनुशासन भग करने पर कठिन दण्ड देने का निर्देश किया है।

(३) सर्वोच्च न्यायालय ने देश की सभी असेम्बलिया, न्यायालया न्यायिक संगठनों को सूचना दी है कि व उत्तरप्रदेश की न्याय और विधान पालिकाओं के बीच सधप से उत्पन्न स्थिति पर विचार होत समय अपने प्रतिनिधि भेज सकते हैं।

(४) पाच हज़ार गृहस्थिना का महगाई के विरोध म गिल्ली म प्रदर्शन।

क्या इन चार खबरों के पढ़ने म मुझे परेशानी हुई ? मैं इस पूरे प्रश्न की तरह से जाने के लिए क्या न इन खबरों को पूरी तरह विश्लेषणकर सामने रखूँ। क्यों न इनके सभी पहलुओं को एक-एक प्रश्न की तरह उछालकर अपने मन के उन सभी मैं रूपों से पूछूँ कि तुम इन पर अलग अलग या इकट्ठा क्या सोचते हो।



अन्दुला की रिहाई से मेरे एक मैं को खुशी है। यह मैं शायद मनुष्य की महानता म सामान्य से अधिक विश्वास रखता है। इस मैं को लगता है कि अन्दुला न्याय नियति के हाथ का एक महान शस्त्र है। अब नियति अपने ‘कॉस्मिक वल्ल’ को पूरा करके नया चक्र लेना चाहती है।

हिंदू मुसलमानों के रंग पर क्या कुछ कम लिखा गया है। 'पेशावर एक्स्प्रेस', 'हम बहती हैं,' और 'इंसान भर गया,' 'शरणार्थी' आदि रचनाएँ इतिहास के अंगारक पट्टों के कितने जलते सादय आज तक बैसे ही सजाए हुए हैं। मनुष्य की बहगत को धिक्कारकर हम खुद चुप हो गए। पर वह बहगत अभी खरम नहीं हुई। भीड़ का दूसरा नाम ही शायद बहगत है। यह भीड़ हमारा भीड़ नहीं है और रहेगी। कीकशाद ने इस भीड़ के लिए कहा था कि यह 'भीड़ कोई भी भीड़ चाहे वह आज के जिन्दा लोगो की भीड़ हो या प्राचीन में मरे लोगों की भीड़ हो, चाहे वह कमजोर और अभागे लोगो की भीड़ हो, चाहे जबदस्त और तबिलगाली लोगो की भीड़ हो, गरीबों की हो या अमीरों की हो,—एक भीड़ अपने अस्तरीय में हमारा ही झूठी रही है क्योंकि वह हमेशा ही एक व्यक्ति को बेईमान और गैरजिम्मेदार बनाती है या कम से कम उसे एक नाचीज वस्तु बनाकर उसके जिम्मेदारी के बोध को निवृत्त करती है।' यह भीड़ ही है जो नीच-से नीच और जघन्य से जघन्य कार्य करके भी सभी परचात्ताप का अनुभव नहीं करती। यह भीड़ हमेशा ही समाजद्रोही मानवता द्रोही व्यक्तियों को पनाह देती है। यह भीड़, जिसके कोई हाथ और पैर नहीं होने घोषित कामा को लाखों लाख उधार मंगे हुए, या भाड़े पर खरीदे हुए हाथों और पैरों से पूरा करती है।

भीड़ के जिस तरह हाथ और पैर नहीं होते उसी तरह उनके सिर भी नहीं होते। यह किन्ती भयानक बात है पर इससे भी अधिक भयानक यह है कि यदि भीड़ चाहे भी तो हाथ-पैर की तरह सिर उधार या निराये पर नहीं पा सकती। जो यह भीड़ हमेशा ही सिरहीन सहस्रबाहु के समान निरीह आश्रम चारी व्यक्तियों को बलात् पशु की तरह खींचकर उनमें सभी मानवीय और ममतायु स्नेह सूत्रों से तोड़कर कटीले बाँधों या चहानदीवारियाँ बनाकर फँस देती है।

और जब इस सिरहीन भीड़ को पागल बनाने वाली मदिरा या कोई नगा पिशाच उभर कर खिंचा जाए तो क्या कहना। तब तो इसके खूनी पंजे में गरीब, सामान्य और मामूली व्यक्ति की रक्षा कर पाना असंभव ही हो जाएगा।

भीड़ को जो गहराँ सबने अधिक प्रसन्न और मनवाना बनाती रही हैं उनमें हम शायद सबसे अधिक पुरानी और तीखी वस्तु हैं। तभीना यह है कि जो लोग हमका नाम महर भीड़ की तरह-तरह के अमानुषिक कार्यों के लिए उभराने हैं वे शायद ही हमका मनी धन समझते हों, अपना इमर बनाए हुए

किसी रास्ते पर नियमपूर्वक चलकर अपनी भ्रातरिक धनितया के दिवास या कम-से-कम मानसिक धान्ति के लिए ही प्रयत्न करते हैं।

देश विभाजन के पहले घम की शराव ने हमें कितना प्रमत्त किया और कैसे कैसे भयानक दस्य उपस्थित कराए, इसे दुहराने की जरूरत नहीं है। किंतु विभाजन के बाद सोलह सत्रह वर्षों के अनन्तर पुनः इसी प्रकार का धार्मिक उमाद पूरे उपमहाद्वीप की धान्ति को भग कर रहा है यह अवश्य ही प्रत्येक जिम्मेदार व्यक्ति की चिन्ता और परेशानी की बात हो सकती है। एक ऐसा भू-खण्ड जो घमों के समक्ष पर आधारित और विकसित हुआ है, जिसमें एक साथ ही मानवीय प्रकृति के विविध पुष्पों की बेसह-क्यारियाँ सहाराती रही हैं। इसमें नगर-सम्पत्ता के आरम्भकर्ता ब्रिडो का मान-दभोगमय सुगंधित द्रव्य सिक्त जीवन है तो आखेटक घायों का उन्मुक्त उल्लास भरा उपस गान। परबर्ती घायों की बहुदेववादी वनेचर ससृष्टि तो है ही, उपनिषदों की 'परमसत्य' में अन्वेषण-तत्पर बुद्धिवादिता भी। एक और राज-य-जीवन को आदरा बनाकर बहने वाली पौराणिक ईश्वर-पूजा की समन्वयधर्मा भागीरथी है तो दूसरी और निर्वाणो-मुक्त श्रमण ससृष्टि की यरिक्ता भी। वही मूर्तिभजक घमों-माद की आक्रामक सम्पत्ता है, तो ठीक उसके नीचे 'प्रेम की पीर में डूबे सूफियों की 'पारस रूप' में आसक्त उदारतावादी फकीरी भी। इसमें कबीर हैं, नानक हैं। इसमें रवाड़ा निजामुद्दीन हैं, खुसरो हैं, तानसेन और बीरबल हैं, मुगल चित्रकला है ताज है चाँदबीबी है टीपू सुल्तान है।

मुझे सज्जाद जहीर का वह निबन्ध याद है ताज के बारे में जिसमें लेखक ने बड़ी गम्भीरता से पूछा है कि 'यदि ताज इसलामी ससृष्टि की देन है तो यह उन देशों में जहाँ इस ससृष्टि की नींव भारत से वही अधिक पुरानी और मजबूत है, क्यों नहीं बना? क्यों नहीं ईरान ईराक अरब देशों या अफगानिस्तान में ताज का निर्माण सम्भव हो सका?'

और तब लेखक निस्संकोच उत्तर देता है 'भारत में ताज इसलिए बना कि वही कारीगरों के पूर्वजों ने अजन्ता और एलीरा बनाया था।'

यह एक उदार सांस्कृतिक प्रेम है। मानवतावादी महान दृष्टिकोण जिसकी सदा की जाग्रत शीघ्र शिक्षा बढ़ न बड़े तूफान में भी कभी काँपी नहीं कभी बुझी नहीं। इसी दृष्टिकोण की आन्तरिक प्रेरणा शेख अब्दुल्ला की रिहाई पर एक बुजुर्ग दाशनिक् को यह कहने के लिए बाध्य करती है 'शेख अब्दुल्ला को छोड़ने का निणय एक आस्था का काय है।' हमारे राष्ट्रपति इसे एक विश्वास और आस्था का काय मानते हैं।

इसीलिए मैं कहता हूँ कि शायद अब्दुल्ला नियति के हाथ का एक साधन है जिसके माध्यम से भूणा, सदेह पाशविकता के वातावरण को समाप्ति हो सकती

है। 'वास्तविक वृत्त' नय युग में प्रवेश कर सकता है, जहाँ हर एक व्यक्ति अपने उदार मानवोचित काय को 'एकट भाव फेय' मानकर आत्मिक सताप का अनुभव कर सकता है।

'यह एकट भाव फेय (विश्वास का काय) स्वयं में एक प्रबल सन्नेह का सूचक है।' मरा तीसरा 'मैं अचाक' बोल पड़ता है। 'जब अपने उचित और महज काय को आदमी आदर्शात्मिक मूल्यों में जाड़ता है तो उसके मन में अपने काय के परिणाम के प्रति सन्नेह अवश्य होता है।'

माम लीजिए एक व्यक्ति किसी कारणवश आपसे दानुता करता है, वह आप पर छिपकर छुरा मारने का प्रयत्न करता है और पकड़ा जाता है। इस पूरे मामले को पुलिस में न देकर जब आप यह कहने हैं--"जाओ माई मैंने तुम्हें छोड़ दिया। तुम्हें जरूर कहो-न रही भ्रम है। मैं तुम्हारा दानु नहीं हूँ। इसीलिए इस मामले को भागे न बनाकर मैं यही खत्म करता हूँ और तुम्हें यह भीका देता हूँ कि तुम भविष्य में इस तरह का नीच काम नहीं करोगे।" तो आपका यह 'एकट भाव फेय' निस्सन्नेह एक उदार मानवोचित काय है, यह एक ज़ेबा आदेश है। किंतु जब आप स्वस्थ चित्त से अपना इस 'एकट भाव फेय' का विश्लेषण करते हैं तो क्या मिलता है?

तब आप एक द्विविधा और सन्नेह में जकड़े हुए दिखाई पड़ते हैं। आपको लगता है कि उसे छोड़कर आपन बहुत अच्छा नहीं किया। वह फिर बसा ही कर सकता है। कि तु उसी क्षण आप यह भी सोचते हैं कि हो सकता है वह सचमुच भ्रम में रहा हो। और फिर यदि वह इस पर तुला ली है तब तो पुलिस में केस देने से बात और बढ़ती ही। छूटकर वह एक-न-एक दिन फिर आता और तब आप बिनतुल घबरा जाते हैं। क्योंकि अपने अस्तित्व की सुरक्षा के लिए यह भटना, जिम प्रकार की सावधानी और अनवरत चौकन्नेपन की माँग करती है वह स्वयं में एक बहुत बड़ी परेशानी है और उस दौर से निरंतर गुजरना बहुत स्वस्थ स्थिति का सूचक नहीं है। इसीलिए आपका उसे मुक्त करना मानी एकट भाव फेय कई-कई अर्थ रख सकता है।

'मनलब यह कि आप समझते हैं कि हमारी सरकार ने घबराकर, अस्वस्थ स्थिति के कारण शेख आदुल्ला को रिहा करने का निश्चय किया है।

'विलुक्त —मरा तीसरा मैं इस ढंग से तमतमाता जा रहा था जैसे सामन की टेबुल पर हाथ पटककर कोई वक्ता अपने उद्देश्य की अभिव्यक्ति करता है— 'आप क्या समझा है कि आदुल्ला कश्मीर पर भारत का अधिकार मान लेगा? आप समझते हैं कि वह पाकिस्तान को विवश करेगा कि वह अपने मुसलमान नागरिकों को हिंदुस्तान में अवध घुम-पट्टे राखे? क्या आप समझते हैं कि आदुल्ला के रिहा कर दिए जाने से पाकिस्तान के अस्थिर गरीब निर्धन हिंदुओं

का वध रुक जाएगा ? क्या आप समझते हैं कि अन्दुल्ला की रिहाई से जेहाद के गगनचुम्बी नारे शांत हो जाएंगे ? क्या आप समझते हैं कि अब पाकिस्तान में हिंदुओं को जलील नहीं किया जाएगा, उनकी अस्मत् और इज्जत के साथ मिल-वाइ नहीं होगा ? क्या आप मानते हैं कि एक व्यक्ति की रिहाई हजारों हजार अवोध बच्चा के कत्ल को रोक लगी ? क्या आप यह मानते हैं कि अब पाकिस्तान में हिंदू महिलाओं के साथ बलात्कार नहीं होगा आगजनी रुक जाएगी ? आप यदि ऐसा मानते हैं तो आप या तो बीतराग योगी हैं या निहायत निवृष्ट कोटि के बुद्धिहीन प्राणी हैं ।

‘क्या, क्या तुम मानते हो कि मुसलमान जाति केवल पार्श्विक अत्याचारों के स्तूप का ही नाम है ?’ मैं अपने इस छूनी क्रुद्ध ‘मैं’ के सामने घुटने टक देना मनुष्यता की हार मानता हूँ । ‘यानी तुम ‘Manicheanism’ में विश्वास करने वाले प्रतिवादी हो । तुम शास्वत शतानियमवाद में आस्था रखते हो । तुम्हें इसमें जरा भी सन्देह नहीं होता कि पाकिस्तान में होने वाले ये काम मुठ्ठी भर बरगलाय हुए, अभिमित समाजद्रोही लोगों से कराए जाते हैं ?’

‘नहीं इसमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं होता ।’ मेरा यह तीसरा मैं मेरी बातों को बीच में ही काटकर उबल पड़ता है— पाकिस्तान की हरकतों को न समझने का नाटक कांग्रेसी शासक कर सकते हैं जिन्हें उनके वोट के बल पर गद्दी पाने का लालच है । उन्हें ही यह नहीं दीखता होगा कि पाकिस्तान पूरे भारतवर्ष का एक मुसलमानी उपनिवेश में बदल देना चाहता है । हमारे शासक भल ही इन हथकण्डों को न समझें या समझकर चुप रह जाएँ लेकिन हम सब समझते हैं । पाकिस्तान एक और उस क्षेत्र को, जो उसके अधीन है हिंदुओं ईसाइयों को निकालकर पूरी तरह मजहबी राज्य में बदल रहा है । वहाँ वे सभी साधन और तरीके मुहैया करवा रहा आक्रमक इस्लाम फूले फले । इधर भारत में पाच करोड़ मुसलमानों के रूप में उसका सेवेण्ड फ्रण्ट तैयार है जो शत्रु के घर में शत्रु की मूल्यता के कारण निरन्तर सक्रिय होता रहेगा और समय आने पर जब पाकिस्तान बाहर से हमला करेगा वे भीतर से तोड़ फोड़ की कारवाइयाँ करके उसकी सहायता करेंगे । पाकिस्तान की प्रतिरिक्त आवादी को प्रेरित करके सुशिक्षित करके एक निश्चिन्त अभिप्राय से सीमांत प्रदेशों में भेजा जा रहा है ताकि वे सीमा पर निरन्तर अशांति और गड़बड़ी पैदा करें और इस प्रकार पाकिस्तानी आक्रमण के समय इन प्रदेशों पर कब्जा करने के लिए आवश्यक अवसर और स्थिति उत्पन्न हो जाए । क्या हम यह सब नहीं समझ रहे हैं ?’

मतलब कि हिंदू सम्यता और मस्तिष्क सतरे में है ?’ मैं ‘यय से पूछता

'विल्कुल। हिंदू सभ्यता और सस्कृति का कोई नाम लेना पानी देना भी नहीं है। हिंदुस्तान में एक स्थान पर साम्प्रदायिक दंगा हो जाए तो सभी मुस्लिम देश, चाहे वे उदार हो या बठोर प्रगतिशील हों या पुराणपथी एक स्वर से इसके लिए विरोध करेंगे। उनका विरोध जबानी जमा-सक नहीं है, इसे हम जानते हैं, इसलिए हम अपना यह आवश्यक क़ाय मानते हैं कि किसी विशिष्ट मुस्लिम प्रतिनिधि को अपनी इस्लाम प्रियता का सबूत भी देना कि वह कह सके कि 'मुझे प्रसन्नता है कि भारत में पाँच करोड़ मुसलमानों को जीवन-यापन के सभी साधन और अवसर प्राप्त हैं तथा उन्हें अपने धर्मानुकूल आचार-व्यवहार के लिए पूरी आजादी मिली है।

पर पाकिस्तान में हिंदुओं के साथ जो कुछ भी होता है उस पर कौन विरोध करे। भारत तो धर्मनिरपेक्ष राज्य है। लेकिन एक नेपाल है जो अपने को हिंदू राज्य कहता है लेकिन वह क्यों भारत और पाकिस्तान के झगड़ों में नाटक फँसकर परेशानी उठाए।

यह तीसरा मैं अपनी बातें कुछ इस भाव और वेग के साथ कह रहा है कि सहसा मुझे कोई उत्तर नहीं सूझा। मेरा आधुनिक ग्रामीण मैं उसकी बातों के डोर और झाला की चमक से अभिभूत-सा हो गया। उस लगता है कि जो कुछ यह कह रहा है वह एकदम सभूठ नहीं है। मन में सन्देह की काँड़ी घब भी घनी है कि हर मुसलमान शांति का रूपांतर नहीं होता, पर अपनी सभ्यता और सस्कृति की निष्पायता जैसे निरीह गाय की तरह अपनी ओर निरंतर खाच रही हो। एक मुसलमान लड़की हिंदू परिवार में या हिंदू लड़की मुसलमान परिवार में हमेशा ही कुशल गृहिणी साबित हुई है। उनसे उत्पन्न बच्चे शुद्ध मुसलमान से किसी मामले में कम मुत्तर या बुद्धिमान नहीं होते, पर यह सोचकर कि पाकिस्तान में अनेक हिंदू लड़कियाँ को बलात् परा में डाल लिया गया है बुरा लगता है। लगता है जस एक व्यक्ति मोड़ के घरवाचारों से पीड़ित जीवित द्वेजेडी बन गया है। एक लड़की अपरिचित बानावरण में अपमान, असहायता और ग्लानि की मूर्ति बनी विरोधी परिस्थितियों से जूझ रही होगी। हारकर टूट रही होगी और अस्तित्व के सामने शिव अनेक प्रदर्शित का उत्तर प्राप्ति के गुन संचित कर रही होगी।

How morbid it is कभी भावुकतापूर्ण अवस्था ग्लानि है। मेरा दूसरा मैं इस पूरे गंजीन बानावरण को अपने कंकट टूटने से तार-तार बरस टूट मुसलमान कोना—'यह एक मक्खी और जीवन भुक्ति है पर यह है इतिहास की 'भुक्ति'। पाकिस्तान और हिंदुस्तान में क्या कुछ हा रहा है इस एक तरफ रणरतन उदात्त का साथ साथ कि धार्मिकी धार्मिकी में इन मक्खी को गुनकर इतना दूँ एगी पीड़ा, एगी भुक्ति क्या है? अपने न ता मक्खी को प्रमनिय

का पता लगाया, न तो अपनी आँख से आपने दगा के बीभत्स रूप ही देखे, फिर ऐसी जीवन्त पीड़ा आपके चित्त में क्या उत्पन्न हुई ? क्या इसलिए कि आप हिंदू धर्म या सस्कृति से प्रेम रखते हैं ? क्या इसलिए कि आप मनुष्य को दुखी नहीं देखना चाहते ? किसलिए ?”

वह इसलिए कि आपका अन्तर्मान इतिहास की कृत्रिम खोल से ढका हुआ एक ऐसा पदार्थ है जो गूँधी आसानी से कुछ मूल्यों, कुछ सत्यों और कुछ धारणाओं का शिकार हो सकती है। ये मूल्य, ये सत्य, ये प्रतीतियाँ आपके अन्तर्मान में कई सौ वर्षों की सगावतार कोशिश से बँध गई हैं। ये धीरे धीरे आपके जीवित मन का हिस्सा होनी जा रही हैं। पहले इस ऐतिहासिक खोल को आप उस तरह ढोते थे जैसे बछुआ अपनी मोटी और बड़ी खोल को ढोता है। यह खोल, हो सकता है आपकी रक्षा करने में सहायक हुई हो, किंतु यह खोल धीरे धीरे जमड़े के भीतर प्रविष्ट हो रही है इतना ही नहीं यह एक अदभुत रासायनिक प्रक्रिया से आपके व्यक्तित्व का भ्रम बनती जा रही है और याद रखिए कि मरे इतिहास की खोल जब जीवित व्यक्ति के भीतर प्रविष्ट होकर उसका खून, मांस और मज्जा बनने लगती है तो उस व्यक्ति के भीतर तरह-तरह के असामान्य तत्वों का उदय होता है और ये तत्व न सिर्फ उस व्यक्ति को अस्वास्थ्य, पागल या प्रमत्त बना देते हैं बल्कि धीरे धीरे जीवन को ग्रामूल ऐसा बदल देते हैं कि उसके मनुष्य बने जाने में भी सन्देह उत्पन्न हो जाता है।

इस खोल को तोड़ने के लिए बहुत दिनों से प्रयत्न किए जा रहे हैं। इसे तोड़ने के लिए खुसरो और तानसेन ने उन रागिनीयों की सृष्टि की जो पत्थर को पानी में बदल देती थी। पर क्या आपने सुना नहीं कि हमारे बीच ऐसे अनेक इंसान हैं जिन्हें रविशंकर का सितार-बादन सुनकर कानों में दह का अनुभव होने लगता है। इस खोल को तोड़ने के लिए कबीर और जायसी ने प्रेम का वह रूप हमारे सामने उपस्थित किया जिसका स्पर्श से—

होताँह बरस परस मा सोना

धरती गगन मयड मनो सोना

किंतु आपको याद यह मालूम होगा कि कबीर और जायसी को असाहित्यिक या साहित्यिकतर कहने वालों की सरया भी कम नहीं है। और जायसी के बारे में अक्सर कहा जाता है कि वह मौलवी और मुल्लाओं से ज्यादा खतरनाक था, क्योंकि उसने एक हिंदू प्रेम की कहानी लेकर इस्लामी मिद्दाता का प्रचार किया था। किंतु मुझे सन्देह है कि जो लोग ऐसे मूल्यों में विश्वास रखते हैं वे कभी उपनिषद् की भी प्रशंसा कर सकते हैं अथवा पुरुखा उवशी या कान्धारी की प्रेमकथा को आत्मविभार होकर पढ़ सकते हैं।

इस खोल को तोड़ने के लिए मध्य काल तथा वर्तमान काल में भी अनेक

हिंदू और मुसलमानों ने अपनी आहुति देकर जी-तोड़ प्रयत्न किया, कि तु यह खोल न टूटी। कभी ऐसा लगता था कि यह पतली अवश्य होती जा रही है, पर सचमुच यह पतली नहीं हुई, चिकनी हो गई थी।

आप कहेंगे कि उस खोल को तोड़ने का उपदेश सिर्फ हिंदुओं को ही क्यों दिया जाता है ?

अब तो यह उपदेश नहीं है मानवता की भामूली और अत्यंत आवश्यक एक शत मात्र है, दूसरे यह प्रश्न ऊपर से खोल तोड़ने के औचित्य को स्वीकार करता सा प्रतीत होने पर भी उसे मजबूत बनाने वाला प्रश्न ही है, क्योंकि इसमें हिंदू और मुसलमानों को दो भिन्न किस्म के मूल्यों में बँटी हुई जाति मान लिया गया है। बात आज सिर्फ मनुष्यता की ही होनी चाहिए, क्योंकि जातिगत मूल्यों की धारणा भी मरे हुए इतिहास की ही देन है। यह कितने दुःख की बात है कि हम जिन्दगी के हजारों दूसरे कामों में इस जातिगत मूल्य को बड़ी आसानी से नजरअंदाज कर सकते हैं किंतु जिन्दगी के सबसे महम मसले यानी मानवता से सम्बद्ध मसले के स दम में हमेशा ही यह जातिगत मूल्य धाड़ें होकर खड़ा हो जाता है। बहुत सुंदर बाल काटने वाला अशरफ हज्जाम एक व्यक्ति है मुझे उसके परिश्रम या कौशल से जो सतोष या मुक्त मिलता है उसमें उसका जातिगत मूल्य कभी भी बाधक नहीं लगता। सुलेमान दरखी न सिर्फ मेरी कमीजें बल्कि पत्नी की 'लाउजें' और बाडिसें सीता है और हम दोनों यह जानते हुए कि वह मुसलमान है, उसकी तारीफ करते हैं। कभी मुई, खिलौने टीन के छोटे छोटे खूबसूरत बरतों किसी भी मुसलमान बिसाती से खरीदते वक्त हिंदू बच्चे खुशी के मारे पागल हो जाते हैं। मुसलमान लड़की से प्रेम करने में जो सुख है वह किसी और लड़की से कम नहीं होता यही नहीं मुसलमान बेइयांओं से शादी-त्योहारों पर जिस कदर की रंगीन बातें धार्मिक पंडित और बाबू साहब किया करते हैं वस तो सामान्य हिंदू सायद ही कर पाता हो।—मुझे याद है मेरे एक मित्र ने जब यह सुना कि नगिस ने एक हिंदू से विवाह कर लिया है तो बड़े खुश हुए। पर जब उन्हें बातचीत में यह पता चला कि नगिस के पिता हिंदू थे तो थोड़ा उदास हो गए।—यानी हिंदू मुसलमान की पारस्परिक घणा-कितने कमजोर बाँधों पर आधारित है।

लेकिन जब दश गुरु होते हैं इतिहास की विनाल खोज अपने घेरे में अनेक व्यक्तियों को समेटकर भीड़ की शक्ति अस्त्रियार कर लेती है तो हम बड़ी आसानी से किसी हज्जाम किसी दरखी किसी बिसाती किसी कुजड़े किसी खूबसूरत मुसलमान लड़की किसी रंगीन मुसलमान बेइयां की हत्या कर बैठते हैं। एक व्यक्तिगत रूप से परिचित गरीब स गरीब मुसलमान व सामने खड़ा होकर कोई व्यक्ति मार नहीं पाता क्योंकि उसकी आँखों की इंसानियत सामने वाले व्यक्ति

की इतानियत से इस कदर जुड़ी है कि कोई उसके बंधन को तोड़ नहीं सकता, किन्तु जब वही व्यक्ति भीड़ में शामिल हो जाता है वह इस कदर मशीनी और भावशून्य हो जाता है कि उसे कुछ भी कर बैठने में किसी प्रकार की ग्लानि नहीं होती ।

अतः यह सिद्ध हुआ कि सहज अस्तित्व और जीवन का जहां तक संबंध है, हिन्दू और मुसलमान मूल्य कभी भी एक-दूसरे के विरोधी नहीं माने जाते । विरोध सिर्फ कृत्रिम रूप से वहाँ उत्पन्न होता है जब ये मूल्य व्यक्तिगत मूल्यों के स्थायी रूप से च्युत होकर उस भीड़ के मूल्य बन जाते हैं जिसे ऐतिहासिक घम के ऊपरी रूप से पुजारी या मौलवी अथवा स्वायत्त के लिए प्रेरित करने वाले राजनीतिक पाशविक घरातल पर उत्तेजित कर देते हैं ।

‘हिन्दू स्वभाव से ही कमजोर होता है,’ एक मित्र कह रहे थे, ‘वह दूसरा का खून कर ही नहीं सकता । ऐसा कायर कौन कब तक जी सकेगी ?’

किन्तु मुझे लगता है कि आत्मा से कायर तो वह है जो भीड़ में छिपकर, भीड़ की उत्तेजना से प्रेरित होकर किसी व्यक्ति की हत्या करता है ।

इतिहास की खोल इसीलिए स्वभावतः भीड़ का गुण और घम है । इसने हम जो मानव मूल्य दिए हैं वे कभी भी व्यक्ति मूल्य बन नहीं पाते । यह मूल्य हमें ही व्यक्ति मूल्य की हत्या करता रहा है । यकिन स्वातंत्र्य की हत्या । अपने मूल्यों को तो वह हत्या करता ही है । यह खुद में एक सकुचित, ईर्ष्यालु भयभीत प्राणी होता है जो इस बात पर धीरे धीरे विश्वास करने लगता है कि वह एक महत्त्व काय कर रहा है जबकि सत्य यह है कि सभी प्रकार की मानवीय विशिष्टताओं से वंचित होकर इतिहास की ऊपरी खोल मात्र बन जाता है जो खुद दूसरे के विकास और सुधार में तो विश्वास को ही बैठता है अपने विकास और सुधार के दरवाजे भी बंद कर देता है । मुसलमान कभी भी नेक इंसान नहीं बन सकता यह मान लेना इस बात का प्रमाण है कि हम इतानियत के विकास और सुदृढ़ भविष्य में किसी भी प्रकार का विश्वास नहीं रखते । और जो व्यक्ति इस मायता के पीछे दीवाना होकर असामान्य जीवन व्यतीत करता है वह निश्चय ही प्रेतात्मा का जीवन व्यतीत करता होता है इसमें सन्देह नहीं ।^१ और आप यदि जैसा मानते हैं कि हिन्दू-संस्कृति बहुत महान् है, तो क्या वह भीड़ के, उत्तेजित भीड़ के, पाशविक घम को ही अपना मन्तव्य मानेगी ? इतिहास प्रदत्त खोल से भिन्न सहज मानवता की अग्रिम यात्रा ही इस संस्कृति को सही अर्थों में समृद्ध और जीने योग्य बनाएगी, इसमें सन्देह नहीं होना चाहिए ।

‘सक्ति मेरे दोस्त, इतिहास हीन होना कोई गव की बात नहीं है, तीसरा

‘मैं व्यग्र से मुह को विद्रुप बनाकर बोना “टू रि अनहिस्टारिक्ल इज प्रोग्रियन सिन, अनतिहासिक होना प्रोग्रेसिवन पाप है।

हो सकता है कि यह पाप हो किंतु विवर्गता है क्योंकि धार्मिक व्यक्ति इस तरह के पाप में जीने के लिए अभिशप्त है।’

किंतु अ-दुल्हा !

हां किंतु

अफमोस है तो सिर्फ यह कि मनुष्य के मन के विचारों का अतृप्त और उस मयन से उत्पन्न फेन समुच्चय इस प्रकार का सत्य नहीं है जता कि पहली अप्रैल था, कि पीपल की साल साल पत्तियाँ।

प्रश्न अब भी ज्यों का र्यों है। और मुझे लगता है कि मेरी तारी परेशानी की जड़ में यह खबर नहीं है कि अ-दुल्हा रिहा किए जा रहे हैं। हो रहे हैं रिहा तो हा। मुझमें मतलब। फिर मेरी परेशानी का कारण क्या हो सकता है ?



जब कभी सप्ताह इतना घमा हो जाय कि वह सहज लक्ष्य हो सके, पक्ष इस कदर खामोश हो जायें कि वातावरण में होने वाला अ-दुल्हा पश्चित्त साकार हो सके, आकाश के तारे ऐसे जड़ हो जाएँ कि टिमटिमाना बंद कर दें, मानो हमारे और उनके बीच वाली दो सी मील चौड़ी हवा की दबाव पेटिका अचानक हट गई तो मुझे लगता है कि कहीं न कहीं किसी मनुष्य के साथ उनके साथिया ने विश्वासघात किया है।

उस दिन अचानक हिलते पीपल के ललछौह पक्ष जब एकाएक स्थिर हो गए तो मुझे एक दमघोट परेशानी ने बुरी तरह अपने पक्षों में दबोच लिया।

अखबारों में खबर छपी है कि भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के अध्यक्ष श्री डांगे ने आज से चालीस वर्ष पहले अंग्रेजी सरकार को कुछ पत्र लिखे थे। तब डांगे जेल में थे और उन्होंने उन दमघोट चहारदीवारियों के भीतर से विदेशी आसक्तों को लिखा था कि यदि उन्हें मुक्त कर दिया जाय और उन पर संप्रदायों के मिथ्या आरोप हटा लिए जाय तो वे सरकार के साथ सहयोग करने के लिए तयार हैं। चालीस वर्ष पहले लिखे हुए पत्र अचानक १९६४ की पहली अप्रैल को एक ऐतिहासिक घटना बन गए और इन पत्रों के आधार पर डांगे के साथियों ने उन्हें गद्दार और देशद्रोही मान लिया। डांगे वल तक कम्युनिस्ट पार्टी के कण धार थे। भयंकर से भयंकर तूफान में भी पार्टी की नाव को सकुल किनारे की ओर सावधानी से खेते जा रहे थे कल तक वे मजदूरों के हितों की रक्षा करने वाले निस्वार्थ और साहसी नेता थे कल तक उन्हें पार्टी के सभी सकटपूर्ण सतरो

१ युग भाइन मन इन सब भाव ए सोल ।

में, उसकी मर्यादा और अस्तिव की रक्षा करने वाला योग्य और कुशल नेता माना जाता था और आज ढाँगे एक ऐसा व्यक्ति है जिसके चरित्र में लोगों को सन्तुष्ट है, जिसकी चालीस वर्ष की सेवाएँ, खुद में एक प्रशस्तिपत्र बनकर खड़ी हो गई हैं। उनका सम्पूर्ण साहस, धैर्य, व्यक्तित्व को निरंतर बलिदान करने की इच्छुक कर्तव्यपरायणता—सभी एक नये शकालु भयों से जुड़ गए हैं, उन भयों से जो व्यक्ति के पिछले सभी कार्यों को स्लेट पर लिखी इबारत की तरह मिटा कर उसकी जगह एक ऐसा कार्टून बना देते हैं जिसमें सिर को कमर के नीचे और पैरों का गदन के ऊपर चिपका दिया जाता है।

मुझे शंके के इस रूप को देखकर परेशानी होती है। मुझे लगता है कोई चीख चीखकर चिल्ला पड़ा है कि पोपल की साल साल पत्तियाँ मनुष्य के खून की खाद ले-पीकर इतनी सुख दिखाई पड़ती हैं।

मुझे धक्का इस बात का है कि एक आदमी के चालीस साल के काम, भारी भरकम महत्त्वपूर्ण, ईमानदारी से भरे हुए जोखिम से टकराते हुए काम एकदम से उपेक्षणीय और नाचीस कसे हो गए। ढाँगे यदि वाकई एक सदेहपूर्ण चरित्र का नाम है तो वह चालीस साल तक धरती आँखों के सामने से अनदेखा कैसे गुजर गया।

यह क्या मानस विकार का ही एक रूप नहीं है? सामने से पहाड़ की तरह लम्बा चौड़ा हाथी गुड़र जाए और हमें सन्तेह हो कि क्या वह सचमुच हाथी था? और तब सहसा हमारी बौद्धिक चेतना एकदम से प्रजुड़ हो उठे और हम रास्ते पर उमरे गोल गोल चिह्नों को देखकर चिल्लाएँ—भरे वह हाथी था, वह हाथी था।

यथा गजो मेति समसङ्ख्ये

तस्मिन्पञ्चामति सङ्गय स्यात् ।

पदानि दृष्ट्वा तु भवेत् प्रतीति

स्तथाविधो मे मनसो विकार ॥ शाकुन्तल ७।३१ ॥

पर जब हमने देखा नहीं, ठीक से अपने दुष्ट अनुभव की प्रमाणित नहीं किया तो हम गोल गोल चिह्नों को देखकर कसब कह सकते हैं कि वह हाथी ही था।

इससे दो प्रकार के निष्कर्ष अपने आप निकलते हैं।

(१) विश्वसनीय साक्ष्य पर आधारित निष्कर्ष के द्वारा किसी वस्तु के मिथ्या ज्ञान से सत्य ज्ञान में होने वाला परिवर्तन। (२) कुछ विषयों में हमारी निजी अभिरूचि जो मृत वस्तुओं को भी कल्पना के आधार पर जीवित और साकार कर सकती है। हाथी सचमुच गया और हमने देखा नहीं जब उसका पदचिह्नो से हमने प्रमाणित किया कि वह हाथी था, पहले प्रकार का निष्कर्ष है यानी मिथ्या ज्ञान से सत्य ज्ञान की प्रतीति। किन्तु किसी भी गाल चिह्न को जो हाथी

के पैरो से मिलता जुलता हो देगवर घण्टी द्रच्छा और खीन को सतुष्ट करने के लिए मान लेना कि ये पदचिह्न हाथी के ही हैं और बहुत छ दूर पहुँच ही इधर से गया है—यह दूसरे प्रकार का निष्पत्ति है जो 'यस्त अभिप्राय वाल' 'यवित्ता की प्रवृत्ति के अनुकूल पड़ता है।

ये दोनों ही 'मानस विकार हैं। इन दोनों ही अनुमानों में स किसी का भी आधार लेने वाला प्राणी अस्वस्थ हो कहा जाएगा। डाँगे इनमें किम अनुमान के शिकार हुए हैं, यह कहना तो अभी संभव नहीं है, किंतु शिकार हुए हैं यह सत्य है।

यू आर टॉकिंग लिटरेचर ? मरा तीसरा 'मैं उपहास के स्वर में बोला— डाँगे अंतर्राष्ट्रीय साम्यवाद के दोनों गुटों के सषप के शिकार हुए हैं, या होन जा रहे हैं, के किसी प्रकार के मिथ्या या सत्य अनुमान के शिकार नहीं हुए हैं। यह कालघोत राजनीति ही है जो हर किसी को समयानुसार नाना रंग में परम्परा विरोधी रंगों में रंगकर हमेशा साफ बनी रह जाती है। डाँगे या कोई भी अब स इस राजनीति के सामने अवकाश हो ही जाता है। अब तक प्रजातन्त्रों के ही नील, श्वेत हरे रंग होते थे आज साम्यवाद के भी लाल, बादामी नारंगी, गुलाबी आदि भेद होने लगे हैं। और एक रंग की विभिन्न छायाएँ चित्रकारों के सामने भले ही अवचेतन की अदेखी गहराइयों या स्वप्नों की विविध वण संयोजना को साकार करने उत्साह का कारण बनें, समाज और व्यक्ति को तो ये रंग हमेशा ही विचारों के आवत में डालकर छलावा का शिकार बनाते हैं।

हमारे देश में राजनीतिक वसंत का क्या कहना ? कौन रंग जब किससे सधि करके किन अवचेतनीय गहराइयों को छूने लगेगा कहना मुश्किल है। हरे और लाल का सम वय मुझे तो हमेशा ही बदरग सा लगता है। लगता है अचानक किसी ने यमुना की सहरो में खत टक्स से भरे हुए राक्षसीय घड़े उलट दिए हैं।

हरा लाल भड़ा अंतर्राष्ट्रीय जगत में भी नई इंसानियत का प्रतीक बन कर इधर उधर फहराने लगा है। पाकिस्तान और चीन की परस्पर मित्रता इस नये ध्वज की कंधे पर टांगे हुए विश्वविजय का नया मसूबा बाँध रही है। कभी-कभी इन दोनों की दोस्ती पर हसी आती है। हाथ रे मयूर 'याल पुच्छ से जुड़े, पर सहसा यह हसी स्याही सि धु में डुबकियाँ लगा लेती है और फिर बच रहती है एक अजीब किस्म की घणा जो न तो भीतर जखम हो पाती है और न ही बाहर यकत हो पाती है।

मेरे एक मित्र ने एक वक्तव्य में कहा था कि जिन साहित्यकारों के सामने 'कम्युनिज्म या 'फासिज्म का कोई अर्थ नहीं होता उनके लिए साहित्य का क्या अर्थ हो सकता है यह मेरी समझ में नहीं आता। उन्होंने इन दोनों को

दो अतिवादी ध्रुवा पर आरुढ़ मूल्य मानकर साहित्य के लिए इधर या उधर का मांग प्रशस्त कर दिया था। लेकिन क्या 'फासिस्ट कम्युनिज्म' नाम की या 'कम्युनिस्टिक फासिज्म' नाम की कोई वस्तु सचमुच नहीं होती? न हाँती अतः प्रवृत्तिमूलक ही सही तो हरे लाल रंगों का यह अदभुत मिश्रण कहा से दिखाई पड़ता?

खोखले नारे। रिक्त शब्द।।

किन्तु नारे खोखले हों या शब्द रिक्त। भीड़ को ये हमेशा ही बरगलाने की शक्ति रखते हैं और हवाई फर के रूप में छूटकर भी धीरे धीरे एक शकल अलिनियार कर ही लेते हैं और भीड़ जीवी खोखले लोगों की आत्मा को मनचाहे रंगों में रंगकर अपना प्रयोजन सिद्ध कर लेते हैं।

"चीनिया का मिश्र चुनने का तरीका बड़ा अजीब और विस्मयकारी है।' मिखाइल सुसलोव चाह इस तरीके को जो भी विशेषण दें, यह तरीका है और एक जोरदार कीमियागिरी है जो अनमिल रंगों को एक थे मिलाकर एक ऐसा नया पैण्ट तयार कर रही है जो न केवल भारत जैसे 'भेङ्गारवादी' देश के लिए बल्कि अन्य जैसे 'कम्यारवादी' देश के लिए भी वांछी सिरदद का कारण होता जा रहा है।

यह पैण्ट जिन लोगों के चेहरे पर पोत दिया जाता है, वे न सिर्फ अजीब शकल अलिनियार कर लेते हैं बल्कि उनकी चाल-ढाल, बातचीत, रहन-सहन विलकुल बदली-बदली सी नजर आने लगती है। बाग ने अनेक बार इस रंगसाजी का विरोध किया, जब-जब उनके साथ इस रंग से होली खेलने की कोशिश हुई उन्होंने चेहरा भटक लिया। आखिर हारकर होली के खिसदड़ ने एक स्वर में हुल्लाह मचा लिया कि डाँगे असम्भ्य हैं। उन्हें होली खेलने का गऊर तक नहीं।

डाँगे में होली के प्रति ऐसी उदासीनता आई कहीं से? खोज बीन 'गुरु' हुई और पता लगा कि उन्होंने एक दफा एक अंग्रेज डॉक्टर से कहा था कि हरे-लाल पैण्ट से मुझे हमेशा 'एलर्जी' होती है। किरासन का तेल लगाकर सूख साफ करने से ही यह कम्बल छूट पाता है, और मुझसे इस तेल की बदलू सही नहीं जाती।

वस इतनी-सी बात है और आप अपनी साहित्यिक बहाववृत्ति के चक्कर में पढ़कर तिल का ताड़ बनाए जा रहे हैं।

मेरा यह तीसरा मैं इस तरह हाथ भटककर बात कर रहा हूँ जैसे नाक पर बठी मक्खी उड़ा रहा हो। 'जाने कहीं से आपको हाथा और उमके परो के गोल-गोल निगान यात्र पढ़ गए, रूखी सक्म तो नहीं देना आपने इधर?'

'तुम दोनों ही मूख हो, यह मिस्टर मभने थे जो अब तक हमारी बातों को या सुने जा रहे थे जैसे प्रेम का कोई दिलचस्प विस्मय हो। किन्तु जब उन्हें

इसका कोई सूबसूबत अतः १ गिनाई पटा तो गिरात जगा रेरा बनातर धीरे धीरे एक एक सट्ट पर जोर देकर बहने लगे आप सोना की मैं एक पविना की तीन चार पविनायें सुनाना चाहता हूँ । आप दोनों की छास तीर से, क्योंकि आपको यह बहुत बड़ी गलतफहमी है कि इसम यानी मत की गोज कर लेने के बाद भी इसान के लिए कुछ करना बाकी बच सा रहता है ।'

मतलब — मेरे दोनों मैं एक साथ बोल पड़ते हैं ।

मतलब यह कि राजनीतिक पाटियाँ किसी न किसी महान सिद्धांत पर ही तो आधारित होती हैं । परेशानी इस या उस महान सिद्धांत को धुनने में हो सकती है । महान सिद्धांत मिल गया, इसम का मूय जगमगा उठा वस अब परेशानी कहाँ रही । इसलिए हमको, आपको यानी सबको ये पविनायें बनौर दोस्ताना सीख के याद रखनी चाहिए ।

का सदे'दलो द्राइ दु इस्केप

फ्राम दि डाकनेस आउटसाइड एण्ड बिदिन

बाई ड्रीमिंग दि सिस्टम्स तो पर्फेक्ट

दद नो धन बिल नीड दु बि गुड ।

—टी० एस० इलियट नि राफ

हमारे राजनीतिज्ञों को महान स्वतः में हर प्रकार से मुकम्मल सिद्धांत और वाद मिल गए हैं इसलिए इनका सपना देखना ही काफी है यह कतई जरूरी नहीं है कि कोई अब अच्छा इंसान बनने की कोशिश भी करे । 'शायद अब आपको लग रहा होगा' यह 'मैं मेरी ओर मुखातिब होकर बसे ही सहज मुसक' राहुट के साथ कह रहा था कि आपकी परेशानी का कारण यह कतई नहीं था कि डागे पर उनके साथियों ने गलत या सही आरोप लगाए अथवा कम्युनिस्ट पार्टी के सेनेटरियट ने अनुशासन भंग के लिए वामपक्षीय लोगों को डराया धमकाया है कि नहीं । क्योंकि पार्टी का मतलब ही होता है एक विशिष्ट सत्य की प्राप्ति । इसलिए पार्टी सबधी कार्यों का निर्माण उस बायबी निरपेक्ष सत्य के आधार पर ही होना चाहिए अच्छे बुरे के सापेक्ष विरोधना के आधार पर नहीं । और अच्छे बुरे के सापेक्ष विरोधना हमेशा ही व्यक्ति पर लादे जाते हैं ।

'हूँ मगर

●

मगर शायद मेरी परेशानी का कारण तब वही और हो । मुझे लगता है कि आप फिर पीपल की पत्तियाँ की बात करेंगे और बड़ी भाग्यी के साथ उन अवोध पत्तियों से पूछेंगे कि बताओ तो जरा मेरी परेशानी का कारण क्या है ? मेरा तीसरा मैं इस तरह बमुराबत होकर बात करेगा इसका मुझे जरा भी आभास न था । वह उसी अन्ध म नहता गया—सच तो यह है कि आपकी

परेशानी का कारण आपने ही भीतर है और आप उसे धीरे-धीरे पाते-पाते खोज रहे हैं—

तो साईं तन में बस भ्रम्यो न जाणें तास ।

कस्तूरी के मृग ज्यू, फिर फिर सूँघ घास ॥

वह खिलखिलाकर हँसता है। अब भला सोचिए कि उत्तर प्रदेश की 'याय पालिका' और 'विधानपालिका' में यदि अपने-अपने अधिकार के प्रश्न को लेकर सघर्ष है, तो इससे आपसे मतलब ? आप सारी दुनिया के अदृष्ट से दुबले बगो होने लगे साहब । और फिर आप अपने को साहित्यकार कहते हैं । साहित्यकार को राजनीति या अध्यात्मिक प्रश्नों से क्या लेना-देना । उसे तो समाज को 'सत्य शिव सुन्दर' की ओर अग्रसर कराने के लिए सत्य साधना करनी चाहिए । जीवन को पूरी संवेदना के साथ इस ढंग से चित्रित करना चाहिए कि वह अपनी सभी अच्छाइयों बुराइयों के साथ हमारे मन में जीने की इच्छा पैदा कर सके । आपसे भला इन बाहरी प्रश्नों का क्या संबंध ? राजनीति के चक्कर में फँसे कि जो कुछ थोड़ी बहुत प्रतिभा प्रतिभा होगी वह भी झंझर उधर फम फुमकर बिथल जाएगी । 'तो आप यह समझते हैं कि साहित्यकार का इन प्रश्नों से कोई संबंध नहीं होना चाहिए जो मनुष्य के अस्तित्व को गहराई से प्रभावित करने वाले या उन्हें अवरुद्ध करने वाले हों ?' क्या आप यह मानते हैं कि उत्तरप्रदेश के मामलों में मनुष्य के अस्तित्व के सामने ऐसे प्रश्न खड़े कर लिए हैं जिनसे वह अवरुद्ध हो जाए ? मेरा तीसरा मैं उसी अविश्वस्त हँसी के साथ कह जा रहा हूँ— यदि विधान सभा और 'यायपालिका' में अपने-अपने अधिकार सीमा को लेकर कोई झिज भा गई तो इसमें मनुष्य के अस्तित्व का क्या संबंध ?

मैं समझता हूँ कि अस्तित्व से संबंध है और सीधा है । एक तो विधान या कानून से संबंध रखने वाली इस तरह की अधिकार सम्पन्न या सम्पादों की टक्कर ही बड़ी अयोग्यनीय है । क्योंकि इस तरह के काय उस 'याय प्रयवा' विधान की पवित्रता को ठेस पहुँचाते हैं जो विधायकों और वाचकाधीनों के नियम और सद्दह से परे रहनेवाले व्यक्ति से निरन्तर गरिमा और शक्ति प्राप्त रहते हैं । यह सही हो सकता है कि दोनों सस्थाएँ अपने अधिकार के प्रति एक-दूसरे के हस्तक्षेप से विरुद्ध हो उठीं किन्तु विक्षोभ सामान्य व्यक्ति का गुण होता है, 'याय या शासन का नहीं, क्योंकि 'याय' और शासन की सबसे बड़ी विशेषता यही मानी गई है कि वे उद्वेग और संवेग की चरम स्थिति में भी निरुद्ध और शान्त रहते हैं ।

'यायपालिका' के साथ ऐसे व्यवहार जनता क्षमा नहीं करेगी' यह वाक्य केंद्रीय 'याय मंत्री' ने कहा था । यदि इस प्रकार जर्जों को गिरफ्तार करने विधानमण्डल के सामने उद्दिष्ट किया जाने लगे तो जनता में 'याय' के प्रति

विश्वास उठ जाएगा। 'लेकिन इस बात का जो दूसरा पहलू भी तो है कि विधान सभा के अधिकार में जहाँ की भी हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। इससे उनके सम्मान की भी तो ठेग लगती है।'

ठीक है किन्तु अतः प्रश्न यह रह जाता है कि विधानसभा ने बनाए हुए कानूनों की अंतिम व्याख्या का अधिकार किसे है? 'यायपालिका विधान की केवल संरक्षिका ही तो नहीं है उसकी व्याख्याता भी है। 'होगी 'व्याख्याता, पर उसे अपनी अधिकार सीमा को तोड़ने का अधिकार नहीं है।'

बहरहाल हम इस प्रश्न में नहीं पड़ना चाहते कि किसन किमती अधिकार सीमा का उल्लंघन किया। प्रश्न यह है कि इस काय से जनता, खास तौर से भारतीय प्रजातन्त्र और 'याय' यवस्था में विश्वास रखने वाली बौद्धिक जनता के ऊपर क्या प्रभाव पड़ा? मेरा ख्याल है, यह एक बहुत ही गमगीन और मायूस करने वाला प्रभाव है, जो अस्तित्व के प्रति सकारित्व भावना को ठेस पहुँचाता है।

'तुम दोनों की बातें सतह की मरीचिका हैं या उसकी स्थूल और मोड़ी पाख्या का प्रमत्त' मेरा दूसरा मैं अभीब आत्मतटस्थता में डूबा डूबा बोला— 'इट इज एन इटैलेक्चुअल केयारसिस—यह एक बौद्धिक पीड़ा त्रास या उसका गलत विवेचन है। प्रश्न इस बात का नहीं है कि यायपालिका या विधान पालिका का सघष उचित है या नहीं—उचित हो भी सकता है नहीं भी हो सकता है। क्योंकि यह प्रश्न एक ऐसे आरोपित आवरण का है जो इतिहास की देन है। इससे साहित्यकार का सीधा सम्बन्ध मेरी दृष्टि से बिल्कुल नहीं है। सम्बन्ध सिर्फ 'यक्ति की स्वतन्त्रता से है जिसके इद गिद यह सघष अनेक प्रश्न वाचक चिह्न उछाल रहा है। यायपालिका या विधानसभा कहने के लिए 'व्यक्ति विशेष के अधिकार और वक्तव्य की रक्षा के लिए नियोजित संस्थाएँ हैं। किन्तु विधान और 'याय' के रूप हमेशा ही किसी न किसी सीमा में 'यक्ति के अस्तित्व पर लगाए हुए अकुश के परिणाम है। लेखक हमेशा ही शुद्ध स्वतन्त्रता की बकालत करेगा। वह हमेशा ही जागरूक प्रहरी की तरह इस बात पर ध्यान रहेगा कि दो उच्चतम सामाजिक मूल्यों की प्रतिष्ठा में सामान्य व्यक्ति का एक सहज जीवन मूल्य उपेक्षित न कर दिया जाए—

हम विस्तीर्ण प्रगाढ़ नीले, हलचला से भरे सागर की प्रतिष्ठा के प्रति नत शिर हैं। वह निरन्तर अपनी पूरी शक्ति के साथ रह—

असह्य दबावों तनावों खोंखों और मरोड़ों को

अपनी द्रव एकरूपता में समेटे हुए

असह्य गतिथों और प्रवाहों को

अपने अखंड स्वयं में समाहित किए हुए

स्थापत्त

अचचल ।

समुद्र की व्यवस्था, मर्यादा गभीरता और अचचलता के प्रति हमारे मन में सन्देह नहीं है पर हवा का एक बुलबुला भर पीने को उछली हुई मछली अपनी जिजीविषा के लिए दण्डित न हो ।

साहित्यकार यदि इस तरह की समस्याओं पर सोचता है तो सिर्फ इसलिए कि मछली के अस्तित्व और उसके अधिकारों पर आचन आए । उसकी अनवरत साधना सिर्फ इसी की रक्षा के लिए प्राणपण से सकल्पित रहती है

मिट्टी की बनी पानी से सिंची प्राणाकाश की प्यासी

उस अतहीन उदीया को

तू अतहीन काल के लिए फलक पर टाक दे

क्योंकि वह भाग मेरी मेरी, मेरी है कि प्राणों के

एक जिस बुलबुले की ओर मैं हुमा हूँ उदग्र, वह

अतहीन काल तक मुझे सोचता रहे ।

—अनेत्र आगन के पार द्वार

●
जिया, जरत रहत दिन रन

हो रामा

जरत रहत दिन रन ।

आज से २८ वर्ष पहले भारत के लाखों गांवों में से किसी एक का बागिचा था वह, नाम था हारी । उसकी सामान्य जिंदगी पर मुंशी प्रेमचंद ने एक नाविल लिखा और वे अपने नाविला में तत्त्वमूल का कम से कम दखल स्वीकार करते थे, ये सभी जानत हैं । २८ साल बाद उनके नाविल पर फिल्म बनी गोदान । २८ साल तक गोदान के सफहों में दबी हुई वह आत्मा लगातार एक पुरखद गीत गाती रही—

जिया जरत रहत दिन रन हो रामा ।

लेकिन यह गीत कभी भी उसके होठों पर झुमककर आ नहीं पाया । यह जलन यह पीड़ा सदा उसकी आत्मा में घघकती रही पर वह एक ऐसा शस्त्र था जो अपने दद को दूसरा में बांट देना हेठी समझता था । कहीं दद के गीत की कोई कड़ी उसके हाठों से फूट न पड़े इसलिए उसने अपने होठों से लिए थे । समाज ने शासन ने क्रिस्मत ने जो कुछ विष दिया उसे वह अपनी उस बेजुबान गाय की तरह पी गया । उसने दम तोड़ दिया पर किसी से कुछ कहा नहीं ।

और आज जब होरी नहीं है उमका वह गीत उमकी आत्मा की तरह शरीर से बाहर आकर चारों तरफ जल में बल में खडन खम में सबझापी

हो गया है। गोलान का पिसा हुआ रेगिस्तान उमी तरह बजता चला जा रहा है।

भारतीय लोकसभा में इस बात पर काफी तू तू मैं मैं हुई कि हमारे देश में प्रत्येक व्यक्ति की रोजाना औसत आमदनी तीन आना है कि दस आना है। लोहिया कहते थे कि तीन आना है शासन बढ़ता था कि दस आना।

जब मैं पूछता हूँ होरी स कि इसमें स कौन मही है तो वह बड़ी थड़ा स हमारे बठने के लिए अपनी मूज की फिलिंगी चारपाई बिछा देता है और गुड की एक छोटी सी भेली के साथ ठंडा पानी सामने रफ्तार हँसते हुए कहता है— आप लोग बिद्वान हो बाबू, तुम्हीं लोग फमला कर दो। यह फसला कर देने की बात नहीं है। हारी यदि लोहिया साहब ठीक कह रहा हैं तो कहो कि वे ठीक हैं नहीं यदि उन्होंने तुम्हें दरिद्र कहकर बर्नाम करने की कोशिश की है तो कहो गलत है। सरकार यदि ठीक कह रही है तो कहो ठीक है, नहीं साफ कहो कि सरकार तुम्हारी असली हालत को छिपाकर अपना उल्लू सीधा कर रही है।”

होरी पशोपेश में पड़ जाता है फिर हाथ जोड़कर उसी तरह मुसकराते हुए, जिसका अर्थ समझना तब भी मुश्किल था, अब भी मुश्किल है कहता है—“लोहिया साहब या सरकार जो भी कहेंगे सब ठीक ही कहेंगे। वे क्या हमारे दुश्मन हैं ?

‘अटठाइस साल में जाने जमाना कितना बदल गया होरी मगर तुम नहीं बदले।’ मैं उसकी ओर विरक्ति और नफरत से देखते हुए बड़बड़ाता हूँ— ‘तुम्हारी यह वृत्ति ही सभी प्रकार की स्थितियों का एकमात्र कारण है। तुम उस तरह के इंसान हो जिसे आर्थिक मन—एकदम मोलिक मनुष्य कहा जाता है तुम्हारी प्रवृत्तिया, तुम्हारी सहनशक्ति गलत सही में भेद करने की तुम्हारी पद्धतियाँ—सभी वही हैं। कुछ नहीं बदला है इन अटठाइस वर्षों में कुछ नहीं बढ़ा है। यदि बदला है तो सिर्फ यह कि तब तुम्हारी रोजाना की औसत आमदनी पर दूतनी गम्भीरता से बहस नहीं होती थी। मगर इस गम्भीर बहस का भी नतीजा क्या निकलता है। बहस तीन आना और दस आना के दो छोरों से शुरू होती है और आकर पाँच आने पर खत्म हो जाती है। स्वर्णिम पथ। हम इस तटस्थ पक्ष के लोग दूसरा कर माँ क्या सकते हैं। दो अतिवादी छोरों के बीच एक मध्यम मार्ग निकाल लेना ही हमारा राष्ट्र धर्म है। चाहे वह कोई प्रश्न हा कोई संकट हो कोई समस्या हो हम इस बात में विश्वास करते हैं कि हम धर्म धारण करके बठ जाना चाहिए समय अपने आप कोई मध्यम मार्ग निकाल लेगा।

विश्वनाथ गहमरी उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल की स्थिति का दारुण चित्र

सींचते हुए जब कहते हैं कि श्रीव सोगो को पगुमा के गागर में धोकर निकाले हुए घनाज के दाना पर निभर रहना पड़ता है, तो प्रधान मंत्री की आँखें भर आती हैं।

जिधर देखिए उधर चर्चा हो रही है, भाई नेहरू जी यह सब सुनकर रोने लगे। क्या न हा, आखिर देश के राजा हैं प्रजा का दुग्धदा सुनवर जो राजा राने न लगे वह राजा नैंसा। तुलसीदास भी कह गए हैं—

मुखिया मुख सो चाहिए खानपान कहूँ एक।

पातड़ पोषड़ सकल भ्रम, तुलसी सहित विवेक ॥

मुखिया मुख के समान होना चाहिए। यानी खाने-पीने का काम सिर्फ उसे ही करना चाहिए। हाँ यह जरूर है कि इतना विवेक तो होना चाहिए कि बाकी अंगों का भी पालन-पोषण होता रहे—मैं जब हँगते हुए तुलसीदास के दाढ़ का यह भय ममभता हूँ तो सभी 'मौलिक' इसान प्रुद्ध होकर मुझ नई खोपड़ी की उल्टी दृष्टि पर धाकमण कर बैठते हैं। उन्हें नेहरू जी की सब-वत्सलता पर घट्टट विश्वास है। तभी मुझे याद पड़ता है कि 'होरी' की दृष्टि में 'मुखिया मुख' का सबब चाह कितना भी सुनद क्यों न रहा हो धनिया इस सबब पर हमेंगा ही लड़न को तैयार हो जाती थी। इसलिए क्यों न उसे ही चलकर यह खबर दी जाए कि भ्राज पहली भ्रष्टाचक्रो निली म महंगाई के विरुद्ध पाँच हजार गृहस्थिना ने भारी प्रदर्शन किया। मैं बड़े उत्साह और विश्वास से जब धनिया भाभी को इस प्रमाण का विवरण सुनाता हूँ, इसकी एक एक स्थिति का नक्का उतारता हूँ तो वह चुपचाप मन मारे इन खबरों को यो सुनती रहती हैं जब उन्हें इस बात का कोई श्रम नहीं कि हीरा ने ही विप देकर उसकी गाय को मार डाला था।

तो तुम भी अब ठण्डी पड़ गई भोजी है न ?

मैं ताने पर तान दिए जा रहा हूँ गुस्ता दिलाने की लाख कोशिश करता हूँ पर धनिया है कि इस से मस नहीं होती—धीर यह कम्बलत गोदान का रेकाड जहाँ जाइए पीछे से अपनी बेसुरी आवाज म रेंकने लगता है—

जिया जरत रहत दिन रन हो रामा।

भ्रच्छा भोजी एक गिलास पानी पिलाओ लपता है तुमने भी मुख न खोलने का निश्चय कर लिया है। मैं चुपचाप बिना कुछ कहे बगल की माची पर बठ जाता हूँ।

हाथ म पानी का गिलास चमाते हुए भोजी वहीं सामने पड़ पर ताकती हुई बड़बड़ाती हैं— 'मालती बीबी जसी सुगाइयो के परदरसन' ॥ किसानों का क्या बने बिगड़ेगा साला। माना कि उन लोगों को महंगाई से बड़ी परेगानी है पर खाने को दो जून मिल जाता है। दवा-दारु के बिना बच्चा को आँखा

के सामने दम तोड़ते तो नहीं देखना पड़ता। बदल पर लाज डकने को बस्तर तो है यहा तो 'कफन' के लिए भी अब तक पैसा उधार ही मागना पड़ता है। सब जगह तो आग लगी है लाता, फिर मैं ठण्डी न पड़ूँ तो क्या करूँ।'।

मैं चुपचाप लम्बी सास खींचकर माची से उठ जाता हूँ। तभी मुझे लगता है कि एक अजब अनहोनी घट गई है। इस पूरे समय तक जब तक मैंने होरी और धनिया से बातचीत की मेरे दोनों में कहीं दिखाई न पड़े। तो क्या वे तीना एकाकार हो गए थे ? तभी मुझे लगता है कि मुझे आज एक नये सत्य की प्रतीति हुई है। मैं के तीनों रूप वही एक दूसरे के विरुद्ध, उपनते उदसते दिखाई पड़त हैं जहा जिन्दगी के सही यथाय से उनकी टक्कर नहीं होती। यह सारी बहस सारा फलसफा सतह का बीच विवत है। और तभी जाने क्यों मुझे इन तीनों बहुरूपिय में नामधारी प्राणियों से तीखी घणा हो जाती है।

अब मुझे साफ माफ लगता है कि मेरी परेशानी का कारण खबरें नहीं थी बल्कि घणा का वह भाग है जो मेरे मन में इन सतहजीवी तीनों 'मैं' के लिए एक साथ उभर आया।

मुझे घणा सिर्फ क्या इही से है ? मैं जब जब इस पर सोचता हूँ मुझे लगता है प्रश्न ऐसे नहीं होना चाहिए था। प्रश्न शायद यह है कि मुझे घृणा किससे नहीं है। और मुझे यह कहते सकोच नहीं होता कि इसका मेरे पास कोई उत्तर नहीं है। ऐसा कोई नहीं कुछ भी नहीं है जिससे मुझे घणा न हो। अपने देश की राजनीति से, पार्टियों से नेताओं से, यायाधीशों से, विधान सभाओं से अपने से सबसे मुझे घणा है। तो शायद घृणा ही मेरी आत्मबति है और ये तानों में उसी घणा के स्वत विभक्त तीन जीवित पिण्ड है, एक दूसरे से लड़ते भगड़ते प्राणी स्वत विगहणीय अवचेतन की तीन खोलें। सहसा मैं अपने को बहुत हल्का सा महसूस करने लगता हूँ—पर पर कोई इस गधे को क्या नहीं समझाता कि वह रेवाड बंद कर दे—फिर बजाता जा रहा है घसे ही—

जिया जरत रहत दिन रन हो रामा,
जरत रहत दिन रन।

आदमी माने 'ब्रेक' का बडल

प्रिय भाई,

आपका पत्र गहरी वेदना जगा गया। आपने 'होली के हुडदग' को जिन शब्दों में याद किया है, उसके लिए दाप किसे दू। गाली गलौज, कीचड़-कादो, क्या यही वसत है? आपकी खीझ मैं समझ रहा हूँ। मेरा रुयाल है आप जैसी ही खीझ अनेक लोगों का मन में भरी होगी। उस दृश्य की भी आपने खूब याद दिलाई। हा, वह बीभत्स था, मगर शिवपूजा के इस देश में उसे बीभत्स इमीलिए माना जाएगा कि वह निहायत पशु धरातल पर स्थापित था। आपने लिखा है कि मनुष्य इतना छिछोरा और लपट क्यों होता जा रहा है। ऐसी हैवानियत लोगों में क्या आती जा रही है? आपको वसत में ऐसा कुछ नहीं लगता कि वह मनुष्य के मन के सारे बंधन तोड़ डाले।

आपका पत्र को पढ़ते मुझे कई-कई बातें एक साथ याद आ गई। यहाँ तो अक्सर गहरी रोना सुनाई पड़ा कि होली बड़ी फीकी गई। अब वह मस्ती का आलम रहा नहीं। न तो वह हुडदग है न वह असीम खुलापन।

वसत में क्या सचमुच आपको ऐसा कुछ नहीं लगता, जो थोड़ा विचित्र थोड़ा रहस्यमय, थोड़ा अकुलाहट से भरा हो? क्या आपको प्रकृति में कोई परिवर्तन नजर नहीं आता? यह और बात है कि कभी-कभी वसत प्रकृति के वसत से थोड़ा पहले ही आ जाए, पर ऐसा तो मानन का मन नहीं होता कि वसत आए और प्रकृति में कोई परिवर्तन ही न हो। मुझे तो हर बार जब वसत आता है लगता है कि कुछ कहीं खो गया है। एक बड़ी बेढगी किस्म की चेतना यह भी, कि सहसा लगे कि भीतर से कुछ फूलने फूलने को हो रहा है। कभी-कभी तो गंध और रंग की मिली-जुली छाना हो ऐसी हो जाती है कि बरबस तन मन पर एक अनजानापन पारदर्शी खाल की तरह चढ़ जाता है। अपने को अपनी आँखों देखत शकन अपहचानी भले न लगे, पर कुछ है तो जरूर ऐसा कि

जिसने स्पर्श से हवा पहले से अधिक अपरिचित लगनी है नाका में गंधा की एक अनजानी सजगता जैसे जी उठी हो और उसी का एक डला लगे कि अभी अभी फिसलकर गले के नीचे उतर गया हो जो जिस्म के हर हिस्से को बघन हीन बनाने लगा हो ।

और नायद म बघन से हीन होने के कारण ही रमा में नई चटक और गंधा में अनोखी गमक का रहस्य सुनता है । आपकी यह बात अजीब लग रही होगी, है भी कुछ । आपन हेनरी मिगाक (Henery Michaux) का नाम सुना है ? बहुत अनोखे व्यक्ति हैं ये । ससार का कोई भी तीखे से तीखा नशा इन्होंने छोड़ा नहीं । वे दवाइयाँ भी खाते रहे थे जिनकी सींगिया पर साल अक्षरों में लिखा रहता है 'जहर' । मज्जे की बात यह कि ये नये में धुल पड़ जाने वाले ऐसे-वैसे इंसान भी नहीं जो बेहोश हो रहें । इन्होंने गहरे से गहरे नदों की हालत में अपने तन और मन की हर स्थिति पर ध्यान दिया और उसकी गहरी अंधेरी धाटियाँ में रोगनी की लहरें देखी । इन्हीं अनुभवों पर आधारित इनकी एक मजेदार किताब अभा अभी आई है नाम है 'साइट यू डाकनेस' यानी भ्रंशों के भीतर से रोगनी । लिखते हैं आदमी श्रेक (बघन) का प्राणी है, यानी उसका पूरा अस्तित्व श्रेक पर आधारित है । यहाँ तक आपकी और मिगाक की बात एक जसी है, पर जरा ध्यान सुनिए 'इनमें से यदि एक टूट जाए तो वह खूनी से चिस्ला उठता है आवादी । आवादी । पर उस समय भी बेचारे पर जाने कितने क्षितने 'श्रेक का नासन बना ही है । याद रखना चाहिए कि नये रूप, नये विचारों की गति हमेशा श्रेक में रहता लगने पर ही सम्भव है ।

आप नायद चिढ़ जाए हटाइय भी किम पियक्कड सेलक की वर्षा छेड़ दी आपन । मैं मानता हूँ कि लगक पियक्कड है, पियक्कड ही नहीं गभीर नगाछोर या विषयामी, पर एक बात उन्हां जरूर पते की बट्टी है वह यह कि आदमी मान श्रेक का बडल । हालाँकि उन्होंने यह सब हिकारत और प्रुणा का कहा है और वह इन्हीं बघना की तोड़न के लिए जहरीला से जहरीली दवा खाकर अपने को मुक्त अनुभव करत रहे हैं पर यन्त्रि गन सब हो तो हम यह सोचना नहीं चाहिए कि इसका बटन वाला अन्ध' है ।

मगर इस श्रेक के बडल से हानी का क्या ?

मैं समझता हूँ कि तब है	और बड़ा गहरा	क्या सारे
अस्तित्व का	गन्धघ ही नहा काय के	मकन है
इसे । पर	। वातावरण में कुछ ब	
	जगो का गर्द	7
	धरत पर धर	

हवा घबेचना बाँस की बागुरी के छिद्रों में बँधकर तरह-तरह के मोहक स्वरों में फूट पड़ती है। क्यों ? वह इसलिए कि एक सूक्ष्म और शक्तिशाली पदार्थ को एक नियमित भाग में बाँधने का प्रयत्न किया गया। समतल पर चढ़ते हुए, शिथिल गति से चलने वाले पानी को बाँधकर नियमित ढग से गिराने का फल हमारा विद्युत। और यह विद्युत भी तब तक एक अदृश्य पदार्थ ही रहती है, जब तक कि बंधनों में नहीं बँधती। चलम चलम किस्म के बंधना ने इसे कभी बल्य की रोशनी, कभी पसे की हवा, कभी हीटर में ताप देने वाली आग में, यानी नाना रूपों में वर्णन दिया। है न ?

बसंत में भी कुछ ऐसा ही परिवर्तन होता है। हमें आपसो यदि यह महसूस नहीं होता तो शायद इसलिए कि हमारा शरीर उसे शक्ति की अभिव्यक्ति का ठीक यंत्र नहीं रह गया है। अब देखिए न, इन सूक्ष्म पदार्थ की प्रक्रिया से प्रकृति में क्या अंतर आ जाता है। नये साल-नयाल पत्तों से मोटी भरी डालें ढँक जाती हैं। कटोर ढठला को चीरकर मुलायम बलियाँ भाँकने लगती हैं। फूलों में एक अजीब किस्म की मात्रा गंधा के फाँदों से उठने लगती हैं, जैसे बस, लता, पोषे सभी में कोई अदृश्य कारीगरी रंग और गंध के माध्यम से अपना करतब दिखा रही हो और यह भी इस गति, त्वरा और शक्ति के साथ कि लगता है स्थूल प्रकृति हमें सम्हालने में परेशान हो मगर उस परेशानी में भी वह भूम भूम जाती हो। मानो यह एक ऐसा नगा है जो हर अस्तित्व को उसके होने का सारा अर्थ लिए जा रहा हो।

कालिदास ने बसंत की इसी सवव्याप्त अदृश्य सूदम शक्ति को तो लक्ष्य करके कहा था

हुमा सपुष्पा सतिल सपदम स्थिर्य सकामा पवन मुगधि ।

सुखा प्रदीपा दिवसाश्च रम्या सर्वे प्रिये चाक्षर धसते ॥

इस प्रदभुत नगीले तत्त्व की अनुभव न करना इस बात का सूचक है कि हमारे अन्दर कहीं न कहीं कोई यात्रिक गडबडी है वही न कही रास्ता जाम है।

किंतु क्या जड़ प्रकृति और मनुष्य दोनों का यंत्र एक जसा ही है ? क्या हम अपने जीवन में इस जड़ प्रकृति का अनुसरण करना ही चाहिए ? नहीं। हमारा यंत्र प्रकृति के शून्य प्राणिया या वनस्पति-जगत की अपेक्षा कई गुना सूक्ष्मतर और शक्तिशाली है। जाने इस सूक्ष्म प्रकृति को कितने कितने लाख वर्षों तक निरंतर अम करता पड़ा होगा मानवीय यंत्र के निर्माण और परिष्कार के लिए। मैं तो उस दिन की याद करने ही अभिभूत-सा हो जाता हूँ जिस दिन स्थूल प्राणभय कोश' वाली इस प्रकृति के भीतर मनोजगत का स्पष्ट हुंसा होगा। जिस दिन स्थूल चेतना वाले प्राणी के अन्दर कल्पनाशील मन की उत्पत्ति हुई होगी, उस दिन 'सूदम ईश्वर' के भीतर जाने कितना शक्तिशाली विस्फोट

जिसका स्पर्श से इन्का पटन का अधिका अधरिणित समझी है, ताका म गया की एक मनजानी सजगता जस जी उठी हो और उगी का एक दमा सग रि अभी अभी जिसलकर गल न नीचे उतर गया हा जो जिम्मे के हर हिम्मे को बघन हीन बनाने लगा हो ।

और शायद इस बधा से हीन होने का कारण ही रहा म गई पत्रक और गया म धोगी गमक का रहस्य गुना है । आपका यह बात अजीब लग रही होगी, है भी कुछ । आपने हेररी मिचल (Heneri Michal) का नाम सुना है ? बहुत धनोगे ब्याक्त हैं य । समार का कोई भी तीग स तीगा नगा इहोने छोडा नही । व दवाइयां भी गात रहे थे, जिन्की शीगिया पर सास अधरा म सिरा रहता है 'जहर । मजे की बात यह कि ये नग म पुन पड जाने वाले ऐसे बस इतान भी गही जो बहोण हो रह । इहने गहरे स गहरे नग की हालत म अपने सन और मन की हर स्पिन पर ध्यान दिया और उगकी गहरी अधेरी पाटिया म रागनी की सहरे गेगी । इही अनुभव पर आधारित इनकी एक मज्जार विताव अभी अभी आई है, नाम है 'साइन्स डू डाक्नेस' यानी अधरे के भीतर स रोसनी । जिम्मे हैं आदमी ब्रेक (बघन) का प्राणी है, यानी उसका पूरा अस्तित्व ब्रेक पर आधारित है । यही तब आपकी और मिशाक की बात एक जसी है पर जरा धाग मुनिए 'इनमे से यदि एक टूट जाए तो वह छुनी से चिल्ला उठता है आवादी ! आवादी ! पर उस समय भी बेचारे पर जाने कितने कितने 'ब्रेक का नासन बना ही है । याद रखना चाहिए कि नये रूप, नये विचारों की गति हमेंगा ब्रेक न रहता लगने पर ही संभव है ।

आप शायद धिड जाई 'हटाइय भी जिस पियक्कड लेखन की चर्चा छेड दी आपने । मैं मानता हूँ कि लेखन पियक्कड है, पियक्कड ही नहीं गभीर नशाखोर या विपपायी, पर एक बात उहोने खरूर पते की कही है यह यह कि आदमी माने ब्रेक का बडल । हालाँकि उहोने यह सब हिकारत और घुमा स कहा है और यह इही बधनो को सोडने के लिए जहरीला से जहरीली दवा खाकर अपने को मुक्त अनुभव करते रहे हैं पर यदि बात सच हो तो हम यह सोचना नहीं चाहिए कि इसका कहने वाला अच्छा है या बुरा है ।

मगर इस ब्रेक के बडल से हाली का क्या सबध है भला ?

मैं समझता हूँ कि सबध है और बडा गहरा है । होली ही से ज्यो, सारे अस्तित्व से इसका सबध है । सम्य घ ही नहीं काय कारण सबध भी कह सकते हैं इसे । अब बसत को ही लीजिए । वातावरण म कुछ बदला है । एक अदृश्य शक्ति के भीतर रासायनिक परिवर्तन की बाढ जसी आ गई है । प्रकृति के स्थूल रूपा के भीतर उसकी सहरे गुनगुनाने लगी है धक्के पर धक्के लग रहे हैं । अदृश्य

हवा अचेतन वास की वागुरी के छिद्रा में घँघर तरह-तरह के मोहक स्वरो में फूट पड़ती है। क्या ? वह इसलिए कि एक मूढम और गतिगानी पदाय की एक नियमित माग में बाधने का प्रयत्न किया गया। समनल पर बहत हुए, गिरित गति में चलने वाले पानी का बाँधकर नियमित ढग ता गिराने का फन हुआ विद्युत। और यह विद्युत भी तब तक एक अन्ध पन्था ही रहती है जब तक कि बधना में नहीं बँधती। अलग अलग किम्ब के बधना ने हम सभी बन्ध की रोगनी, सभी पक्ष की हवा, सभी हीटर में ताप देने वाली भाग में, यानी माना रूपों में बन्ध लिया। है न ?

बस में भी कुछ ऐसा ही परिवर्तन होता है। हमें आपको यदि यह महसूस नहा होता तो आप इस लिए कि हमारा गरीर उसे गति की अभिव्यक्ति का ठीक यत्र नहीं रह गया है। अब दमिण न, इन मूढम पदाय की प्रक्रिया से प्रकृति में क्या अंतर आ जाता है। नय लान-लान पत्तों में मोती भरी टालें डँक जाती हैं। बटोर डटला की चीरकर मुनायम बनिमाँ भरने लगती हैं। फूला में एक अजीब किम्ब की मास्क गधों के मकारे उठने लगते हैं, जैसे बग, लता पीने सभी में कोद अन्ध बारीगग रग और गध के माध्यम से अपना करतब लिखा रही हो और यद् भी उस गति, त्वर और शक्ति के माय कि लगता है, स्थूल प्रकृति में सम्मान में परेगान हो भार उस परेगानी में भी वह भूम भूम जानी हो। मानो यद् एक ऐसा नगा है जो हृ अस्मिन्व को उसक होन का मारा अन्न लि जा रहा हो।

कालिदास ने बसत की इसी सवय्या अन्ध मूढ गति को ता मय्य करके कहा था

द्रुमा सपुष्पा सलिल सपदम स्त्रिय सवामा पवन मुगधि ।

मुक्ता प्रदोषा त्विस्ताच्च रम्या सर्वे प्रिये चास्तर बन्धे ॥

इस प्रदुम्त नगीन तन्व को अनुभव न करना हम बात का मूषक है कि हमारे अन्तर कहीं न कहा का यात्रिक गहवनी है कहा न कहीं राप्ता जाम है। किन्तु क्या जह प्रकृति और मनुष्य जनों का यत्र एक जेसा ही है ? क्या हम अपने जीवन में इस जह प्रकृति का अनुसरण करना ही चाहिए ? नहीं। हमारा यत्र प्रकृति के अय प्राणियों या बनस्पति-जगत की अगता कर् गुना मूमतर और शक्तिगानी है। जान हम मूढ प्रकृति का किन्तु छिन्न लान्ध वषों तक निरंतर अम करना पडा होगा मानवीय यत्र के निर्माण और परिष्कार के लिए। मैं तो उस जिन की यात्र बग के ही अभिभूत-सा हा जाता हूँ जिस जिन स्थान प्राणमय काग' वाली इस प्रकृति के भीतर मनाजगत का स्पष्ट हुआ होगा। जिस दिन स्थूल चेतना वाल प्राणी के अन्तर कल्पनागीन मन की व्यति हुई होगी, उस जिन मूम दीयर के भीतर जान विज्ञाना गतिगानी विस्फार

आत्मी मान श्रेय का अन्ध ।

हुमा होगा। एक नई सूक्ष्म चेतना जब स्थल पदार्थ से जुड़ी होगी, तो जाने कितने प्रकार की बहुविध गंध और रोशनी की लहरों से सारा अस्तित्व घरघरा गया होगा। इसी दिन प्रकृति ने एक ऐसे प्राणी को जन्म दिया जो यत्र तो था ही, उसका चासक भी बना दिया गया। हाँ यह जरूर है कि वह सावभौम सत्तासपन चालक अब भी नहीं है। अभी भी प्रकृति की देखरेख में काम करने वाला यानी अपरेंटिम ही है। सूक्ष्म प्रकृति के कास्मिक राज्य में मनुष्य अधिकार प्राप्त उपनिवेग है, प्रकृति का सबसे प्रबुद्ध प्रतिनिधि। इसीलिए उसके जीवन की प्रक्रिया दुहरी है। वह खुद गतिशील मोटर भी है और उसका ड्राइवर भी। इसीलिए उसके लिए 'ब्रेक' का उपयोग भी बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है।

मनुष्य की सायकता किस बात में है? मुझे लगता है कि उसकी सायकता पशु से भिन्न सिर्फ इस अर्थ में है कि उसे सभी अनुभूतियों और तन्मात्राओं को मनोजगत के स्तर पर अधिक से अधिक भोगने का प्रयत्न करना चाहिए। अर्थात् उसे उद्वेक के क्षणों में भावातिरेक की अवस्था में कुछ ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि वह पशु या वनस्पतियों की तरह 'अस्तित्व को स्थूल शरीर या प्राणमय कोश के भीतर कम से कम भोगे। ऐसा तो संभव नहीं कि इस भोग को वह स्थूल शरीर से पूरी तरह बचाकर रख पाएगा पर प्रकृति की, जिसने उसे मनोमय कोश का रिकव प्रदान किया है, वह अभीप्सा जरूर है कि मनुष्य के भोग में अधिक से अधिक भाग मनोमय कोश का ही हो।

जाने कितनी सता-दिया से साहित्य कसा, घम दशन आदि प्रकारांतर से यही प्रयत्न करते आ रहे हैं कि मनुष्य के मनोमय लोह का सूक्ष्म विकास हो सके पर जब तक इस प्रक्रिया को सही रूप में समझ नहीं लिया जाता, तब तक यह संभव नहीं है कि बसत आए और उत्तम असीम कीचड़ काँदों का प्रयोग न हो।

मोटर का रूप प्राणमय कोश है और गति मनोमय जगत् का प्रतीक। दोनों में प्रबल गुणात्मक भेद है। एक स्थूल है दूसरा सूक्ष्म। दोनों का संयोग जितनी बड़ी उपनधि है उतनी ही बड़ी छतरे की चीज भी। यदि गति तीव्र हुई भीतत से अधिक तीव्र तो यंत्र टूट सकता है और यदि गति धीमी हो नहीं तो यंत्र जड़ होकर रह जाएगा। इसीलिए गति और यंत्र की गति पर 'ब्रेक' की जरूरत पड़ी। हम अपनी यात्रा पर निरलने के पहने क्या सावधानी में यह दम सेना जरूरी नहीं है कि 'ब्रेक' टीन से काम पर रहा है या नहीं?

ब्रेक टीन में काम कर रहा है इतना जान सेना भी गायन पर्याप्त नहीं है। यह भी जानना कम आकर्षक नहीं है कि ब्रेक कब लगे। यंत्र और गति की समरगता के लिए ब्रेक और 'ब्रेक' की जानकारी भी अत्यंत महत्वपूर्ण हो

जाती है। प्रचानक तीव्रतम गति के उद्रेक के साथ ही यदि 'ब्रेक' मारा गया तो दुपटना हो सकती है, भाग लग सकती है।

येक थे इम प्रचानक प्रयोग से एक बार भयंकर ऐतिहासिक अग्निकांड हो गया था, वह आपनो पान ही होगा। दुपटनाओं को भूल जाने की प्रवृत्ति हमें छोड़ देनी चाहिए। क्योंकि य घटनाएँ हम निरंतर सही सतुलित जीवन यात्रा के लिए शिक्षा-संकेत देती रहती हैं।

वह भी वसंत का समागम ही था। वनस्थली में उसका पर पड़ा हो था कि दूज के चांद के समान टेमू के फूलों से ढालें लहक उठी थीं। चारों ओर मादक गंध और मधुर राग से भरे हुए नाना आनंद के फूल प्रचानक खिल-खिला पड़े थे। ओर सहसा एक ही फूल की पसुरी में पहली बार अमर और अमरी एक साथ बैठकर मधुपान करने लगे थे। हरिण और हरिणी की आँखा में प्रियान के फूल की धूलि इस तरह छा गई थी कि वे जमीन पर गिरे सूखे ममर करते पत्तों के बीच विचित्र रहस्य से भरी कुलाँचें भरने लगे थे। उसी समय प्रकप दीपक की लौ के समान अद्विग, बिना बरसने वाले बादल के समान गभीर और बिना लहर वाले ताल के समान अचंचल एक योगी के चरणों में झुककर एक तटणी ने प्रणाम किया था, मानो फूलों के गुच्छे से लदी हुई कोई लाल-लाल कोंपलों से ढँकी लता झुक गई हो और जब उस तटणी ने अपने चित्रने मुलायम हाथों से मदविनी के कमलों के मुखे हुए बीजा की माला को योगी के गले में डाल दिया था तो गभीर समुद्र में पूना के चांद को देखकर सहसा ज्वार का वेग उमड़ पड़ा था।

उसी समय ग्लानि से पीड़ित होकर समय का प्रचानक 'ब्रेक' लगा। उस स्थिति का वर्णन कालिदास से ही सुनिए

स्फुरन्नुदधि सहसा ततोमादक्ष्य कृगानु क्लिप्त निष्पपातः।

तावत्सर्वह्निभवनेत्रजभा भस्मावणेय मदन सवारः॥

तमानु विघ्न तपस्तपस्वी वनस्पति बध्यइवावमज्यः।

हृत्प्रीतिरपि परितु मिदधनतदधे भूतपति सभूतः॥

तीसरा नेत्र खुलत ही आग की लपटें निकल पड़ी और इस आग ने कामदेव को जलाकर राख में बदल दिया। जैसे बिजली किसी पेड़ पर गिरकर उस तोड़ डालती है वैसे ही अपनी तपस्या में बाधा डालने वाले कामदेव को जलाकर, नारी से विरक्त हुए भूतपति भूतगणा के साथ अंतर्धान हो गए।

'ब्रेक' लगा जहर, मगर उस मन के भीतर भी बहुत कुछ जल गया। निव मीदय से विरक्त हो गए। यह स्वयं में एक मानसिक असहजता की स्थिति है। परिणाम में शिव को काफी समय तक विक्षिप्तता का बोझ ढोना पड़ा। उन्हें स्वयं पावती के पास जाना ही पड़ा। इस बार गति सहज थी, प्रक्रिया

स्वाभाविक, शिथिल चलना वाली पावती का हाथ धामते समय गियर टूट नहीं हुए, मुसकरा पड़े

इतो गमिप्याम्यधवेति यादिनी पचालयासा इतामिनयत्तता ।

स्वरूपमास्याय च तां कृतस्मित समाससवे वयराजवेतन ॥

यह सही है कि श्रेय का न लगना ही गति सम्भव है किन्तु बिना श्रेय की मोटर का तो भगवान् ही मालिक है । बालिगम ने एक ऐसे व्यक्ति का जीवन भी हमारे सामने प्रस्तुत किया है जिसकी मोटर का श्रेय काम नहीं करता था । वह है 'युवप्रभव वश' में ही उत्पन्न राजा अग्निवर्ण । जिस वंश की शिथिल बर्माएँ बहुत बालिदास को भी अपनी प्रतिभा पर सदेह होने लगती हैं, उम्मीदों में राजा अग्निवर्ण भी पैदा हुआ, जिसके मनस्तत्त्व की अग्नि केवल बड़े-बड़े धूर्त और दाह का कारण बन गई । वह अपने अस्तित्व को शरीर या प्राणमय कोण के भीतर भोगने वाला पशु बनकर रह गया । जिस वंश के वंश ने कवि के काव्य रूपरूप को प्रेरित किया था और रघुवीर का गृहण कराया था, उसी की समाप्ति एक ऐसे राजा द्वारा हुई जिसने दाह को पुरोहित और मन्त्रिणा ने धूपों से राजोद्यान में ही चिता पर रख दिया ताकि रोग के कीटाणु प्रजा में न फैल जाएँ

त गहोपवन एक लगता यद्विचमत्रुविदा पुरोधता ।

रोगनातिमयदिदध मन्त्रिण सभते शिखनिगूढमापधु ॥

ऐसी भयावह परिस्थिति सम्भवतः तब आती है जब यज्ञ चालक की सत्ता को पूर्णतः अस्वीकार कर देता है । इतना ही नहीं, वह चालक पर पूर्ण अधिकार कर लेता है और उसके भीतर यज्ञ धारणा मजबूती से बिठा देता है कि यज्ञ जिस तरह चल रहा है वही विकास का सही पथ है । मनुष्य का स्पूल शरीर और उसकी प्राणशक्ति जड़ मन पर हावी हो जाती है तो यही स्थिति होती है । उस समय भग्न प्राणा के साथ एकाकार होकर शारीरिक बुद्धि की तत्त्व को ही चरम उद्देश्य मान लेता है । इस धारणा में मन और उसकी सारी शक्तियाँ घायल हो जाती हैं । क्योंकि एक तरफ उसकी अतर्निहित दिव्यता उसे ऊपर उठने की प्रेरणा देती है दूसरी तरफ प्राणों का बल उसे लौकिक सुख की प्राप्ति के लिए नीचे की ओर खींचता है । इस खींचातानी के कारण एक अजीब तरह की घघम उपजती-मनपती है जो लौकिक सुखों के भीतर भी सदेहशील ग्राहक मन को एकरस नहीं होने देती । परिणामतः नाना प्रकार की मानस प्रतियोगिता का जन्म होता है और मनुष्य अपनी सारी ताकतों के रहते हुए भी अग्रहाय प्राणी बनकर रह जाता है । इस घघम और अग्रहायता को दूर करने के लिए भी एक शक्तिशाली श्रेय की जरूरत है जो चालक और यज्ञ की अधिकार-सीमा का अलग अलग बाँट रखे और अभी भी मोटर को यह मौका ही न दे कि वह

चालक के बन्धे से बाहर हो सके ।

आप हंसकर व्यंग्य के साथ कहना चाहेंगे

‘क्या खूब, आपने तो आदमी को बिल्कुल मोटर बना दिया । भले आदमी, यह क्या नहीं सोचत कि आदमी मोटर की तरह भलम असल यंत्र नहीं है । वह सामाजिक प्राणी है । अपने अपने घर की चहारदीवारी में बन्द होकर मोटरों लड़ें या दुर्घटनाग्रस्त हो, हमसे कोई मतलब नहीं, पर समाज में तो उनकी ‘बीभत्स’ दोड़ नहीं होनी चाहिए ?”

मैंने इसीलिए तो आदमी को ‘ब्रेक’ नहीं कहा ‘ब्रेक’ का बदल’ कहा है । सामाजिक ‘ब्रेक’ भी तो एक ‘ब्रेक’ ही है न । आपका समाज यदि अवसर-अनवसर हमारा ‘ब्रेक’ लगाने की कड़ाई को ही अपनी शक्ति मानता है तो माने मगर याद रखिए, यह गति स्वस्थ समाज का संक्षण कभी नहीं बन सकेगी । हाली का यह ‘बीभत्स’ दिन समाज के स्वास्थ्य का प्रमाण है । इस दिन ‘ब्रेक’ हट गया तो अच्छा ही हुआ गति के बग में कीचड़-बादल बहकर आया तो आया धारा के प्रवाह में बूड़ा-कतवार उतराया तो उतराया, अन्ततः सोई शक्ति को अभिव्यक्ति तो मिली । मैं तो समझता हूँ कि इस तरह के स्पीडब्रेक साल में दो-तीन बार होते तो ज्यादा अच्छा होता, क्योंकि आज की जिन्दगी पहले ही बड़ी अधिक जड़ हो गई है । तमाम नालियाँ सूखे हुए कीचड़ से पटी हैं । इन्हें अब पहले की अपेक्षा बड़ी अधिक सावधानी से और कई बार खूब साफ करने की जरूरत है । और जब ये साफ रहेंगी तो मनोजगत की गति का घोड़ा सा भ्रम भी इनमें बहकर सारे शरीर को सोच जाया करेगा । और नहीं तो अच्छा पानी भी काफी तादाद और तीव्र गति से आया हुआ पानी भी, इनमें रुककर सड़ेगा और तरह-तरह के घिनौने कीड़ा को जन्म देगा ।

‘लेकिन ब्रेक’ तो ऐसे ही बहुत ढीले हैं भाई देखते नहीं आप । सड़को पर, गलियों में ट्रेनों में प्लेटफार्म पर सिनमाघरों में सबत्र छेड़छाड़ धक्का धुक्की मची रहती है मीटियाँ बजती हैं बोलियाँ कसी जाती हैं । इतना ही नहीं, बहुत निचले स्तर पर उतरकर पान्थिक व्यवहार भी होते ही रहते हैं । इस पर भी आप ‘ब्रेक’ ढीला करने की बात करत हैं ?”

ये भूले हुए लोग हैं जो जिन्दगी को पशु घरातल पर भोगने की क्रिया से ही परिचित हैं । इनका प्रेम, सेक्स, दोस्ती मित्रता सभी कुछ सड़ो हुई नालियों में बहते कीटाणुओं से प्रेरित होता है । असल में इनका दोष भी नहीं है । सामाजिक ब्रेक ने जिन गंदी प्रणालियाँ यानी नालियाँ का निर्माण किया है, य उसी की उपज हैं । आप मनोजगत के अनेक आवश्यक तत्वों को जो गति के ही रूप हैं यन्त्र वज्य और अस्पृश्य मान लेंगे ता धीरे धीरे स्वच्छ पानी भी सड़ने लगेगा ही । यन्त्र आपके समाज में मनोजगत के स्तर पर भोगे

सर्व प्रिये चारुतर वसन्ते

बीसवी शती की भारतीय प्रिया इस शीपक को सुनकर क्या कहेगी ? यदि एक मम से भाधुनिका हुई तो शायद यह कि तुम पागल हो । यथायवादी हुई तो यह कि तुम भाबुक हो, और वही बहुत सहनशील, भारतीय परम्परा में पत्नी पति की दासी यानी उसे परमेश्वर मानने वाली हुई तो यह कि मुझे घर के कामकाज से इतनी फुसत नहीं कि भापकी निठल्लेपन की बातों को सुन सुनकर मन को परितोष दूँ । यानी बेचारे कालिदास ऐसे चञ्चल-यूह में कैसे हैं कि उनका इतना रमणीय वाक्य आज सबके लिए निरपेक्ष हो गया है । प्रत्येक साल यही सुनता हूँ कि इस बार की होली फीकी गई । वही चीनी का रोना तो वही तेल भी का । वही अपार भूँगाइ का रोना तो वही लगातार सूखे से सन्तप्त लोगों का दय की निठुराई को कोसना । यही हर साल चलता है, पर होली है कि हजारों बार हो ली, पर होली को बद करने का नाम ही नहीं लेती ।

वस तो हिंदू ससार के सबसे अधिक त्योहारप्रिय लोग हैं, किन्तु इन त्योहारों में भी होली का जवाब नहीं । दुनिया में ऐसा अजीबोगरीब त्योहार शायद ही कहीं मनाया जाता हो । सुना है कि भय कई देशों में भी नवरात्र पूजन के अवसर पर, नई फसल कटने के समय इसी तरह के त्योहार मनाए जाते हैं । प्रो दोई ने हिंदू मनस, कस्टम्स एण्ड सेरीमनीज में इस तरह के कुछ विदेशी त्योहारों का जिक्र किया है, वही-वही रंग डालने आदि की प्रथा भी चलती है पर 'कीचड प्रसाधन' का जसा मनोहर दृश्य भारत में होता है वसा अन्यत्र नामद ही होता हो । कीचड गाली-गलौज, अश्लील बातें और सब के ऊपर बरसाने का एण्ड-युद्ध । क्या बातें हैं ? होली मानो एक से एक निम्नतर वही जाने वाली बातों की प्रियतर बनाकर उपस्थित करने का पव है ।

पता नहीं आप इसके शजरे में रुचि रखते हैं या नहीं, पर मैंने जब भी होली को भारत में प्राचीन मदनोत्सव से जोड़ने की कोशिश की है, एक अजीब

अफाट अंतर से मन खिन्न हो जाता रहा है। वहाँ तो प्राचीन कविया का दुलारा ऋतुराज वसन्त और वसव और सम्पन्नता के साथ वम्बोजी सुरा के मात्क वातावरण में मदनोत्सव का अनुष्ठान और वहाँ आज की कीचड़-बदम, गाली गलीज भरी महंगाई से सिसकती और दब की बौसती बेचारी होती। प्राचीन उत्सव मानो वसव की देवी महालक्ष्मी की सन्निधि में स्वयं रति के हाथों सम्पन्न होता था जब कि आज का पव रक्ता की महादेवी के सम्पन्न धूमावती द्वारा आयोजित किया जाता है।

मैं इन दोनों पहलुओं में वही तालमेल न ढूँढ सकने की अपनी असमर्थता पर खीझता हूँ। सगता है वह लोग कल्पना लोक के झूठे जीव थे जो अपनी मनश्चाति के लिए एक मात्क ऐंद्रजातिन दुनिया गढ़ लेंते थे।

आ गया आ गया तो प्यारी आम की ताविया मोजरी के पने बाणों को भ्रमरमाला की डोरी पर चनाए समोगप्रिय रसिक जनो के चित्त को उद्दीप्त करने वाला वसन्त आ गया। वस फूलों से घाच्छान्ति हो गए। वसम खिल गए। स्त्रिया के गरीर में वाम की भादकता जग गई। हवा सुर्गि घत हो गई। सौंभे मुहावनी और तिन मुभावने लगने लगे। बाहू बया छा है —

हुमा सपुष्पा सलिल सपबम स्त्रिय सरामा पवन सुर्गि ध ।

मुला प्रदोषा दिवसश्च रम्या सब प्रिये चादतर वसन्ते ॥

बेचोरे बालिदास ने ऋतुमहार में वसन्त वसन व कुल अठनीस श्लोकों में एक ऐसे रम्य ऋतु की अवतारणा की है जिसमें रेगमी परिधान पृथुल नितम्बा पर झलती दनक भुनक करती काँधी, कसर लिप्त पयोधर चमल बाल मनुष्य सुवासित बालों में गुंथे अंगोव और नवमस्तिश व फूल, बानों में झनते बणि बार के गुच्छे बानागुरु के धुएँ से सुवासित महीनवस्त्र स्तन पर लटकते भाव दार मानों के दीतल हार कोकिल की बूँद और भीरा की गुजार त घलनामा वातावरण किस शृंगार की दीक्षा नहीं देता? इसीलिए यदि महाकवि वस त को शृंगारगीतागुरु कहकर सम्मानित करते हैं तो अपने हिमाय ॥ कोई अनुचित नहीं करना। इस छान्स अंग में पदार्ह बार मन्न देवता का स्मरण और घत में उसकी स्तुति अस्वाभाविक क्या मानी जाए।

— 'जान व वस साग ध जिनर'

यह सब दसहर और क्या कहा जा सकता है? वाचिनाम की रम्य दुनिया में सवत्र पवित्रात मस्तुति की परिष्कारिता छाई हुई है। उमम न कीचड़ बानों हैं न गाली-गलीज और न ही काद घम्मानता या उपहसन। कुछ उपहा हैं तो उनका हिमाय ॥ ही मानी मिर 'नयद-यनानि नात्रोण सब ही ताति यह प्रपमुना रहकर भी उनका सार मनष्या का मनी-मही साग सब।

मन्न दवता और उनकी सापना व दीक्षागुरु वगन्न की जाग बूँद पुरानी

है। वैसे तो ससार की कोई सत्कृति नहीं जो मदन देवता की नाना प्रकार की श्रृंगलाभा में बांधकर निश्चेष्ट रखने की शिक्षा न देती हो। बहुत कोमल शरीर है शायद, इसी से बहुत बड़े बन्धनों की बात कही गई है। हमारे देश में वे शिव को तपश्चर्या से विरत करने के अपराध में दंडित हुए, अगहीन होकर अनग बने, तो पश्चिम में उनके समानधर्मा देवता एरोस की पार्श्वे कुतरने की भी कम कोशिश नहीं हुई। जी, विलसन नाइट 'द त्रिश्चियन रेनसै' में चाहे लाख लिखे कि महान देवता एरोस अपने पक्ष फलाए हुए हमारे ऊपर मँडरा रहे हैं ताकि आवरण का उचित स्थान पा सकें, पर क्या अब तक उन्हें उचित स्थान मिला ? नहीं मिला। इसीलिए तो मदन अगहीन होकर भी किसी के चित्त को बासना से दाय किए बिना छोड़ता नहीं और एरोस ने ठीक ईडेन के बगीचे में प्रथम नर और नारी को अभिशप्त फल का स्वाद चखने के लिए विवश कर दिया।

म सोचता हूँ कि यदि मदन अनग न हुआ होता तो कितना अच्छा था। सामने आता। बातचीत होती। सोच समझ कर शत्रुता या मित्रता पक्ष की जाती। इकाररनाम होते। कुछ घात प्रतिघात चलते, कम से कम लुका छिपी वाली हमलावर स्थिति तो न आती, पर नहीं, हम इसमें विश्वास नहीं करते। हम बहुत बड़े आदर्शवादी हैं। हम बहुत ऊँचे उठना है, यदि इस उत्थान में सीढ़ी भी लड़ जाए तो हम उसे भी ताड़-ताड़कर जला डालेंगे।

तो शिव न सीढ़ी ही जला दी। पर सीढ़ी जलकर क्रैन में बदल गई। पहले लोग सीढ़ी पर चढ़ते थे, अब क्रैन उठाकर खुद ही कहीं का कहीं घर देता है। रगड़ो रगड़ो, जलाओ जलाओ, मारो मारो क नारे उठते रहें और मदन देवता ये कि मनुष्य के मन के लतागह्वर में छिपे चैन की बासुरी बजाते रहे। आखिर तुम अपने को समझते क्या हो ? मनुष्य ही हाँ न ! वही पञ्चभौतिक काया रक्त, मांस मज्जा के बने मनुष्य कि कुछ और ? मदन देवता जब अपने सुनहले पक्ष फलाकर आकाश में उड़ता है तब पृथ्वी की चुम्बकीय शक्ति हजार गुना बढ़ जाती है। उसके पक्षी की मरसराहट से चलने वाली हवा बावरी होकर वनस्पति जगत में ऐसा खिसकाव मचाती है कि हजार साल के उकठे धूनी रमाते पेड़ कंधे से फूल पड़ते हैं। डालें पुष्पो का भार से लच जाती हैं। ससार एक अनजाने सुखद आघात से भरपूर उठता है। चेतन तो चेतन, जब पदाथ तक एक विचित्र प्रकार की रहस्यलीला में खो जाते हैं। तुलसी बाबा उसकी शक्ति को जानते थे। सो लिख गए —

सब के हृदय मदन अभिलाखा ।

लता निहारि नर्वाह तब साखा ॥

नदी उमगि अनुधि कह धाई ।

सगम करहि तलाब तलाई ॥

जहें भसि दसा जइहट व घरायो ।

को कहि सजइ सचेतन करनी ॥

मदन कोई मामूली देवता नहीं है । इस ससार में ऐसे बितने हैं जो इस महा शक्ति के प्रबल आश्रमण को सह सकें ।

होनिहार का करतार को, रखवार जग, सरभर परा ।

दुइ भाय केहि रतिनाथ, जेहि बहूँ, कोधि कर धनु सर घरा ॥

ऐसा है यह बिबट देवता, ऐसी है उसकी दुर्दमनीय इच्छाशक्ति जो किसी को भी अपनी इच्छा के भीतर नहीं रहने देती । ऐसे देवता से सवाई करव मनुष्य का मन या तो दमशान धनेगा या फिर असंख्य कोमल भायनामों को मुदपट्टी । सो चाहे वेद कहे चाहे नवहे चाहे श्रुतिसम्मत हो चाहे न हो चाहे धर्मशास्त्रों में व्यवस्था हो चाहे न हो प्रकृति के साथ उसके प्रत्येक पद-संचार में पद मिला कर चलने वाला मनुष्य अपने आप प्रकृति की रमयवला में प्रकृति के समान कंधे से फूल पड़ने के लिए विवश होता रहा । हो सकता है कि वेद को न मानकर लवेद को मानने वालों ने इस उत्सव को जन्म दे दिया । पता नहीं इसी से चिढ़ कर या क्यों इसे शूद्रों का उत्सव कहने की एक दुकडही परिपाटी भी चल पड़ी ।

शुरू में एक अभिजात मदनोत्सव या सुवसंतव रहा होगा उसी के साथ जनता का अपना कीचड़ काँदो वाला अक्ल नतन भी । कालिदास की दुनिया से वह अलग दुनिया थी । वहाँ रेशमी परिधान नहीं थे, केसरमण्डित स्तना पर झूलते मुक्तादाम नहीं थे, अमीरा के सीष और भोग के बहुमूल्य उपकरण नहीं थे, वहाँ या उन्मुक्त प्रकृति का वातावरण खेत, खलिहान, पशु पक्षी, गाय गोबर, कीचड़ पानी । इसीलिए होली का उत्सव ऋतुसंहार या 'व्यासविरत सागर' में नहीं गाया सप्तशती' में बूढ़ना चाहिए ।

फगुणछूर्णाणदहोस केव वि बह्मपसाहण विष्णु धन जल समुह पलोद्व ॥
सम्रपोढ किमो धुमसि । (५।६६)

—यदि किसी ने वक्ष पर कदम प्रसाधन कर ही दिया तो, बावरी, वह अपने आप पसीने से धुल गया है फिर काहे धो रही है । यह तो फगुवा के उत्सव का निर्दोष फल है इसमें परेशान होने की क्या जरूरत ।

दोप तो कीचड़ को मन में तहिया-तहिया कर जमा जमा कर रखने में है । उसे किसी खास दिन निकालकर उसके कुप्रभावों से बच जाना यही स्वास्थ्य का लक्षण है । इसे हमारी लोक संस्कृति अच्छी तरह जानती थी । और यह सब गाली गलौज क्या यही होता है । यह समूची विश्व यापी लोक संस्कृति की विवेकता थी कि किसी एक दिन बप भर के बूढ़े-वतवार को जला दो और

मन म जमे हुए मल को निवाल निवालकर बाहर फेंककर स्वच्छ बन जाओ। यही लोक सस्कृति की सजीवनी धारा की विशेषता है। चाहे वे उत्सव सुवसंतव या मदनोत्सव के नाम से मनाए जात रहे हों, चाहे यूनान और रोम के फेस्टम स्टूलटोरम या मेत्रोनेलिया हों, चाहे ये भारत के होली या फगुवा हों चाहे 'कार्निवल' या 'फूलस डे' हों, प्रवृत्ति सब के भीतर एक ही थी यानी प्रकृति की उन्मुक्तता के समय एक दिन के लिए सभी कायदे-कानून, आचार विचार ताक पर रखकर उन्मुक्त हो जाना। यही उन्मुक्तता मनुष्य को सारे ऋक्तावात में जीते रहने के लिए सम्बल देती रही।

मध्यकाल में भक्ति आन्दोलन के समय लगता है इसमें कुछ सुधार ले आने की प्रवृत्ति जुड़ी। यह शायद इसलिए कि भारतीय साधना में माधुस्य प्रेम या शृंगार को उसका उचित प्राप्य देने की शक्ति सिर्फ कृष्णभक्ति में निहित थी। काम जलकर आखिर हुआ तो कृष्ण का पुत्र ही। इसीलिए जब भक्ति का इन्द्रधनुषी खदोवा उत्तर भारत पर सहारने लगा और जयदेव के मदनमोहन सरस बसते बिहार करने लगे तो अचानक होली के साथ दोस्रोत्सव भी इसमें आकर जुट गया। 'हरिभक्ति विलास' जस ग्रंथों में होली को एक सांस्कृतिक परिधान देने का प्रयत्न किया गया। 'कालिकापुराण' मत्स्यपुराण और 'पद्म पुराण' में मदनपूजा की व्यवस्था मिलती है। कृष्ण के प्रीत्यर्थ मदनोत्सव का मदान उनके चरणों में अपरिमित भक्ति का उत्पादक बताया गया है। गोपाल यज्ञ पर मदन देवता के विराजमान होने का यही रहस्य है। कामगायत्री और कृष्णगायत्री में ही क्या भेद है?

पर लाख चेष्टा करने पर भी कदम काँदो वाली प्रथा को मिटाना सम्भव नहीं हुआ। होता भी कैसे? लोक सस्कृति अपने रास्ते नहीं बदला करती। उसमें से जो अच्छा लगे चुन लो यह उस मजूर है उसे सजाकर अपनी सांस्कृतिकता का रोब लो इसमें भी उसे इकार नहीं, पर उसकी धारा ही बदल दो यह वह बर्दाश्त नहीं करती। कृष्णभक्ति से प्रेरित बरदावन और बरसाने की होली में 'लकुट' भी जुड़ गया। नारी और पुरुष की सनाओ के बीच लकुट युद्ध। क्या मजेदार चीज है। प्रेम का और वह भी बाधावर्धविहीन युगल प्रेम का इससे अच्छा प्रदर्शन और क्या हो सकता है। बड़े-बड़े किस्से प्रचलित हैं इस लकुट-युद्ध के सम्बन्ध में। आज भी अनेक लोग सिर्फ यह 'मजेदार घटना' देखने के लिए ही होली के अवसर पर ब्रज की यात्रा करते हैं पर इसके पीछे छिपे अर्थ और उसकी परम्परा को जानने की कमी कोशिश नहीं की गई।

वस्तुतः लकुट खालन बरसाने की स्त्रिया ही करती हैं नदगाँव के गोस्वामी तो भार सहते हैं। जरा लकुट हिला डुला दिया तो क्या हुआ, मुख्य कोशिश अपने को बचाने की ही होती है। कम से कम अपने देग में एक तो ऐसी जगह

है जहाँ प्रीतों के हाथ में मर्दों को ठीक करने के लिए डडा दिखाई पड़ता है, वरना 'टाउन की अधिकारी तो सबत्र स्त्रिया ही बनती रही है। एक दिन के लिए तो भला अबला को सबला बनने का अवसर दीजिए।

गाथा सप्तशती में भी इसी से मिलते जुलते एक रिवाज का उल्लेख मिलता है। विवाह के ठीक बाद वर की भावजें वर वधू को गाव के बाहर किसी उद्यान में ले जाती है जहाँ आम्र वक्ष की पतली पतली शाखाएँ तोड़ कर एक-दूसरे के हाथ में दे दी जाती हैं और उनसे एक दूसरे को मारने के लिए कहा जाता है। (डा० परमानंद शास्त्री गाथा सप्तशती पृष्ठ ५१) इसी प्रकार का एक रिवाज प्राचीन भारत में भी प्रचलित था। वसंतोत्सव में देवर भोजाई एक दूसरे पर पुष्पित आम्रशालाम्रो से प्रहार करते थे। इसका पीछे कौन सा असामान्य मनोविज्ञान छिपा है इसका निणय तो मनोविज्ञानवेत्ता ही करेंगे, परंतु मैं इसमें किसी भी प्रकार की ताडनोद्रेक ग्रिय (सडो मसोचिउम) का आभास भी नहीं देखता। इस तरह की ग्रिय आजकल की आधुनिकतावादी फासनेवाल सम्मता की देन होती है जहाँ मनुष्य की कामशक्ति अतिशय दुरुपयोग के कारण विकृत रूप ले लेती है। इस ग्रिय की सम्भावनाएँ बीसवीं शती की प्रति नवीनतावादी विचारधाराओं से प्रेरित बहुशुक्ति वासना के दिक्कार नव युवकों में तो की जा सकती है प्राचीन भारत के अद्वयसम्भ्य ग्रामीणों में उसकी झलक देखना मनोविज्ञान का मजाक ही होगा।

होली के अवसर पर जो कुछ भी नग्नता, हुडदग, गाली गलौज या कबीर जोगीडा (इसका एक अलग सांस्कृतिक इतिहास है) आदि प्रचलित हैं वे सम्मता के लक्षण भले ही न माने जाएँ, सम्मता को गलीज में बदलने से रोकने वाले निर्दोष अपराध ही कहे जा सकते हैं।

इसमें कोई शक नहीं कि यदि मध्ययुग के कृष्णभक्त कवियों ने इस उरसव को सहृदय अपनाकर इस साहित्यिक परिधान देने की कोशिश न की होती तो आज की होली और भी फीकी हो जाती। इसीलिए सबल भुवन को मोहित करने वाले कामदेव को भी अपनी मोहिनी से बनीभूत कर लेने वाले श्रीकृष्ण को इस अवसर पर भुलाया नहीं जा सकता—

बड़े मदनमोपाल बगोराकारमदभुतम ।

यमाहुयो बनोविमने श्रीममदनमोहनम ॥

बबुआप्रिय बिब्बो बबबो बसन्ते

प्रिय जोनी जी महाराज, जयशंकर ! आप मुझे ठोंक पीटकर त्योहारी लेखक न बनाइए, मुझ पर नहीं तो भगवान के लिए अपने पर रहम लाइए । इस इंदिरा मन्तर के उनीम सौ सत्तर ईसवी म पत्रिका को 'पापुलर बनाने के तीर-तरीके छोड़कर, उसे भारी भरकम ऊब भर निबन्धों से बोझिल करके बसन्त के मौसम में अपना पत्ता न कटाइए या तुड़वाइए ।

मेरी समझ में नहीं आता कि मैं होली पर क्या लिखू । होली मसखरो का त्योहार है और मुझे दो चीजों से सख्त नफरत है—मिनी स्कट और मसखरी । आप चाहते हैं कि मैं आपको होली पर एक फडकता हुआ लेख भेजू आपकी शान्तावली में 'रम्य रम्या उफ भलग भलग वंतरणी की पटनहिया भीजी ?" आप पटना गए हैं अभी ? आपने पटना के लोगों को समझ क्या रखा है ? जनाव, वह बनाट प्लेम के मिनी स्कट बालियों का शहर नहीं है किसी जमाने में वहाँ एक थे नलिन जी । शरीर ऐसा कि देखने वाले दहलकर रास्ता छोड़ देते थे और तब ऐसा कि जरा सा स्पष्ट हुआ नहीं कि आपको कितने नीचे दुबकियाँ लगानी होगी जानना मुश्किल था । मैंने 'निराला के बाद हिन्दी में ऐसा मनुष्य दुबारा नहीं देखा जो गद्य में पद्य में समाम्यस्त' यानी शास्त्र की कटकाकीण ऊबड़ खाबड़ जमीन हो या साहित्य की रम्य रम्या 'मृदुत्तरछदवती' मुलायम शय्या सरस्वती उनके साथ सबत्र समान रूप में बिहार करती थी, ऐसे थे वह विहारी, सो वनुआ जी उन्होंने एक रचना लिखी है 'बिब्बो का बिब्बो' । उसी की कुछ पत्तियाँ हैं । मुलाहिजा हो —

बिब्बो ने कहा एक दिन,

मुझे चाहिए गगन-सुमन गुन लो ।

उसके जूड़े में मुझे फूल थे । ले लिया

उन्हें बोला— हाजिर है चुन लो ।

बिबो बोली— मेरे बाते कृतम
 घाबारा हय, पून, पून हैं क्यों ?
 कवि हैं न ? उसने पुता लिया गात
 घाबारा उसने होते ही हैं पुनत ।

तो यबुमा पून पून वा मामन ममभे ? एमा हो। है बिबो वा बिबोव ।
 घाबरो 'गमा गुमन की परेगारी दूर करो के लिए बता' रोग की सिमी
 दूका से घपित से घपित व्याम्बिक व पून स घाने की निवरा तमर हो सर ही
 है । पून, पून पूना लिया क्या बात है !

घाब यह न ममभे कि मैं अभिमान्नीय (पून गुधार से) निम्मी की निम्मी
 कर रहा हूँ । मैं तो निम्मी की गूबगूरी पर निम्मी हूँ कि न सही 'गगन-गुमन
 सरगो' की सींग की सलाह वहाँ बाबापना जारी है ।

भाई जा मैं घाबरा सही कह रहा हूँ 'गगन जी की भी निम्मी पस्त'
 थी । वसे यह दीगर बात है कि घाबरो बिबोव वा मनसब ही न मानूम हो ।
 घाब हिन्दी पत्रिका के सम्पादन हैं जहाँ कार्यालय म दम्बरोव रराना भी
 दान के गिलाफ भाग जाता है । और फिर यह दम्ब भी काफी पुराना पड़
 गया । पुराने दक्खिनास लोग ऐसे दम्बों पर लटटू या कहिए फिरकी बने घूमा
 करते थे । वसे अब यह दम्ब घटत यमान मध्यपुगीन हो गया है क्योंकि मेरे
 एक सहमुखिग मित्र ने एक दिन पूछा, भई बिबोव क्या चीज है भला ।
 हालांकि उहने रीतिवात पर डाकटरेट ली है । मैंने उन्हें भाष कवि वा एक
 श्लोक पढ़ सुनाया

कि तावत सरसि सरोजमेतदारा

बाहोस्विमुसन्वमासते तदश्या

सगम्य क्षणमिति निश्चिन्नाय किञ्चि—

दिब-बोकक सहासिनां परोक्ष —शिशुपालवध, ८।२६

तो हे यबुमा जी, कृपया बिबोव मे न आदए, क्योंकि घाबरो मैं निश्चित
 ही बक्सहवासी यकिया म गिनने की धुन्ता नहीं कर सकता । क्योंकि घाब
 रहते भले ही दिल्ली में हो हैं आचलिक आदमी । और आजकल महानगरो में
 रहनेवाले लोगो की मुसीबत यह है कि

उन्निद्रा भोगती रात गद्य पद्य

नीली पीली मोलियां नौद की

बिबोक बिबो का मनवद्य

छाती पर पुस्तक आद्रे जोड़ की

यह कम्बरत भी एक सती था । अरे भई जहाँ नेट बहुत स्ट्रेट हो वहाँ
 घुसने की कोशिश क्यों करते हो । पर हर एक अपना ही राग मलापना चाहता

है। मा'द्रे जीद को क्या सूझी कि उसने राह चलते को टोकने की गलती की, पर की क्योंकि वह समझता था कि राह चलते को टोकना भी कभी-कभी जरूरी होता है। उसने एक ऐसी रम्य रम्या सिरजी कि नायक उसके भगाध मधुकुण्ड में फिंमलकर गिर गया। यानी ठीक वही क्रिया जसी मच्छरो को फँसाने के लिए की जाती है। लोहवान का सुर्गा घत घुर्गा कमरे में भर जाता है और मत्सरी बनि वाला मच्छर सुचिक्कण रेशमी कुहरे पर तरने की इच्छा से गुजार करते हुए उसी में रम जाता है। सेकण्ड भर के बादर धुए का बिप बिपापन उनके पक्षों को ऐसा सटा देता है कि बेचारा सुठित होकर जमीन पर सुर्गा बनकर पसर जाता है। सो वही हाल उस नायक का था कि मेहमानों करने में लीन हुआ तो हुआ, जाने की सुघ ही न रही। बस अपनी नाक की सीध में चलता रहा और भिपुन नीला के रस में डूबा रहा। वह जानता था कि नायिका बिबोक् वाली है, पर प्रतिपत्नी सहचरी की कमजोरी भी जानता था कि वह 'जामो' जैसा शब्द शायद ही बोल पाए। उस रम्या ने सब ही जामो नहीं कहा पर समझा दिया कि जिस दिन वह एक खास रंग को स्कट पहनकर नास्ते की मेज पर उपस्थित हो उसे समझ लेना चाहिए कि जुदाई का वक्त आ गया। हाथ बेचारा लवर, वह बलि के बकरे की तरह रोज सोचता रहा कि कहीं आज ही वह स्कट न पहन बैठे। और एक दिन वह रम्या अतिशय रम्या लगती हुई नास्ते के टेबुल के पास आई तो रूप से विजडित वह ताकता ही चला गया, काफी देर बाद उसने गौर किया कि ऐसी फबन जिस स्कट ने पदा की है वह उसी रंग की है जो उसकी जुदाई का ऐलान करने के लिए निश्चित किया गया है। आज पहली बार उसे लगा था कि शरीर की सुंदरता की भी कितनी ऊँचाई होती है, तभी उसे होश आया कि मलाहत की बाँदनी बरमाने वाली बरिन स्कट उसका रास्ता रोक कर खड़ी है। उसे बस ही चलते रहने की हरी भण्डी भपेट ली गई है। यानी मुश्तसर यह कि होली खतम। इसी से मैंने कहा कि मुझे 'मिनी स्कट' से सख्त नफरत है।

और क्या यह भूठ है कि होली सचमुच की खतम हो चुकी है। आप न मानें तो मैं क्या मिडटम पोल' कराने की जुरत करूँगा। मैं भला साहित्यकार होकर ऐसी साहसिकता कैसे कर पाऊँगा, जिसे देश का एक भी राजनीतिक व्यक्ति झेलने को तयार नहीं दीखता। जो हो, मैं तो यही मानता हूँ कि इस देश में भुखमरी, जहालत, गरीबी घूसखोरी, बदफली और बदकारी के माहौल में होली मात्र कमकाण्ड बन कर रह गई है जिसे हम स्वस्तिव के मिथान की तरह अपने चेटरे की दीवाल पर चिपकाए गिथ्या कुगल और भानद के बोध के लिए ढोते फिर रहे हैं।

पर प्रत्येक वष जब भी मैं इस पव के भीतर से गुजरा हूँ, एक बड़ा परे-

ज्ञान करने वाला सवाल दिमाग में निरंतर घुमड़ता रहा है, और आज भी जब मैं इस प्रश्नाहत पत्र पर सोचने बैठा हूँ रह रहकर वही सवाल अपनी अनुगूँज में सारी चेतना को गिरफ्त कर लेता है—क्या सचमुच होली कमकाण्ड हो गई है ? क्या आर्थिक स्थितियों के भारी दबाव और जीवन की एकधृष्ट (मोनोटोनस) बनाने वाले मशीनी सम्बन्धों के बीच इन पत्रों का कोई अर्थ नहीं ? क्या यह चर्चा प्राणिक उत्साह से सबसे अधिक सम्पन्न पत्र था इसलिए आज के असंगत निष्प्राणतः के युग में पूर्णतः निरर्थक और बेमानी हो गया है ? मन कहता है कि हाँ ऐसा हो चुका है होखी का दिवाला पिट चुका है । इसके उत्साह अभिशाप्त प्रवाह अवरुद्ध आनन्द बाधक और समूह सत्ताप और सहकर्म का अवमूल्यन हो गया है । यानी भस्ती पस्ती में बदल गई है ।

पर प्रकृति इन सारी धारणाओं की काबज काफी पर हस्ताक्षर करने को जाने क्यों तयार नहीं होती । क्यों नहीं चतुर्दिक फली अमराइयों के मोजर टहलियों से झँकना बन्द कर देते ? क्यों नहीं वना में अपने आगमन से भुँगे की कलगी से होड़ लगाने वाले टेसू अपनी बापसी स्थिति कर देते ? क्यों नहीं सद हवा में बसती गुलाबी की मादकता घोलने वाली सुगंध के झकोरे ठिठक कर टक जाते ? क्या नहीं तामिया मोजर को कुटवने से कसले बने अपने कण्ठ की खुजली मिटाने के लिए कूकता कोकिल चुप लगा जाता ? हमारा वश चले तो आज की आधुनिकता और सत्रास को अपनी मध्यकालीन प्रवृत्ति से कलकित करने वाले इस पक्षी को 'डायना गन से सदा के लिए खामोश कर दें । आज भी ऐसे फालतू किस्म के अनेक लोग हैं जो रीतिकाल के दक्षिणानुसक्तियों के चरम से सारी प्रकृति को प्रफुल्लित देखने की कोशिश करते हैं ऐसे लोग घाय हैं जो सारे सुख का सरो सामान इकट्ठा पाकर भी एक आत्मी के अभाव में सारे वसंत को बीसने के लिए बैठ जाते हैं—

घोरे रसालन की चढ़ि डारन
 दूकत बयलिया भौन गहै ना ।
 ठाकुर कु जन कु जन गुजत
 भौरन भीर चुपड़वो चहै ना ॥
 सीतल भव सुगन्धित धीर
 समीर सम तन धीर घर ना ।
 व्याकुल की-हो वसंत बनाय क
 जाय को वसंत से कोऊ कहै ना ॥

अब इन्हें कौन गमभाए कि हूँ भवि भने ही आय कर' की उच्चतर सीमाओं में कुछ मतान की बातें हो गई ॥ अनर्गल्य व दाम में विद्वान

कीजिए, कोई पक नहीं पडा है। आपको अगर बानावरण इतना परेशान किए हुए है तो एक बैरम चिटठी ही डाल दीजिए। क्याबि आखिर इस सबट से उबरने का दूसरा रास्ता भी तो नहीं है। है और कुछ लोगा के हिसाब से जो रवि बाबू को बहुत मासूम मानते है काफी अच्छा भी है पर कौन जाने आपको पसंद आए न आए। जी हाँ, जी हाँ, रवि बाबू ने खुद कहा था कि वह बहुत बाद में जान पाए कि उन्हें मानसिक व्यस्कता काफी विलम्ब से प्राप्त हुई—'निमल चाँदनी रात थी। शीतल भँद हवा वह रही थी। कसा मुहावना दस्य था, परंतु मैं वहाँ न था। कल्पना के परो पर बठा अपने घर की ओर चला जा रहा था, बगाल की दुश्भावसी, कलकत्ते की कलरव बरनी हुई गंगा मुझे अपनी ओर खींच रही थी।' उसी वक्त उस 'रम्य रम्या' ने काँव की अपनी ओर खींचने की अनेक कोशिश की। पर कवि व्यस्क न थे, या हो सकता है कि 'बक्सटवासी बमल' की तरह बिम्बोर' समझ ही नहीं पाए और वह बसे ही कवियाने' मूँह में आस्र भूँदे बढे रहे। अपने बिन्वोक को निरपेक्ष होते देख वह रम्या थोड़ी और नीचे उतरी, उसने कवि को नई युक्ति के जाल में फँसाने के लिए 'दस्ताना चोरी का खेल' और उसका रहस्य समझाते हुए कहा—रवि ! यदि कोई व्यक्ति किसी युवती कुमारी का दस्ताना चुरा नेता है तो उसे उस युवती का चुम्बन करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। वह आरामकुर्सी पर बठी, आपें भूँद अपने दस्ताने की चोरी की प्रतीक्षा करती रही। आँख बोलकर उसने देखा कि दस्ताना बसे का बसा उसी जगह रखा हुआ है।

पता नहीं इसके बाद उसन कवि का किन शब्दों में अभिनंदन किया ? यह बिलकुल सही कहानी है बबुआ जी, मजाक नहीं मैंने कहा न कि मुझ में खरी पसंद नहीं। आप भी इस खेल के बारे में जानना चाह तो राजकमल से प्रकाशित श्री दिनीपट्टमार राय की महोपुरुषा के साथ' किताब की पृष्ठ संख्या १५८ देख लीजिए। कितना जोरदार खेल है है न ? दस्ताना चोरी का खेल

अब आप बताइए आपको सहानुभूति किसके साथ है ? कवि के साथ जो किंगी भी कीमत पर अपनी सहचरी प्रकृति के साथ विश्वासघात नहीं करना चाहता ? वह उत्पुल्ल प्रकृति की शोभा को मगपित है, जिसे चाहें तो दक्षिणानूसी भी कह सकते हैं या उस रम्य रम्या के साथ जिसन समय और स्थान और जीवन की दुदमनीय सहजता के कारण एक चटखारी मनोवृत्ति के बशीभूत हो कर, युक्तिपूर्ण ऋडा का स्वाग रचाया ? रम्य रम्या दानो हो हैं मित्र ! सवाल है कि तुम किस तरह की रम्यता को पसंद करते हो ? प्रकृति की या तस्फी की, या दोनों की ?

मनुष्य के हृदय में प्रेम और वनस्पति के हृदय में फूल एक ही प्रक्रिया के भिन्न परिणाम हैं। केवल वनस्पति को लेकर ही देखें। होली के मौके पर दो तरह के दृश्य एक साथ दिखाई पड़ते हैं।

वन उपवन में चतुर्दिक् वृक्षों की पुनर्गियों पर झूमते रंग बिरंगे फूल। और होली की शाम को उही वृक्षों के सूखे या हरे काठ रंग बिरंगी लपटों वाली चिता में जलते हुए। ये दोनों ही दृश्य वस्तुतः एक ही प्रक्रिया-यापार के परिणाम हैं। अंतर सिर्फ यह है कि हरे वृक्ष ने आग को बाँध लिया था, अपने भीतर उस उत्ताप को जञ्ज किए रखा और वही अग्नि फूल बनकर उसकी शाखाओं में खिल गई। जब वही अग्नि नियंत्रण से छूट जाती है बहिर्गत हो जाती है, तब गोले काठ तक को जलाकर राख में बदल देती है। यही है होली का मायाजाल और यही है उसका मन्त्रपूत संदेश।

चन्द्रमा मनसो जात

प्राज्ञ मन बहुत उदास है। कोई खास बात नहीं, कोई माहौल भी बुरा नहीं है। मौसम भी अच्छा ही है। आसमान साफ है। नीली-नीली गहराई में तैरते पछी अच्छे लगते हैं। गम धूप धरीर को सुहाती है। सामने खेतों में सरसो फूली है। पीली-पीली मजरियाँ वसन्त के उदय की पूर्वसूचना दे रही हैं, पर मन उदास है।

यह मन भी वेडव चीज है। यह न तो पृथ्वी के पास है, न समुद्र के। न तो वनस्पतियों के पास है, न पशुओं के। यह सिर्फ मनुष्यों के पास है। यानी यह सिर्फ हमारी 'मनोपत्नी' है। वज्ञानिव कहता है कि यह कुछ नहीं है। सारा धरीर चीर फाड़कर देख चुके, इसका कहीं पता नहीं चला। दाशानिव कहता है कि बाह्य है फसे नहीं, यही तो चीज है जो पशु से मनुष्य को अलग करती है। अन्नमय प्राणमय कोश पशु के पास भी है। मनुष्य के भी। पर मनुष्य पशु नहीं है क्योंकि उसके पास मनोमय कोश है, जिसे वह चाहे तो विज्ञानमय और भानन्दमय कोशों में बदल सकता है। यानी मन ही वह चीज है जिसमें प्राणों की सारी सम्भावनाओं के अंकुर विद्यमान हैं। बड़ी बेगकीमती चीज है यह पर लगता है प्राणकल कहीं से गडबडा गई है इसी से तो प्राणकल मन बड़ा सुस्त है।

पच्चीस दिसम्बर वैसे भी अच्छा दिन है। इस दिन मैं काफी खुश रहने की कोशिश करता रहा हूँ। ठीक से तो याद नहीं कि यह कोशिश कितने वर्षों से जारी है पर दस गारह वर्षों से जरूर ही मैं इस दिन खुश रहने की कोशिश करता रहा हूँ। बड़ा महत्त्वपूर्ण दिन है। इस बार इसका महत्त्व थोड़ा और बढ़ गया। इसी दिन अपोलो ८ चन्द्रकक्षा में दस चक्कर लगाकर पृथ्वी की ओर लौट पड़ा।

चन्द्रमा से सिर्फ साठ मील की दूरी पर उसके चौगिद दस चक्कर। यानी आखिर को शताब्दियों बाद बल्कि कोट्युदियों बाद भाजे बूढ़े मामा की इतने

नजदीक से देख सके। आह, कितना सुन्दर, ऐंद्रजालिक शोतल, सम्मोहक और आकर्षक था यह दूरस्थ चन्द्रबिम्ब ! ससार के कवियों का परम आत्मीय उपमान बच्चों का निरंतर आहूयमान स्वप्न लोक सोने की कटोरियों में दूध भात लाने वाला चूदा मामा, नारिया का प्रियस्मारक, प्रेमविवधन, प्रेरणास्रोत पुरपा के भुलसत गस्तिष्क की सहलाने वाला चिरसहचर, प्रेमीयुगल की तटवर्ती सीलाश्रो का द्रष्टा और साक्षी सम्पूर्ण जलरागियों को अपने प्रतिबिम्ब से चाँदी की तरलायित मालाओं में बदलने वाला मंडनकार शिल्पी हर भास्वर तेजोदीप्त पुरुष के उत्तमांग में स्थित प्रभामंडल और भारतीय दार्शनिकों, तांत्रिकों, साधकों का प्रिय सोमसत्त्व पहली बार मानव चक्षुओं के इतना नजदीक आ गया कि हम उसे नग्न यथावत और सही ढंग से देख सके। यह मनुष्य मन के दुर्बिजय दृढ सक्त्व का ही परिणाम है कि वह रहस्यमय अंतरिक्ष की सारी बाधाओं का उत्लघन करके चन्द्रमा के पास पहुँच सका। अपोलो-यान का कमाण्डर फ्रैंक बोर्मन कहता है कि यह चन्द्रमा गहन स्तब्ध सनाटे से भरा बीहड़ विस्तार मात्र है इसमें कुछ नहीं है। यह भट्टी चट्टानों से बने बादलों के पुंज सा लगता है। यह निश्चय ही इतना अनाकंपक है कि यहाँ कोई रहना नहीं चाहेगा। उसका सहायत्री लॉवेल उससे भी एक कदम आगे बढ़कर घोषणा करता है—चन्द्रमा का विराट अकेलापन अयोत्पादक है। अंतरिक्ष की असीम मरुभूमि में सिर्फ पृथ्वी ही मोहक मरदान सी लगती है। ऐण्टस को यह चन्द्रमा भीमत्स लगता है। कम से कम सुबह और शाम तो सुहावनी होनी ही चाहिए। पर यहाँ की सुबहें और शामें तो और भी मत्तरनाक हैं क्योंकि उनकी अपेक्षाकृत कम चका चौंध पड़ा करने वाली रोशनी में चन्द्रमा की प्राकृतिक बीभत्सता और भी अधिक भयानक लगती है।

मीलों गहरे अंध जंटेर, वनस्पतियों से मिलकुल वंचित घूसर मरुविस्तार, सीधी बराबनी पहाड़ियों का अस्थिपंजर हवा की पेट्टी से रहित नग्न वातावरण जिसमें चमकते तारे अदृश्य दानव के दाहक चक्षुओं की तरह अपनाक टकटकी गाँधे ताकते हुए आग उगलता भुय और जाने कब के यंजर पड़े वीरान मदान। यही है हमारी सम्पूर्ण सौन्दर्य चेतना का घनविग्रह चन्द्रमा।

चन्द्रमा का सारा चहुरा अनात्मिकाल में घटित भीषण उल्कापात से ऐसा बिगड़न हो गया है कि उस दारुण चक्क से विभूत ससार के सबसे बम्पूरत आत्मी के चहरे के समान बहने में भी सगोच का अनुभव होता है।

मैं बान कर रहा था मन की चर्चा करने लगा चन्द्रमा की। भला मन और चन्द्रमा में क्या सम्बन्ध ? सम्बन्ध है और बहुत गहरा है। इसी से तो कहा गया था—चन्द्रमा मनमा जान।

चन्द्रमा मन में पड़ा हुआ। अनेक स्थानों पर चन्द्रमा को विराट पुण्य का

दक्षिण नेत्र कहा गया है। न सिर्फ पुरुषसूक्ता में बल्कि उपनिषद् में भी इस धारणा की बार बार श्रावति होती है। चक्षुषी चन्द्रसूयी (मुण्डक २।१।४) गीता में विराटरूप के प्रसंग में भी अनन्त बाहु गणिसूयनेत्रे' कहा गया है।

भगवान् कृष्ण इस चन्द्रमा पर ऐसे सुभाषण कि उहाने कहा—“नक्षत्राणां मह गी।” यानी नक्षत्रों में चन्द्रमा में ही हूँ। सो यह चन्द्रमा हमारे घम, दशनादि में बड़ा महत्त्वपूर्ण माना गया है, इसमें सन्देह नहीं। छांदोग्योपनिषद् जिस षोडशी प्रजापति की बात करता है उसमें नवाँ स्थान चन्द्रमा का है। (४४६)

भ्रमर में चन्द्रमा मृष्टि का इतना महत्त्वपूर्ण तत्त्व है कि इसकी उपयोगिता की ही नहीं जा सकती। सूर्य और चन्द्र या सोम इन्हीं दो तत्त्वों के विमिश्र संधप और समन्वय से मृष्टि की उत्पत्ति बताई गई है। सोम तत्त्व बहुत ही महत्त्वपूर्ण दार्शनिक पारिभाषिक शब्द है। यह मामाप्स्यता, नीतलता, जल, दुग्ध, ओषधि—जैसे स्थूल तथा ममता, दया, वात्सल्य, छातीनता यानी तमाम सौकुमार्य जैसे सूक्ष्म तत्त्वों का स्रोत है। ज़िम्मे के शब्दों में— चन्द्रमा जीवन का स्रोत है। यह भ्रमर यानी जल का ग्रासक है। और यही जल सारी मृष्टि में संचरित होकर सभी जीवधारियों का पोषण करता है उन्हें जीवित रखता है। यह चन्द्रात्पन जल वस्तु हमारी पृथ्वी के लिए वही भ्रमर रखता है जो अमृत देव जगत में। चन्द्रमा ने गिरे ओसकण वनस्पतियों का, वनस्पतियाँ दूध का और दूध मनुष्य के भीतर रक्त का निर्माण करता है।

(मिथ्स एण्ड सिम्बल्स इन इण्डियन आर्ट एण्ड मिबिलिजेशन, पृ० ६०)

चन्द्रमा या सोमतत्त्व की दार्शनिक व्याख्या में न जाकर हम यदि उसके कुछ पर्यायवाची शब्दों पर विचार करें तो चन्द्र तत्त्व का काफी स्पष्टीकरण हो जाएगा। भ्रमर को भी चन्द्रमा के निम्नलिखित पर्याय दिए गए हैं। हिमाशु यानी नीतलता देने वाला चन्द्रमा, अर्थात् जो ब्रह्माद का मानदण्ड हो। इन्द्र जो भद्र करे। विष्णु वह जिससे ज्ञान प्रेरित हो। सुधाशु जो अमृत किरणों वाला है। शुभ्राशु जो प्रकाशपूर्ण है। ओषधी, जो वनस्पतियों का स्वामी है जवातक, यानी वह जो जीवन देता है। सोम वह है जो अमृत स्वरूप है या जो नित नूतन (सूयते जायते नवो नवो भवति) होता रहता है। कलानिधि, स्पष्टत ही कलाभा की महत राशि का नाम है। नक्षत्रेश, शब्द उपयुक्त मुण्डो वाले नक्षत्र के लिए सहज ही अभिधेय है।

ऐसे नक्षत्र के परम्परे के मन से उत्पन्न होने की बात किन्तनी ग्रथमयी है। मैं सोचता था कि शायद उसने मेरे जैसे उदास मन की स्थिति में इस ग्रह को बनाया होगा पर सगता है कि यह सही नहीं है, इतना ब्रह्मादकारी यत्र उदास मन स्थिति की रचना नहीं हो सकता। यदि ऐसा होना तो यह जीवनदात

नक्षत्र नहीं, तमस का पुत्र होता । पर यह आज तक प्रकाशगमक देवता की तरह पूज्य है । ससार के अनेक अवतार पूण चन्द्र म जन्मे, ज्ञान को प्राप्त कर सके, और इसी को उन्होंने अपने महापरिनिर्वाण का समय भी चुना ।

द्वितीया के चन्द्र का महत्त्व तो कहना ही क्या ? वह परम शिव के मस्तक पर विराजमान है । इसका बिम्बात्मक अर्थ स्पष्ट करते हुए हाइनरिग जिमर कहता है— 'यह अद्वैतानार क्षीण चन्द्रमा प्रथम वागोद्भव का प्रतीक है । यह सृष्टि के सबसे प्रथम और सबसे सूक्ष्म तत्त्व ना' का सूचक है । (मिथ एण्ड सिम्बल्स इन इण्डियन आर्ट एण्ड सिविलिजेशन, प २०५) यह चन्द्रमा हिंदू और मुसलमान दोनों ही धर्मों का पूजास्पद है ।

उसी चन्द्रमा के भयानक रूप की बातें सुनकर आज मन उदास है । पर जब मैं इस उदासी की व्याख्या करता हूँ तब लगता है कि यह कितनी निरर्थक है । असल में चन्द्रमा सुन्दर समतल हरे भरे प्रदेशों वाला जनाकीण ग्रह होता तभी उदास होने की बात होती ।

सम्पूर्ण पृथ्वी को अमृत, सोम, शीतलता और जीवन देने वाले ग्रह को ऐसा ही होना पड़ेगा जसा चन्द्रमा है । यदि वहाँ स्वयं जीवन होता हरिप्राप्ती होती जल होता जीवधारी होत तो चन्द्रमा का समूचा रसतत्त्व उन्ही के पोषण में खच हो जाता । चन्द्रमा महान त्यागी भगिनी भक्त ग्रह है, जो सूर्य से प्राप्त उष्ण अग्निशक्ति को सोम में बदलकर उसे निःशेष भाव से पृथ्वी को सौंप देता है । वह स्वयं जल रहा है, ठबड लाबड है बीभत्स है भयानक है धूसर है नीरस है, पर यह इसलिए कि वह अपनी सारी शक्ति किसी और ग्रह के पोषण के लिए उत्सर्ग कर देता है । वह असल में पृथ्वी का फेफड़ा और हृदय है । क्या फेफड़े और हृदय का दृश्य बहुत सुन्दर होता है ? किसी भी अस्पताल में इनको देखकर मन घबराने लगता है, पर क्या यह सही नहीं है कि शरीर में रक्तसंचार और जीवन का अवदान इन्हीं की अनवरत अविधमित क्रिया के कारण होता रहता है ? चन्द्रमा प्रकृति द्वारा निर्मित ऐसा ही यंत्र है उसकी भयानकता से कापो मत डरो मत क्योंकि उसकी ऐसी गठन इसीलिए है कि तुम्हारे जीवन को अमृत देने में वह सक्षम हो सके । वह बरु है पर निरंतर शिवत्व से संयुक्त है, इसीलिए वरु है—

व दे भोघमय नित्य गुरु गकररूपिणम् ।

ममाश्रितो हि वक्षोपि चन्द्र सबन्ध वद्यते ॥

चन्द्र मादन

मन एक मदद मुश्किल और भवभूत रुझानों का बडल है। मैंने बार बार सोचा है कि चन्द्र प्रतिपदा के चाँद की अपेक्षा फागुनी राकेश को मैं पसन्द क्यों नहीं करता ? फागुनी पूनों का चाँद स्वामाविक रूप में ज्यादा मोहक, मादक और मनभावन लगना चाहिए। पर मुझे उसकी अपेक्षा चैत्र प्रतिपदा का यानी रंगोत्सव के बाद निकलने वाला चाँद हमेशा आकृष्ट करता है। मैं अपनी इस मुश्किल पसन्दगी के लिए खुद अपने को ही कोसता रहा हूँ। मैंने अपने से ही अपने मन को बार बार समझाया है। कुछ-कुछ इस तरह

यो तो वय भर मे बारह पूरे चाँद भाते हैं, पर फागुनी चाँद का नक्शा ही दूसरा होता है। पीड़ाएँ मोजरा की खुशबू, नीम और पाकड़ के नये-नये हरि धाम पत्ता की कोमलता, दिनभर की धूप में नाना रंगों के फूलों पर दीडती बौराई हवा की सुस्ताती हुई महकती साँसों में अपनी दूधिया चादनी घोलने वाले फागुनी चाँद का कोई मुकाबला नहीं। ऐसा न होता भला तो क्या धार्मिक श्रद्धिमानों को कुत्ते ने काटा था जो वे मधुमास के चाँद को देखते ही कठपुतली की तरह बड़े आँदाज में हाथ हिला हिलाकर मन्त्रोच्चार में मग्न हो जाते थे—
अथ चन्द्र सर्वेषां भूतानां मध्यस्य चन्द्रस्य सर्वाणि भूतानि मधु।

इस चन्द्रमा के मधु से भी उनका मन नहीं भरता था इसलिए तो एक और मधु की खोज सुरू हुई। स्वयंप्रकाश पान के हिमायती आय श्रद्धि मादक और नशीली वनस्पति की खोज में लग गए। उन्हें एक पौधा हाथ लग गया। उसकी पदावार मूल्यवान पवत (क्या बढियाँ सोचकर नाम दिया) के पादपेश में होती थी। भांडीनुमा इस पौधे की स्याह पत्तियाँ पीसकर, कपड़ उतार करके पी जाती थी। यह मूल्यवान पवत कश्मीर में था, आजकल कुछ नाम बदलकर दिन काट रहा होगा। सो साहब इस मादक पौधे के रस को भी नाम दिया गया 'सोम' यानी मधु का निम्कर चन्द्रमा। इस सोम का पान करते ही आय

गान गही, समझ का पुन होना । पर मं मान तब प्रमाणगत गेरा की तरह प्रगट है । मंगार के घोर घातार पुन चर म जमे मान को प्रग कर गने, घोर इमी को उगरी घाते मंगारिनिर्माण का समझ भी पुन ।

इमीका व चर का महार तो कहता ही क्या ? वह गरम निर के मंगार पर गिराजमान है । इगता बिम्बात्मक घण गंग करी हूण हाइनरिण विमर कहता है— यह घट्टेनुसारार धीन चरमा प्रथम मागादुमर का प्रतीक है । यह मृष्टि के सबग प्रथम घोर गवग मू म तरन मा का मूषर है । (मिष एण्ड मिषल्ला डा इन्डिया चार्स एण्ड गितिविगन, पृ २०५) यह चरमा हिंदू घोर मुगलगा दोर्ग ही मयी का पुत्राण है ।

उमी चरमा के भयानक रूप की चार्ने गुजर घात मा उगा है । पर जब मैं इन उगाकी की व्याख्या करता हूँ तब मगता है कि यह विगा निर मर है । समझ म चरमा गुजर ममान हरे मरे प्रगा काना जगदीन वह होता तभी उगा होते की बाव हाती ।

समपूर्ण पृथ्वी को समझ गोम मागता घोर जीरा देने का । वह का मगा ही होता पटगा जगा चरमा है । यह चर रग जीवत होता हरिवासा हाती जल होता जीवघारी होता तो चरमा का मपूषा रगासन उी के पोरा म रख हो जाता । चरमा महान् त्यागी भगिनी मरत चर है जो सूय स प्राप्त उण्य प्रतिगतिन को माग म मल्लकर उत नि गप भाव मे पृथ्वी को सौन देता है । वह स्वय जल रहा है उरर-गावट है बीभरत है भयानक है पुनर है नीरस है, पर वह इसलिए नि वह मगनी सारी सति किसी घोर यह कपोपन के लिए उत्सग कर देता है । वह समझ म पृथ्वी का पंगरा घोर हूय है । क्या फेफड़े घोर हृदय का हृष बहुत गुदर हाता है ? किमी भी अस्पताल म इनको देखकर मन पवराने मगा है पर क्या यह सही गही है कि शरीर म रक्तसधार घोर जीवन का मयान दही की मावरत मविममित त्रिया व कारण होता रहता है ? चरमा प्रकृति द्वारा निमित ऐसा ही मर है उसनी भयानकता स कापी मत करो मत, क्याकि उसकी ऐसी गठन इसीलिए है कि मुंहारे जीवन को ममृत देने म वह सदाय हो सके । वह मर है पर निरंतर सारत्व स सयुक्त है इसीलिए म यह है—

व दे बोधमय नित्य गुरु गाररुपिणम ।
ममाधितो हि मयोपि चर सयत्र वरते ॥

चन्द्र मादन

मन एक अदद मुश्किल और अव्वल रहमानो का बडल है। मने बार बार सोचा है कि चत्र प्रतिपदा के बाद की अपेक्षा फागुनी राकेस को मैं पसन्द क्यों नहीं करता ? फागुनी पूनो का बाद स्वाभाविक रूप से ज्यादा मोहक, मादक और मनभावन लगना चाहिए। पर मुझे उनकी अपेक्षा चैत्र प्रतिपदा का यानी रंगोत्सव के बाद निकलने वाला चाँद हमेशा आकृष्ट करता है। मैं अपनी इस मुश्किल पसन्दगी के लिए खुद अपने को ही कोसता रहा हूँ। मैंने अपने से ही अपने मन को बार बार समझाया है। कुछ-कुछ इस तरह

यो तो बप भर मे बारह पूरे बाद आत हैं, पर फागुनी चाँद का नक्का ही दूसरा होता है। पीढाए मोजरों की खुगबू नीम और पाकड़ के नये नये हरि दाम पत्ता की कोमलता, दिनभर की धूप मे नाना रंगों के फूलों पर दीडती बीरई हवा की मुस्ताती हुई महकती सासा मैं अपनी झुथिया चाँदनी धोलने वाले फागुनी बाद का कोई मुकाबला नहीं। ऐसा न होता भला तो क्या बन्कि ऋषिया को कुत्ते ने काटा था जो वे मधुमास के चाँद को देखते ही कठपुतली की तरह बधे अदाज मे हाथ हिला हिलाकर मन्त्रोच्चार मे भग्न हो जाते थे—‘अथ चद्र सर्वेषां भूतानां मध्वस्य चद्रस्य सर्वाणि भूतानि मधु।’

इस चद्रमा के मधु से भी उनका मन नहीं भरता था इसलिए तो एक और मधु की खोज शुरू हुई। स्वयंप्रकाश ज्ञान के हिमायती आय ऋषि मादक और नशीली वनस्पति की खोज में लग गए। उन्हें एक पीछा हाथ लग गया। उसकी पदावार मूल्यवान पवत (क्या बढ़िया सोचकर नाम दिया) के पाददेश में होती थी। माझीनुमा इस पीछे की स्याह पत्तियाँ पीसकर बपड छान करके पी जाती थीं। यह मूल्यवान पवत कश्मीर में था, आजकल कुछ नाम बदलकर दिन काट रहा होगा। सो साहब इस मादक पीछे के रस को भी नाम दिया गया सोम यानी मधु का निम्कर चद्रमा। इस सोम का पान करते ही आय

अपि भीतिर जगत से उठकर अध्यात्म के क्षेत्र में प्रवेश कर जाता था। वह प्रदष्टपूय रंग की त्रीडा, अथुत स्वरो के माधुय और अनिवचनीय परानन्द में तल्लीन होकर भूम भूमकर गाने लगता था— 'सोमोऽस्मान् ब्राह्मणानां राजा।' सोम हम ब्राह्मणों का राजा है। यहाँ राजा शब्द का प्रयोग ध्यार की वही इच्छा व्यक्त करता है जो बनारसी बोली का राजा।

यदूतरे कागीवासी नवके सोम राजा को भग मानकर अपने को प्रात दर्शी ऋषिया की कोटि में बिठाकर आत्ममुख साध करत हैं कि तु यह प्राय निश्चित सा हो गया है कि आयों का सोमरस भग की तरह सहज उपलब्ध पण्य नहीं था। आय ऋषि बड़ी सत्तानी तबीयत के होते थे, वे ऐसे सहज उपलब्ध पदार्थ के प्रति इतने भाव विभोर नहीं हो सकते कि उसे पवित्रतम गायों के बदन से खरीदें और ऊपर से सोमविक्रता की स्तुति में कविताएँ भी लिखें। गुनेरीजी ने इस सोम को पारसीक मंदिरा बताकर थोड़ी महँगी खरूर किया, पर आयों के हाथ से मधु बनाने और उसके सभी तरह के प्रयोगों की जानकारी छीनने की अराष्ट्रीय कोशिश भी की। मैं ऐसी गलती हर्जिज नहीं करना चाहता। छा योग्योपनिषद् में बड़े गव से कहा गया है नम स्तेनो जनपदे न बधयो न मद्यः —मतलब यह कि न सिर्फ आय मद्य को जानते थे बल्कि उसके अतिचार का रोकते थे। असल में सोम बड़ी दुर्लभ और बड़े प्राय्य वस्तु थी। इस जिस सत्तानी ऋषि ने काय और वसे प्राप्त किया, यह तो मादूम नहीं पर उसके भीतर एक आध्यात्मिक हिंसी का साहस और तबल खरूर विद्यमान था, इसमें सन्देह नहीं।

जब स अमरिका में 'साइकोड्रिक ड्रग्स' का अनुसंधान और प्रचार हुआ है हमारे ऋषिया की सोमनता से स्पर्धा करवा वाली कई वनस्पतियाँ का नाम लिए जान सग हैं। सभी ज्ञान में एक समाचार छपा है कि एक हिंसी नर्दाण अमरिका में एक एस पीथ का पत्र लगाया जिस उगाड़र सुरत ला दिया जाए तो एग अमृत परामर्शानिर्वाणा चढ़ता है कि जिन में तारे नजर आत सग हैं और पारलौकिक रंग का लगी बाढ़ उभरती है कि इग दुनिया की मारी बरगी इच्छाया रंगाना में डूब जाती है। दगी पीथ को मर्ति उताहन का कुछ मिनटा बाँट गाया जाए तो दमक विष से आत्मी मर सकता है।

मानवता और मृत्यु जुड़ी बटने हैं। हम गाय को घाय करि मयी भाँति जानत थे। मानवता जब तक अस्मिन्ध्र के मृत्यु सत्ता में नहीं जुन्ती मृत्यु के प्रभाव में बच नहीं सकती। गाय अमृत भी है और विष भी। पराभीतिर मन स्थिति में उठ मरत का विषम भाँति है यह विष बट अमृत है पर जो हिंस्रता की पूर्ति के लिए मरता उताहन करता जाता है उता विष

निश्चय ही यह यमद्वार है। इसीलिए ऋषियों ने बड़ी निममता से निखा कि यह पाथियों के लिए नहीं है—

‘सोम मयते पवित्रान यत सम्पिषत्योषधिम् ।

सोम य ब्रह्माणो विदुर्नतदश्नाति पार्थिव ॥’

तो क्या होली की रात का चंद्रमा या सोम पाथियों का सोम है ? मेरे ग्रामवासी बाबू फेरसिंह इसे ‘जालिम चांद’ कहा करते थे। वह यह सब अपार्थिव दंग से सोचकर नहीं कहते थे। जम के कुंवारे साठ साल के बुजुर्ग की यह आंतरिक पीड़ा मात्र थी जो बहुत ही दारुण लगती। होली की रात शक्न रात्रियों में दारुण रात्रि के नाम से जानी जाती है। बहुत से लोग तीन ही प्रसिद्ध रात्रियाँ को उपासना के योग्य मानते हैं पर दुर्गा सप्तमि की यह पक्ति या ही नहीं कही गई है

प्रकृतिस्त्व च सर्वस्य गुणत्रयविभाषिनी ।

कालरात्रिमहारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा ॥

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि इस प्रसिद्ध रात्रिसूक्त के रचयिता स्वयं प्रजापति ब्रह्मा हैं जिन्हें मधु और कैटभ से उत्पन्न भय के कारण परम सत्य का दंगन होने लगा था। रात्रिसे का इतना मुंदर नाम शायद ही कही आपने देखा हो। मधु माघव का सहोदर और विरपरिचित मादक तत्व है। कैटभ विद्वत् मादकता या मृत्यु का प्रतीक है। ये दोनों ही विष्णु से परात्पर पुरुष की निद्रा से उत्पन्न हुए। राहु और केतु मधु और कैटभ य सोमतत्त्व को विनष्ट करने वाली बलियाँ हैं। प्रजापति ब्रह्मा इसे भली भाँति जानते थे कि ये शक्तियाँ अपने चरम उत्कृष्ट पर दारुण रात्रि में प्राप्त होती हैं।

“इस सारे दशन और डेर-सी पहेलियों के बिना भी अपनी रुचि का इजहार किया जा सकता था। आप भ्रमागे हैं जो आपको होली का चान पसंद नहीं आता।’ ऐसा कहकर आप बनी आसानी से मेरी रुचि को लघी मार सकते हैं। मैं मानता हूँ कि मति की तरह रुचि भी मुण्ड मुण्डे भिना होती है। इसलिए मुझे बर्तन दीजिए कि मुझे होली का चाँद अच्छा नहीं लगता तो फिर होली के बाद वाली रात्रि का क्यों अच्छा लगता है। आपन कभी भण्डामुर का उपाख्यान पढ़ा है। उस भ्रमुर का नाम ही था भण्ड। यानी वह अपने धुग का समाजवाद था। ऐसा बहुरूपिया कि कब कौन गान बना लगा किसी को पता नहीं। सो पाठकगण, एक बार ऐसा हुआ कि इस भण्डामुर क प्रत्याचार से पृथ्वी विकम्पित हो गई। यह भण्डामुर भ्रमुर नहीं था। सन्तोसव, मन्तोसव या होली फाग का मुख्य देवता कामदेव ही था। गिव के तृतीय नेत्र से भस्मीभूत वह कपीन के पथ के वण को राग में चरन गया। गणेश ने उस भस्म को छूँकर सजीव कर दिया। उसने धीरे तपस्या करके गिव से साठ

हजार वष राज्य करने का करण प्राप्त किया। इन वर्षों में उमने जगत् को ऐसा भण्ड किया कि लोग चाहि चाहि करने लगे। इन्द्र की तपस्या से प्रमत्त होकर देवी ने सतिता रूप ग्रहण करके इस भण्ड का उद्धार किया। समययुक्त निर्वाण मदन भण्ड होता है। सतिता त्रिपुर सुन्दरी की कृपा से यह अनुपम मदन सात्त्विक मदन में बदल जाता है। शिव ने मदन को जनावर भण्ड बनाया, सतिता ने उसे मर्यादित करने का मन्त्र मदन में बदल दिया। अतः म होली की रात का पद्ममा मादक मदन के भण्ड कायों का प्रेरणास्रोत है। यह पचदशी का चोद है इसमें पोटपी सतिता त्रिपुर सुन्दरी का माधुय नहीं है।

दिन भर के गाली गलौज, सम्मिसन-समर्पण, भग-भाजा के बाद वसप होकर शरीर जब सुस्त हो जाता है, तब मन अचानक गहराई में डूब जाता है। उसी वक्त नीम और पाकड़ के ताबिए नये किससयों के बीच एक हल्का सिन्दूरी चाँद उगता नजर आता है मिन्दुरारुण विग्रह—जिसमें मादकता नहीं, माधुय होता है, उष्णता नहीं शैत्य होता है, भण्डता नहीं, सौन्दर्य होता है, इसीलिए यह असली अमृतपूत सोम होता है। मधु से बेहोश करने वाला सोम नहीं। यह काम से दग्ध सोम नहीं है। कामेश्वर सोम है क्योंकि वह पोटपी से अभिषिक्त और सिंचित होता है।

जयाशिलमुराराम्ये जय कामेनि कामदे ।

जय ब्रह्ममयी देवि ब्रह्मानन्द रसात्मिके ॥

हमारे ग्रामवासी बाबू फेरुसिंह का 'जातिम चाँद' यहाँ मात्र एक अजीब काव्यिक तन्त्रा में डूब जाता है। उस वक्त गोलक पर फागुनी गीत नहीं, चँता के टीस भरे स्वर उभरने लगते हैं —

रहि रहि अननिया चन्दा के निहारे

घड़ घड़ अँधरवा के छोर

पनिघट पविहरा पिउ पिउ पुकारे

विषया गल कवनी और निरमोहिया

छसकस गगरिया मोर

बनारस खो गया है

मुश्किल से शाम के सात बजे हैं। बृहरे का जाल पत्थर कोयले के धुएँ से घना होकर इमारतों पर सड़कों पर, पेड़ों पर और सड़क की बस्तियों पर मैल्म रिजम का काला चोगा फलाने लगा है। बगल से पी० ए० सी० की चीखती हुई ट्रक गुजर रही है। सरेसाम कुत्ते चिल्लाते हैं। स्यार हुप्पा-हुप्पा करते हैं। मरकटी कुतिया रिरियाती है। उसकी आवाज रेंघनी चिरपा की तरह गुरघाम कालोनी में छा जाती है। कपू का साठवा घटा अब सहानुभूति और दया की भावनाओं का कल करने लगा है। दोष जिसका हो, स्वाय चाहे किसी का सिद्ध हो, मरे होंठा पर सिफ नफरत और खीभ की शब्दावली उभरती है— स्साल बेवकूफ । सारे शहर को रातोंरात गभीर कर दिया। ऐसा मौन और शरीफ गहर में नही देखा।

यह भी कसा बकत है। गाँव गिराँव में भी इस कदर सत्ताटा नहीं होता। इस तरह की दरवा-बन्द जिन्दगी खुद में कितनी भार सगती है। हमारे जेहन और मिजाज सभी कुछ एकांत के विरोधी हैं। हम आदमी चाहिए, आदमी की भाँवा में ताकती भाँखें चाहिए। आत्मा को छूती आत्मा चाहिए। साँसों को छूती साँसें चाहिए। बहकहे से टकराते कहकहे चाहिए। अपनी बातों को काटनेवाली बातें चाहिए। कटकर धरागायी हात तर्कों को फिर से प्रजननी तर्कों से जूमते रहने की हरारत चाहिए। हमारे नित दिमाग और जिस्म में सिर्फ एक हसरत है जो कभी नहीं मरती। वह है अपने हमगाँव जानवर से, जिसे इंसान कहा जाता है मिलत रहने की सद्गुणियत।

यही सद्गुणियत, यही आकांक्षा अनादि वासना है। जो सृष्टि के आरम्भ से आदमी के साथ सभी है यह प्राकृतिक भ्रूण है। मनुष्य से मनुष्य का मिलन ही सर्वोप्युक्त द्वंद्व है। भाह कभी-कभी द्वंद्व का प्रभाव भी कितना बेचन करता है। स व नय तत्मावेकाकी रमते, स द्वितीयमनन्दत। वहाँ है वह द्वितीय वहाँ

है द्विवचना, बहुवचन । वरपू ने मारी जिन्दगी एकबार नपुंसक लिंग में व्यक्त की है । व्याकरण जिन्दगी का इतना सच्चा दस्तावेज ऐसा मौना पर ही बनता है । शायद वह अपने को प्रमाणित करने के लिए ऐसे ही क्षण का इंतजार करता है ।

इस एकवचन की तनहाई में ही शायद अपना 'होना' भी प्रमाणित होता है । कभी देना ने कहा था मैं तू कि सदेह करता हूँ, इसलिए तू । पर अब कहना होगा कि मैं तू कि तनहाई का बोध करता हूँ इसलिए हूँ ।

'मैं हूँ यह वरदान सहन क्या लगा गुंजने कानों में ।

मैं भी कहने लगा मैं रहूँ शाश्वत नभ के गानों में ॥

'मैं हूँ, 'मैं हूँ — यह कहना शायद कुछ भय नहीं रखता । यदि आपने करीब तीस आदिमियाँ की गोली जगने से तड़प-तड़पकर मरते नहीं देखा है, यदि आपने बच्चे की दवा के लिए जाते हुए आप की लाठियाँ से घायल करके पुलिस ट्रक में भुके जाते हुए नहीं देखा है यदि आपको भारतीय पुलिस के सदस्यवहार का रचनात्मक भी अनुभव नहीं है तो आप नि सदेह 'मैं हूँ, 'मैं हूँ', कहकर अपने को परितोषित रह सकते हैं । पर मुझे तो रह रहकर अलबयार बामू के भीरुता की याद आती है जिसने अंतिम घमोपदेश सुनानवाले पादरी का बालर पकड़कर भिक्कोड़ते हुए कहा— सभी इसी तरह मृत में मरने के लिए अभिप्राय है । उनकी भी बारी ऐसे ही आगामी । और इसमें क्या फर्क पड़ता है, तुम हत्या का अभियुक्त बनकर मरो या यह कि मैं अपनी माँ के अंतिम संस्कार के वक्त रोया नहीं । मरना एक तरह से अच्छा है क्योंकि इससे तनहाई से जुटकारा मिलता है । आप चाहें तो फिर दोषारोपण कर सीजिए कि मैं बामू कापका साथ की बातें प्यारा करता हूँ, किन्तु अपनी आत्मा से पूछिए कि क्या बनारस गोली कांड में जो मरे, वे आपसे कम निर्दोष थे ? फिर आप क्यों नहीं मरे ? इसलिए कि आकस्मिक या यह कि आप वहाँ नहीं थे । मरना कभी आकस्मिक नहीं होता । बचना हमें आकस्मिक होता है, इसे याद रखिए । जानें दीजिए ।

आज मकर संक्रांति है । काशी में इस वष मकर संक्रांति के अवसर पर कपपू लगा हुआ था (यह शब्दचित्र तभी लिखा गया था) । आज सूर्य दक्षिण मध्य से निकलकर उत्तर में पदार्पण करता है । आज के दिन वह सोम्यासन में प्रवेश करता है । उत्तर की लांघकर आकाशगंगा का दुग्धपान करनेवाली श्रावणा से मिलने के लिए व्यग्र हो उठता है । इसी मिलन से वह शक्ति पाता है । आज मरन-जीने की बात नहीं होना चाहिए ।

प्रतिवष मकर संक्रांति को मूष यही करता है, प्रतिवष इस मिलन का महोत्सव होता है । पर इस बार काशीवासियों के लिए यह एक अद्भुत बोध

का दिवस बन गया—मगर सत्रान्ति के अवसर पर ८ से १० बजे तक कपयू में छूट त्वाली के पटाखा की तरह इस ऐलान का खुगी की बिलवारियों से स्वागत होता है। गुरुवार के दिन आठ बजे से कागी की सड़कें फिर रौनक अफरोज हुई और एक बार पुन अलबेयर कामू की ही गब्दावली में अपने दिल की बात कहने की इजाजत दीजिए—‘मेरे लिए इस ‘दम किलोमीटर में से एक भी ऐगा नहीं है जो पूवस्मृतिया की उत्तेजना से भरा न हो। आह यह है वह बाग्यमी और हरा विशाल ऊँधता गहर—यहा प्रतिष्ठित है वह पुरातन स्थाणु देवता जिसे कमी कोई हिला नहीं सकता। जो अपने पुत्रों के लिए एकमात्र शरणस्थान है और मैं उही पुत्रा में एक हूँ।’ (रिटन दू तिप्सा) पर मैं कामू की तरह आरवस्न नहीं हूँ। क्योंकि जब कामू लौटा, तो तिप्सा में कपयू नहीं था। मेरे आगे-पीछे आदमियों का हुजूम चल रहा है। बच्चा को गोद लिए या कंधे पर बैठाए औरतें-मद, उमूल का तोड़कर सवारिया स अपने इस्तेमाल की आरजू करत रिक्शेवाले, सत्रानि का दान बटोरने के लिए सगभग दौड़ती-मी चीखती चिल्लाती डोमिनैं। पूरा शहर जैस इन दो घंटा में अपनी जिंदगी को कोई न कोई नाम देने के लिए कृतसकल्प है। उत्तरवाहिनी गंगा क तट पर स्थित सभी घाटों पर अस्ती नाले के सगम से लेकर वरुण-सगम तक भीड़ ही भीड़। मल, बच्चे औरतें। औरता की सट्या सबसे अधिक। मैं सोचता हूँ इन औरता के बारे में, तो मिर्जा गालिब की याद आनी है। होता रहा होगा वह तमा रही हागी वे नाजनीन जि हैं स्नान करते देख गान्निब का दिल्ली के कपयू से परीशान दिल सकून पा गया होगा। अपनी तनहाई का रोना गालिब ने कब नहीं रोया पर उनकी ये पकितया गायद बेमिसाल हैं—‘मैं इस तनहाई में मिफ नेतो के भरोसे जीता हूँ, पानी ज़िमका खत आया, मैंने जाना कि वह शक्स तगरीफ लाया।’ एसी ही तनहाई स माजूर मिर्जा ने बनारस के घाटों पर नहाती औरतो को देख लिया और उन्हें मालम अर्वाह (परलोक) नज़र आने लगा। वे माला के एक सी आठ मनका की सख्या के छन्दो का ‘चिराग-ए बर’ (मन्दिर का दीप) सिख गए—रसानद अज अदा-ए शुस्त मो-गूये। बहर मौजेनवेद क आयरुए।’ घाटों की रौनक और गंगा की तरंगें देखकर गालिब को लगा था कि तिल्ली को कागी से ईर्ष्या हो गई है और मुह में ऐसा पानी भरा कि वहाँ की नहर में बह रहा है—‘बनारस रा मगर दीदस्त दर रवाब। कि भी मदद न नह रश दरदहन आब।

पर मुझे आज घाटों पर दहशत और डर स घबराए चेहरे ही चेहरे नज़र आत है। बदन पानी के भीतर है और दिमाग हवाई हमले के सायरन पर कि वही वह कपयू में छूट के सात्मे का ऐलान न कर दे। अस्ती की सड़क पर साग-मन्जी, पान सुपारी, मुठ पट्टी और तिलकुट खरीदनेवाला की भीड़

इलाहाबाद के कुम्भ मेले की याद दिला रही है ।

‘जल्दी धोल भाई नहीं भवही सार भाइ जइहँ धौ दुइ गोभी डाल के टुक म भोज नइहँ ।’ दूकानदार एक सामान्य गन्दे कुचल इंसान से कहता है ।

‘तोन दिता स रिक्शा बन्द हो । पाँच रुपया बिलो गुठपट्टी खरीदल हमसे ना सपरो भइया । भाष सेर जोहरी व लावा तउल दे । सँभरानी हुइ जाई ।’ मैं चुपचाप भीड़ के पीछे गड़ा हू ।

‘मुझे उस गरीब रिक्शेवाले से बिचित्र भी हमदर्दी नहीं होती । मुझे बिलो से हमदर्दी नहीं है ।’ एक भये बवि कहते हैं—‘कही जाइए । ऐसा धक्कमधक्का ऐसी ठेलमठेल बि कय आपकी बगल से एक खोपड़ी उग भाएगी, कहना मुश्किल है । ऐसे मे ही साले मारे गए पचासा, मगर तमासा घूस के देखेंगे’ की भादत नहीं छूटी । जाओ साले मरो । करो धक्कमधक्का मचाओ ठेलमठेल ।’

पर मुझे सहानुभूति का बोध होता है । धीरे मन मे हमदर्दी जगती है । किसी और से नहीं सिफ अपने से । मुझे लगता है कि सड़कें सूनी और भादमजात से बिचित्र सिफ कुछ देर के लिए हुई थी । मुझे इस भीड़ से मुहबत है इसकी जिंदा सास बदन की गहलाती है । तनहा इंसान के गम को कम करने का यह खपाली पुलाव ही सही, पर इसका भी अपना स्वाद तो है ही । मुझे अचानक अपने नगर की जनता अच्छी लगने लगती है । मुझे गालिब अच्छे लगते हैं । रिक्शेवाले देवता प्रतीत होते हैं । दूकानदार घमराज प्रतीत होते हैं । कुजड़े फरिश्ते लगते हैं ।

मुझे उस ब्रह्मि ऋषि की याद आती है, जो भीड़ भड़कने से बचने के लिए, पड़पड़ इहैव गुहाघाम का उपदेश दे गए, अभिमान शाकुन्तल का शारद्वत याद आता है जिसे नगर का जीवन तेल लगाए हुए आवद्ध अपवित्र की तरह लगाया—‘अभ्यस्तमिध स्नात शुचिरशुचिमिध प्रबुद्ध इव सुप्तम । बद्धमिध स्वगतिजनमिह सुखसगिनवमि ।’ मुझे इन दोनों के प्रति बितृष्णा होती है । बिना सग का जीवन भी कोई जीवन है ? बिश्वास न हो तो गु बारा लिए बीडते बच्चों की टोली से पूछ लीजिए । आकाशवाणी इलाहाबाद से कल किसान भाइयों के लिए प्रोग्राम आ रहा था । समझाया गया कि कुम्भ मेले में इस साल बहुत अच्छा इतजाम है । बूझा बूझादिन मे ही फविए धूलसनी सही गली चीड़ें न खाइए और हैजे का टीका लगाए बगर मेले में न आइए । कोई खो जाए, तो उसकी सूचना भोपू पर दीजिए ।

यह सब कुछ समझाने के बाद चौधरी ने मिचल भाई से पूछा—‘कहो ददुमा, समझ लिहो न ?’

सिवप्र भाई इत्मीनान से बोले—‘खूब समझ लिहा हो भाय । हम जनि मलर म हेराउब तो मापू पर बोल देव कि हम इहाँ हिरान हैं ।’ पच लोप

धुप पर बाण चढ़ाकर शोध से प्रमत्त होकर भगिन विश्व
मनल्य करते हैं।

रामाण धनु सज्य निवसत पुन पुन ।

राम जगत सख युगाते पया हृम ॥

मानव की ग्लानि और निष्पन्न शोध की समर्पित मा
गी है। उह सामान्य-जन की तरह विलाप करते हुए बार-बार
ए देव सदमण परेगान होन हैं कि वान को भी रण सम्मुख
ग नैव पयुपागत यह कसो विदम्बना है। पर यही विदम्बना
य की सीढ़ी म बंधन योग्य गहजता ॥ जोड़ देती है। सीता
टट को मनुष्य म बन्ल दिया और उसी ने एक उत्तर भारतीय
श्रेष्ठ दानि । एक नये परिषयपथ निर्माण की प्रेरणा दी।

रण म प्राय अनुपस्थित भारत का वह नक्का यात्रा जाता है, जो
स्वरम् तब की धरती को जोड़ने वान पदचिह्न की छाप से
रामायणी के नि प्रत्येक धर म बनने वाले पदचिह्न समूचे रणो
गते हैं। तभी रामायण का धपनी समूची धपयत्ता के साथ उभ
। श्रीराम को नहीं, श्रीराम के भवन को उनकी पत्नी को, उनके
न को उभारना चाहता था। उनरवानी को दक्षिणवासी से
ना था। गंगोत्री के जल से राम-रम का अभिषेक करा चला था।
ज सेनम म श्रीराम की मूर्ति का धपमा हो रहा है उनका
प्रपमान हुआ है। लोग शुभ्य हैं कि दिग्वि देवताया का प्रपमान
सगता है कि किसी सच्चे ने धुन पर उभरे पदचिह्न पर धपने पैर
प्राप्त मे लाचार होकर पत्थर पर अति शीघ्र की मिटाने की
ी है। यह एक बचवानी हरकत है बम। इसमे इतना परेगान होना
। दुःख भगर होना है तो इसनिए नहीं कि श्रीराम अपमानित हुए,
निए कि इस कृत्य को अचविदवासा के विरुद्ध आक्रोश कहा गया है।
किम से? उत्तर से रनिण को जोड़नेवाले व प्रति? दो सस्मृतिया को
र करने के प्रति? भगर ऐसा है तो यह आक्रोश नहीं, आक्रोश का
है। अचविदवासा का विरोध विदवासा का मुछोटा सगावर नहीं होता।
त कृत्य व दूसरे गिनार कुमार वात्सिवेय हुए। वात्सिवेय यानी
अम, पटमुगम् स्वामीना वात्सिवेय दूसरे व्यक्ति हैं जिन्होंने उत्तर
रनिण को एक

वात्सिवेय का अर्थ

करना रहा है। किसी भी
के साथ है। वात्सिनाग
मानत है।

॥ के जन्म के प

॥ के जन्म के

विश्वास के मुखौटे

सेलम में देवी देवताओं की मूर्तियों के अपमान की घटना से बहुत से लोग धुंध हैं। बंगाल में राष्ट्रीय नेताओं की मूर्तियाँ भी तोड़ी गई, नकली बनाई गई, फुटसा और अपमान का विषय बनी, पर इसकी बहुत तीव्र प्रतिक्रिया नहीं हुई। कुछ भुनमुआहट ज़रूर सुनाई पड़ी पर भारतव्यापी धोम नहीं जनमा। मूर्तिभजन की स्पूस घटनाएँ भारतीय चित्त को हिला देती हैं।

सेलम में देव अपमान के कृत्य के गिकार श्रीराम और श्री कर्तिकेय बने। श्रीराम शुरू से ही मुझे काफी घातकित करते रहे हैं। यह इतने महान हैं कि हाथ वहाँ तक उठ नहीं पाता। इस अनाकपण का कारण वाल्मीकि रामायण की वह भूमिका है जो बड़े ही सपाट और मोड़े ढंग से चरित्रनायक की तलाश का अभियान उपस्थित करती है। सदगुणों की एक लम्बी तालिका बनाकर वाल्मीकि इस प्रतीक्षा में बैठे हैं कि कोई उठे ऐसे व्यक्ति का पता दे कि जहाँ ये सारे सदगुण एकत्र समुपस्थित हों। नारद उन्हें दाशरथी राम का परिचय देते हैं जिनके व्यक्तित्व में ये सभी गुण पुजीभूत हैं।

इस राम की नीरस आदगवादी विराट छाया के भीतर एक दूसरे राम जन्म लते हैं जो नारद के नहीं वाल्मीकि के राम हैं, जो मूल में मोक्ष भिन होने के कारण हल्की रेतार्यों में विव्रित हैं। आसोक रश्मियों का झूह कुछ सिमट गया है इसलिये वहाँ मनुष्य का परिचित चेहरा भनकने लगता है। कही-कही परिस्परियाँ जब उनमें जाती हैं कवि का आत्मों में घटका मन गिकार में दुनकर उपयसाधा की छोर धान लगता है उम वक्त झूठ रश्मियाँ प्रायः धूपलक में झलक आती हैं तब राम का चेहरा छोटो हो जाता है और वह करीब-करीब घोगन मनुष्य की ऊर्ध्वा पर त्रिक ज्ञान के कारण सट्टनम्य हो जाता है। हम राम की आँगा में आमाानी में भक्ति की सुविषा मित जाती हैं। मोना हरण के बाद विविष्ट श्रीराम एक छोटे आहूत योग्य की लम्बी नि "वागे

लेत हैं दूसरी ओर धनुष पर बाण चढ़ाकर क्रोध से प्रमत्त होकर अखिल विश्व को नष्ट कर देने का सक्त्प करते हैं ।

वीक्ष्यमाण धनुः सञ्च निश्चसत् पुनः पुनः ।

दग्धुकाम जगतः सर्व युगाते यथा हरम् ॥

उनकी यह सामान्य मानव की ग्लानि और निष्फल क्रोध की समन्वित मन स्थिति आकृष्ट करती है । उन्हें मामा-य-जन की तरह विलाप करते हुए बार-बार भाग्य को कोमते हुए देख लक्षण परेशान हान हैं कि काल को भी रण सम्मुख ललकारने वाला सदैव पर्युपासते यह कैसी विडम्बना है । पर यही विडम्बना श्रीराम को मनुष्य की बाह्य म बंधने योग्य सहजता से जोड़ देती है । सीता हरण न उम विराट को मनुष्य म बदन दिया और उसी ने एक उत्तर भारतीय राजकुमार को अभेद्य दम्पित १ एक नये परिचयपत्र निर्माण की प्रेरणा दी ।

मुझे रामायण म प्रायः अनुपस्थित भारत का वह नक्का यात्रा जाता है जो अयोध्या से रामेश्वरम तक की घरती को जोड़ने वाले पदचिह्न की छाप से प्रलङ्घित है । रामनवमी के दिन प्रत्येक घर मे बनने वाले पदचिह्न समूचे नक्षत्र पर जसे छा जात हैं । तभी रामायण शब्द अपनी समूची अर्थवत्ता के साथ उभरता है । कवि श्रीराम को नहीं श्रीराम के अर्थ को उनकी पद्धति को, उनके पैरों के निगानों को उभारना चाहता था । उत्तरकाशी को दक्षिणकाशी से जोड़ना चाहता था । गंगोत्री के जल से रामेश्वरम का अभिषेक करने वाला था ।

और आज सेलम म श्रीराम की मूर्ति का अपमान हो रहा है, उनका चप्पलों से अपमान हुआ है । लोग क्षुब्ध हैं कि हिंदू देवताओं का अपमान हुआ । मुझे लगता है कि किसी लड़के ने धूल पर उभरे पदचिह्नों पर अपने पर रगड़ने की आदत से साधारण होकर पत्थर पर अकिंचित् शीघ्रता को मिटाने की कोशिश की है । यह एक वचकानी हरकत है बम । इससे इतना परेशान होना बेकार है । दुःख भगर होता है तो इसलिए नहीं कि श्रीराम अपमानित हुए बल्कि इसलिए कि इस कृत्य को अंधविश्वासों के विरुद्ध आक्रोश कहा गया है । आक्रोश किस से ? उत्तर से दम्पित को जोड़नेवाले के प्रति ? दो सत्त्वितियों को एकाकार करने के प्रति ? अगर ऐसा है तो यह आक्रोश नहीं, आक्रोश का मुन्धोटा है । अंधविश्वास का विरोध विश्वास का मुन्धोटा लगाकर नहीं होता ।

इस कृत्य के दूसरे निवार कुमार कार्तिकेय हुए । कार्तिकेय यानी मुख्याण्णम, पडमुण्णम स्वामीनाथन । कार्तिकेय दूसरे व्यक्ति हैं जिन्होंने उत्तर और दम्पित को एक मूल म बांधने का महान काम किया था ।

कार्तिकेय का व्यक्तित्व मुझे हमेशा ही आकृष्ट करता रहा है । किसी भी देवता के जन्म के पीछे इतना रहस्य नहीं जैसा कार्तिकेय के साथ है । कार्तिकेय कुमार के जन्म को एक विचित्र माहित्यक संवेदना का स्रोत मानत हैं । शोध

शिव और नर्सिगुरु सौन्दर्य की अधिष्ठात्री पावती का मिलन एक समस्या है। इस असाध्य का साध्य बनाने में काम अनग होता है। देवता निराश होते हैं। तपस्या की अग्नि में सौन्दर्य की आहुतियाँ गिरती हैं। समूचे प्रत्यवायो की भीड़ पार करने में पावती हृदय विदारक अनुभूतियों के दौर से गुजरती हैं। उनके दुःख से बिन्नरिया रोती हैं पर्वत कुल्याएँ सिर घुनती हैं, शालवन छटपटाते हैं। सपने तपस्विनी को छलते हैं स्वयं शिव अग्नि में सोने की बार बार परखते हैं।

और तब आता है वह क्षण, प्राशुलभ्य तपस्या का फल—पर वह भी कितना व्यग्रात्मक और हृदयविदारक कि पञ्चराज पत्नी अपनी शरीर कोमल पुत्री का हाथ, जो जले हुए कामदेव की सत्ता के प्रथमोदित किसलयों की तरह लाल था इमशानसेवी शकर के हाथ में देते हुए रत्नानि से विदीर्ण हो जाती है। प्रज्वलित अग्नि के चतुर्दिग प्रदक्षिणा करते हुए वर-वधू का सौम्य कालिदास को सुमेरु की परिष्कृमा करते रात और दिन की माद दिताने लगता है—

प्रदक्षिणप्रक्रमणाः कृशानोरुर्वाचिपस्तमिषुन चकासे ।

मेरोरुपातेष्विव वतमानमयो यससक्तमहीस्त्रयामम ॥

कसी है यह अयोय ससक्त रात और दिन की प्रदक्षिणा, कसा है सुवर्ण की लपटों में दीप्त सुमेरु—जो बाद में नव दम्पति की कामक्रीड़ाओं की बेसर गध से क्षण-क्षण नवीन पुलका और रोमांच से अभिनर्तित होता रहता है।

इस महामिलन से उत्पन्न होने वाले कुमार के चतुर्दिग पुन रहस्य का पना जाल तन जाता है। अग्नि की दाहकता गंगा की गीतलता और कृतिकामो की पवित्रता के बीच घूमता पावती का गभ गिगु सरकण्डे के जगल में अनाथ फेंका हुआ मिलता है कसे क्यों? एक पुत्र को जन्म देने में छह कृतिकाएँ गंगा और पावती—ये आठ स्त्रियाँ और गिव तमा उर्हीं की प्रतिवृत्ति अग्नि में दो पुरुष। कसा विचित्र है यह जन्म, जहाँ एक साध अग्नि की दाहकता का द्विगुणित वेग कृतिकामों के रौद्र तपस से उन्मथित होकर गंगा की शीतलता से शान्त हो हिमालय का पावती में अवधान पाता है। इसीलिए सरकण्डे के जगल से पावण चन्द्र के समान सुन्दर गिगु कास्तिवैय को जब पावती उठाकर गोम सती हैं तब वात्सल्य रस की तरफों में अमृत की बाढ़ आ जाती है और स्तन्य मुधा से भर जाते हैं।

निसर्गवात्सल्यरसोद्यसिचता सात्रप्रमोदामतपूरपूर्ण ।

तमेवपुत्र जगदेकमानाम्पुस्तडिग्न प्रत्यविषी बभूव ॥

यह जगमाना के एवमेवार्द्धनीय पुत्र की अनोखी गाथा है। तारकागुर ने वष के त्रिण कुमार का जन्म हुआ था। आगुर गक्ति ने जन्म वन उजाड़ दिया था। अमरावती ध्वन हो गई थी। स्पष्टिक बं भवन आगुरा गजा के गीता की टपटप ग टूट गान था। सुनन्त कमल मृग गान था हग मन्त्रिनी छोड़कर

उड़ गए थे। इंद्र का वैजयन्त महल मकड़िया के जाला से भर गया था। देवता हतवीर्य होकर अपना स्थान छोड़कर भाग गए थे। कुमार ने आगुरी बल ध्वस्त करके पुनः दिव्यता प्रतिष्ठित की और शरणाधीन बन घूमते देवताओं को उनकी निवास भूमि वापस दिनाई। चारा ओर विजयाल्लास था। देवताओं के मुकुटों में गुथे मन्दार पुष्पा के मकरन्द से कुमार कार्तिकेय के चरण प्रमिश्रित हुए। मुरचूड़ा रत्नों से वे चरण जगमगा उठे। ततः किम।

कुमार कार्तिकेय पैलोक्यव्यापी इस अभ्ययना के बीच माता पिता को छोड़कर हिमालय छोड़कर उत्तर भारत छोड़कर गणेश जाने के लिए विवश हुए। जन्म के साथ उत्पन्न रहस्या न एक नया खेल रच दिया। इस घटना के बारे में कालिदास मोन हैं, पर नाना पुराण मुखर हैं। भारतीय कृति की यह प्रदम्भित दुःख-रूप मिश्रित घटना है, जो कभी भी भुलाई नहीं जा सकती।

गणेश और कार्तिकेय का भगडा वस्तुन प्राचीन भारत के संयुक्त परिवार के बुरे पक्ष का प्रतीक है। भगडा होना क बीच पहले किसका विवाह हो इस बात को लेकर दुष्मा। यह समस्या का सरलीकरण है। एक तुच्छ प्रश्न खड़ा करके समस्या प्राप्ति करने का बहाना मात्र है। शिव ने दोनों पुत्रों से कहा— पृथ्वी की परिश्रमा करके जो पहले लौट आए उसी का विवाह पहले होगा।

मनस्वी कार्तिकेय परिश्रमा करने चल पड़े। सुदिन गणेश ने माता पिता का परिश्रमा करके विजय प्राप्त कर ली। सिद्धि और श्रद्धा से उनका विवाह हो गया। माता पिता को ही परम सत्य मान लेने वाले को श्रद्धा सिद्धि मिली। कार्तिकेय भी ऐसा कर सकते थे। परम्परा को ही इदमित्यम मानकर वह भी सुविधाएँ पा सकते थे पर तब पृथ्वी उनकी पहचान की सीमा में नहीं आती। लम्बी कष्टसाध्य यात्रा को पूरा कर कार्तिकेय लौटे। उनके आने के पहले ही निणय हो चुका था। पुराणकर्म गणेश की बुद्धिमत्ता की प्रशंसा करते हैं पर प्राधुनिक चिन्त यह पक्षधरता सह्य नहीं करता। गणेश आज की उस भीड़ के प्रतीक बन जाते हैं जो विद्रोह और विरोध को नहीं, चापलूसी और स्तवन को प्रभीष्ट साधन का उपाय मानती है। विनायक परम्परा की परिश्रमा करने वाली सुविधाजीवी बुद्धिमत्ता के प्रतीक हैं तो कार्तिकेय अपनी आत्मशक्ति पर विश्वास करके कठिन संकठिन परीक्षा में अपने व्यक्तित्व को परम्परा की तत्परता रखने वाले निस्मकीच युवा तेवर के प्रतीक बन जाते हैं।

माता पिता की इस पक्षधरता और घृणाप्रियता के विरुद्ध उठाने आत्म निर्वागन स्वीकार किया और कैलाश छोड़कर त्रिपंचक (दक्षिण के श्री शाल) पर चले गए। पावती का हृदय अपने पुत्र के विपरीत से दुःखी हुआ। आग्रह करके शिव को साथ न वह पुत्र को मनाने चलीं। सुतदग्गन हेतुत गतस्तत्र महाप्रोत्था। श्रीगल पर शिवम्पति के पहुँचने के पहले ही कुमार ने वह स्थान

छोड़ दिया और वहाँ से और भी दक्षिण में बढ़ गए। पुत्र के नियोग से ग्लानि पूर्ण ग्राहत मानस लिए उमा महेश्वर वही ठिठके रह गए। मल्लिकार्जुन के रूप में वे आज तक वही बड़े प्रतीक्षा कर रहे हैं, पर कुमार दक्षिण से आने का नाम नहीं लेते। राम को माता पिता ने निर्वासन लिया कार्तिकेय खुद निर्वासित बने। और आज उही कार्तिकेय को जो दक्षिण को अपनाते वाले अद्वितीय देवता थे अपमानित किया जा रहा है। क्या दक्षिण से कार्तिकेय को हटाया जा सकता है? कर्णाटक का सुब्रह्मण्य क्षेत्र, शिवकाची का सुब्रह्मण्य मन्दिर, कुम्भकोणम के पास का स्वामिभसे तिरुच्चेदुर (तिनेवेली) का स्वामिकार्तिक मन्दिर क्याकुमारी के माय में स्थित नागरकोइल के पास का कुमारकोइल पुकार पुनारकर पूछते हैं— कार्तिकेय क्या उत्तर भारत लौट जाए? जो काय उस युवा निर्वासित से उमड़े माता पिता नहीं करा सके, उसे सेलम के 'क्रांतिकारी' कराने के लिए आतुर हैं। जो होना हो, हो पर यह सब अंध विश्वास तोड़ने के नाम पर न हो। यहाँ अंधविश्वास नहीं, सेतुभग किया जा रहा है जो दक्षिण और उत्तर को मिलाता है। असल में सेलम के तथाकथित विद्रोही, राजनीतिक शोदावली में कहा जाए तो ये हमारी सांस्कृतिक एकता के अन्त घुसी (सबेटस) हैं जो समुचित क्षेत्रीयता और कूपमण्डूकता को प्राधुनिकता और प्राक्रोश के फलमफे से ढक रहे हैं। ये लोग चिराग्नि रुन्निवादिता को छिपाने के लिए विश्वास का मुन्नीटा लगाकर अंधविश्वास तोड़ने के झूठे नारे लगा रहे हैं। उनकी यह बचवानी हरकत देखकर बरबस नारदमोह का दृश्य याद आता है। राम और कार्तिकेय के प्रति निवेदित जनमानस की श्रद्धा का स्वयं वरण करने के इच्छुक ऐसे ही व्यक्तियों को तुलसी ने कुपथ की माँग करने वाले व्याकुल रोगी की तरह कहा था।

मुझे आज रह रहकर सकर कुरूप की ये वक्तियाँ याद आती हैं—

मेरी कामना है कि

धार्मिक सौम्यता

बनी रहे मानव की आत्मा का प्रतिबिम्ब

क्या उसे भी भेज दिया जाएगा

निष्ठुरता के साथ बनवास में

और कार्य हो जाएगा गोजात

कोपले के मुल की कलौस में ?

मुझे पूरा विश्वास है कि दक्षिण का अपनात वात, धार्मिक सौम्यता के ये प्रतीक पुन निर्वासित नहीं होंगे दुबारा बनवास नहीं होगा। श्रोत्रपुत्र में प्रतिध्वनि उठती है— इन्तिन निमानमाम भन्मावनशनाम्—यह भन्माव अपकार की आज है प्रकाश इस महन नहा करण। तथास्तु।

राह-ए-गुजर याद आया

प्रिय दिनेश भाई,

आपकी चिट्ठी अभी मिली। पहले वालिया पहुँची नहीं। आपन ठीक ही लिखा है कि मुझे दिल का रोग नहीं वहम है, पर सच कहना है यद्यपि अभी अभी यह वहम बहुत राहत देता है। जब भी अव्यवार उठाता हूँ, वहम ज़िंदा होने लगता है। आखिर इस लावारिस कारवा का, जिसे लोग हिंदुस्तान कहते हैं कोई मकसद भी है या सिर्फ राहें गुजर की याद ही। मैं इधर एक किताब देख रहा था। सन '३५ में श्री अरविन्द से उनसे एक गिफ्ट न पूछा कि क्या बंगाल में साम्प्रदायिक दंगे बहसतूर चलते रहेंगे? श्री अरविन्द मौन रहे। शिष्य ने फिर पूछा—'शायद स्वतंत्रता के बाद ऐसी चीजें नहीं होंगी। पर क्या स्वतंत्रता मिलेगी?' श्री अरविन्द ने कहा— स्वतंत्रता तो मिल ही जाएगी वह तो हाँ चुकी है पर सवाल है कि हिंदुस्तान स्वतंत्रता लेकर करेगा क्या? गायद गुडाराज बोलनेबिरम या ऐसा ही कुछ खतरनाक।" और वे चुप हो गए। मैं साबता हूँ कि यह सब जो उन्होंने कहा गलत होता। काग के बाँटें इतनी सच न होती? यह सब कुछ अपने आधुनिक तकपूर्ण तथ्यात्मक जेहन को हिला देता है। मन इन रहस्यवादियों, योगियों में विद्वान्त त करने के लिए चौक तत्पर रहना है तभी किसी पुराने रेकार्ड से कुछ ऐसा भावने लगता है कि दिल को ठेस लगती है। सारा मस्तिष्क चक्कर खाने लगता है। गिफ्ट यदा ज़िंदगी था, उसने फिर पूछा— 'क्या अपनी गिफ्ट गति का कुछ भाग बंगाल के लिए नहीं देंगे?' श्री अरविन्द ने कहा— मुझे सन्देह है कि बंगाल उसे लाना चाहेगा।"

बंगाल में विवेकानन्द खोद आधुनिक गांधी आदि की मूर्तियाँ चित्रों के साथ जो हो रहा है उससे परेगान होकर कुछ लोग मनगन कर रहे हैं। कुछ लोग सोचसमा में गार गरावा मचा रहे हैं—मुझे जान क्या सब समाचार

पन्वर सुनी होती है। क्या बड़े बाप के आलापन में उठने जितना पुण्यापनो प्रादि को रही म गही येच देत ? यदि यही गाय कुछ साग हमारे लिए गुप्त व-सुद किए दे रहे हैं तो दससे सुख होना चाहिए। परेगानी की क्या बात इगम भला। जिन लोगो के कहे पर हमारा विश्वास नहीं रहा, जिनकी बातो को हम काबिल लोग पैरो की येडियाँ माते हैं या अगर बहुत थड़ा हुई तो जलसा के अवसर पर इन चित्रो को स्टेज पर, दूम पर लटकार इनकी घाड म हिन्दु स्तानी जनता की धोवा म धूल भागने की बगैरत हरकतें करते हैं उनके चित्र यदि हटा दिए जाते हैं तो मैं समझता हूँ, यह एक अच्छा काम हो रहा है। इसे और तेजी के साथ होना चाहिए। कम से-कम हम देन के भाग्य विधाता अपने नामाकूल गले म माला डलवाने के लिए इन चित्रा की गरण तो नहीं ल पायेंगे।

सुना, देश के एक अच्छे म्यूजियम स बहुत से चित्रा की चोरी हो गई। एक पत्रिका म खाली टूटी हुई मेंमो स डकी गलरी की दीवाल का फोटो छपा। और मुझे अचानक मिल के रोग का महम होने लगा। बड़ी सुनसान कालम्बरी की बिगतोरसवा नगरी' की तरह उन्मग गलरी को देखकर बचोटने वाला दद पदा हो गया। अभी अभी दीवालें सजी थी अभी अभी खाली हैं। कितना सनाटा है। आज से तेईस साल पहले इसी पन्द्रह अगस्त के दिन लाल बिले पर राष्ट्रध्वज फहराते हुए नेहरू ने कहा था — 'सत्रियो बाद हि दुस्तान जगा है। पर लगता है वह सब भूटा था। तेईस सान से हम लगातार सो रहे हैं। जगता तो बिलबुल बेमानी है। हम ठीक से सोये भी नहीं हैं। सोने म कम से कम अच्छी बुरी कसी भी हरकत का अभाव रहता है। परेगानी से बचे रहते हैं। हम तो तेईस बष से सिफ दु स्वप्न देख रहे हैं। दु स्वप्नो की एक लम्बी कतार। एक मरियल गाय। मात्र अस्थिपजरावच्छिद जो नि शकत होकर अपने ही गोबर मे धँस गई है। उसे हल्ला मचाकर उठाया गया हो जसे। पेट के नीचे बास लगाकर ताने हुए हैं कि खड़ी लगे। उसी की सीगा पर कभी तिरगा फहराता है कभी भगवा कभी लाल हसिया हथौटा। उसी पर वास्टर लगाए जाते है। कभी देश बचाओ अंग्रेजी हटाओ कभी हिन्दुत्व की रक्षा करो कभी गोपण से मजदूरो को मुक्ति दिलाओ और अब उसी पर बन्दूक की नली से क्राति के पोस्टर लटकाए जा रहे हैं तो कौनसी आफत आ गई। मरने मारने को हुई यह बेचारी गाय जाने क्या सोचती होगी। मुझे तो सिफ एक ही दृश्य याद आता है। यह सारा हल्ला गुल्ला इण्णकेट सिण्डीकट, लाल सलाम जमीन हथियाओ की आवाजा से घबराई और बम और पटाखा से डरी हुई यह गाय सिफ गोबर किए जा रही है। और नेताओ के बास पर या कहिए दूम पर लटकी अन्तिम घडिया का इतजार कर रहा है। हम खुश है कि हरी जाति

हो रही है। हम खुश हैं कि भिवारी वृत्ति से पिण्ड छूट रहा है, इस देश की भावानी कम करने के लिए एक विज्ञापन छपता है। सिर्फ पाँच पैसे में अपने छोटे परिवार को छोटा कर सकते हैं। 'निरोध'। सिर्फ पाच पैसे में सारे हिंदुस्तान में अपने तन मन को छोटा कर ही लिया। वृद्धि का निरोध तो मदभुत दग का है। विचारों की ऐसी फेमिली प्लानिंग दुनिया में शायद ही कही गिजे। पाश्चात्य कूड़े-कचरे में सड़ाघ और दलदल में, अथवा क्रांति की विराट गुफादारी में हमारा बोद्धिक बुद्धि पर निरोध चढ़ाए लगातार उठा बैठकी कर रहा है दड पेल रहा है, मगर क्या मजाल कि कहीं से कोई नई और सचमुच की कारगर चीज उत्पन्न हो जाय। कितना जबदस्त है यह नियोजन। कितना धौंक और निष्प्रयोजन है यह प्रयोजन।

११ भगस्त एक जाली सिक्का है जिसे हर हिंदुस्तानी किसी-न किसी को बुद्ध बनाकर चालू कर देना चाहता है। आप चाहते हैं कि मैं आपका विशेषांक में इसे चालू करूँ? मैं चाहता हूँ कि मैं अपनी लेखनी पर निरोध चढ़ा लूँ। क्योंकि आपका विशेषांक और मेरी रचना इस मरियल गाथ के गोबर में हमेशा हमेशा के लिए गुम हो जाने के प्रतिरिक्क कोई विकल्प नहीं रखते। पन्द्रह भगस्त पहली बार भाया तो क्या जलवा था, कैंसी सजावट थी, कैंसी आराइश थी राहनाई थी, भतिसबाजी थी जैसे राम का विवाह हो, पिछले बार्स साल से हिंदुस्तान बनवास में है। तुलसीदास कहते हैं—'प्रसन्नता या न गताभिपेक्ष तस्तया न मम्ले बनवास दुःखत।' अपने लोग में ऐसी ताकत नहीं कि मुह को उगास और मलिन होने से बचा सकें। स्थितिप्रवृत्ता किसी जमाने में योगी का मगन रही होगी आज हर हिंदुस्तानी स्थितप्रवृत्त हो गया है। उस हार जीत, सुख-दुःख मान अपमान, हानि-लाभ, जीवन-मरण में कोई अंतर ही नहीं मालूम होता ऐम में आप सम्पादक से मेरी एक अपील है कि मेहरबानी करके आप लोग पन्द्रह भगस्त की या हमारी स्वतंत्रता की याद न दिलाया करें —

जिंदगी यों भी तो गुजर ही जाती

क्यों तेरा राहें गुजर याद भाया।

मदन काशी

कहते हैं कि एक बार जब श्रवणकुमार अपने माँ बाप की बहगी उठाए सबल तीस यात्रा पर जा रहे थे तब वह जमानियाँ पहुँचे । उन्होंने वस्त्रों के पास एक घनी घमराई देखकर बहगी उतार दी । बचारे गर्मी से परेशान बड़े घराए वहाँ पहुँचे थे । आँगनकुज की शीतल छाया में उन्होंने राहत की साँस ली । गंगाजल पीकर स्वस्थ हुए । माँ बाप की बेटे से पूरी सहानुभूति थी । उन्होंने उन्हें अच्छी तरह सुस्ता लेने का मौका दिया ।

‘ऐ बूढ़े ऐ बूढ़ी !’

श्रवणकुमार ने कहा— मैं तुम लोगों का ताबूत ढोते रहने के लिए नहीं जन्मा हूँ ।’

सम्बोधन मात्र से ही अघा अघी भौंक्क थे । आगे की बात सुनकर तो उन्हें सबका ही मार गया हो जैसे । दोना साँस रोके लड़के की बात पर बान झड़ाए बैठे रहे ।

मारा कि जीवन चौपट करके रग लिया । काँवड दाते-ढोते बंधा पर घटते पड़ गए । जो होना था हो चुका । बड़ी भक्ति निवाही । अब यह भार भुझने चलने का नहीं । बाज आया ऐम सुपूत के बिनाब स । यह गुस्त म पर पटकने घमराई स बाहर की ओर चले । जाते हुए लड़क के परा की घमरा सुनकर अघे न कहा— बटा । तुमने जो कुछ कहा वह बिसकुस ठोक है । भग जाने-जाते एक किन्ती मुनना जा ।

श्रवणकुमार ने पाम आकर पूछा— क्या है ?

बात यह है कि घमराई घना है । हमम म निनलने का हम रास्ता भी नहीं बूढ़ पाएँगे । अब काँवड उठाकर चोनी दूर भाग डीव सहर पर रग देना । हम वहीं किमी राग्गीर म पूछ-माछर रास्ता पा लेंगे । भाग तमी प्रभु की मर्जी ।

श्रवणकुमार को यह विनती बतई पसन्द नहीं आई, पर 'स्वभावो हि प्रतिरिच्यते'—सो उन्होंने पुराने घट्टे पर फिर बहेंगी रख ली और बस्ते को पार करके कुछ दूर सड़क पर आ गए।

'बस बैठ, बस, यही रख दे हमें।' बूढ़ा बोला। उसकी आवाज में न दहशत थी, न निराशा।

श्रवणकुमार ने बहेंगी उतार दी और फूट फूटकर रोने लगे। उनकी हिचकियों का ताँता टूटता ही न था। अचे की आँखों से भी आसू गिर रहे थे।

"पिताजी" श्रवणकुमार बोले— 'मैं कितना अधम हूँ। पता नहीं कैसे मेरे मुँह से बसी बातें निकल गई। आप मुझे क्षमा कर दें पिताजी।' बूढ़े ने मुसकराते हुए कहा— 'बेटे, इसमें तेरी कोई गलती नहीं है। दोष जमीन का है।'।

जमीन का ?'

'हाँ बेट, तूने जिस अमराई में काँवड़ उतारी थी वह भातहुन्ता परगुराम का स्थल है। वहीं उन्होंने परगु से अपनी मा की गदन उतार दी थी।

श्रवणकुमार आत्मग्लानि से मुक्त हो गए।

मगर हजार हजार श्रवणकुमार जा इस अवसल में बसते हैं, चाहकर भी जमीन के दाप से मुक्ति नहीं पा सकते। वे कावड़ उतार दें तो भी चढ़ाए धूमत रहें तो भी जमीन अपनी अन्तर्निहित विरोधता से उन्हें लाछित करने में कभी नहीं चूकती।

आपको गायद मालूम नहीं जमनिया की मन्न काशी भी कहत हैं। तेरहवीं शती के एक जन काव्य में काशी से पूव में बीस कोस की दूरी पर अवस्थित मदन काशी की चर्चा की गई है। यहाँ भी गंगा की धारा उत्तर बाहिनी है। कहत हैं कि बटसर के चक्रवन में पढ़कर कोई बच नहीं पाता। मुझे मालूम नहीं कि वत्तुल लहरी का ऐसा जाल गंगा या किमी भी नदी में कहीं पता है पर मैंने अकमर बरसान के दिना में बटसर के स्तंभ में सड़ी हुई लांगों को चक्र की तरह गोलाई में घूमने दखा है। वह वही स्थान है जहाँ से गंगा उत्तरबाहिनी होनी है वह वही स्थान है जहाँ की बाह तेन के लिए गाजीपुर के कलकटर ने बहुत कोणिग की पर अमपत्र हुए। हमारे ग्राम के पुरोहित चक्रवन या चक्कावन की कोई और ही व्युत्पत्ति बताते थे। मगीरय के रथ के पीछे-पीछे गंगा चल रही थी। अचानक रथ यहां धाकर रुक गया था। सारथी ने घोड़ा पर बावुका की बीछार की पर घोड़े अड गए। घोड़े धात्री में उपादा विकसित स्वयंप्रकाश जान रखत हैं। वे जानते थे कि प्रागे महर्षि जमदग्नि का आश्रम है। जमदग्नि का यानी जमनिया। गंगा आश्रम हुआ

‘पर इसम से कहीं बाहर जाकर नौकरी चाकरी करने बूढ़े बूढ़ियों की सहायता के लिए अकाल की जयन्ती पर बलदार भेजने वाले ग्ग भी नहीं।

समापति निराश हो चले। उन्हें लगता है कि जमीन बग़ल हो रही है। न तो ये छाकरे बाँवड़ पटक पा रहे हैं न ढो ही पा रहे हैं।

मेरी कपसिया चाची सारे गाव में ‘चकचालन’ यानी चक्र या चक्कर लगाने वाली के शाश्वत विताव से विभूषित है। जाने कितनी इसाइक्लोपीडिया उनके दिमाग में परत दर-परत गड़ी पड़ी है। कुछ आखा देखी, ढेर सारी बानो सुनी।

“चाची, ठीक ठाक है न ?”

“ठीक का है बचवा, ‘मुझा सुराज क्या हुआ खाने के लाले पड़ गए।’” मैं चाची को इंदिरा-समाजवाद पर भाषण दू या डंगि, नम्बुद्रीपाद पर, कोई असर नहीं होने का। क्योंकि उनके चेहरे पर कुछ इस तरह की अनजानी झुर्रियों का ताना-बाना खिंचा है जो दुखों की इतहा से उत्पन्न उदासीनता के तागे से बना है, इसे भेदकर सातवें फाटक की लड़ाई लड़ने का साहस मुझ जस बौद्धिक में नहीं आ सकता जो सुविधापसंद जिंदगी से समझौता करने जबानी जमाखच की मुद्रा में इनका हाल चाल जानता चाहता है। आप गलियाँ में घुसिए—घुम नहीं पाएँगे क्योंकि वे गरकानूनी ढग से मकाना के भीतर या दीवारों के बगल के पुस्तक में ले ली गई हैं। आप घरों में घुसने की कोशिश कीजिए, असफल होंगे क्योंकि हर दरवाजे और निकसार पर ढेर सारी मक्खियाँ से छूल छूलया खेलते अपरम्पार मरियल छोरा की भीड़ चौकठ पर ही बैठी मिलेगी, इन्हें हमारी जगह कोई सूखी जमीन खेलन बैठने के लिए नसीब ही नहीं होती। आप नई पोनी के दिल में घुसने की कोशिश कीजिए, असफल होंगे क्योंकि वहाँ केवल गिगाहीन बक्क-बक्के मुहासे व अलावा कुछ है ही नहीं। आप बुजुर्गों के दिमाग में घुसने की कोशिश कीजिए, असफल होंगे क्योंकि उनका दिमाग इस तरह ठस है कि उसमें सिर्फ एक चीज बगमबग भरी है—

हुह ई पड़वैया लोग खासी गप्प मारत हैं। मैं सोचता हूँ कि क्या ये गलियाँ, य धर ये दिल, ये दिमाग कभी खुलेंगे भी ? कभी इनमें मादन या प्र सचमुच उतरेगा ?

सुना, पटेल प्रायोग ने पूर्वांचल के विकास के लिए एक लम्बी चौड़ी रपट तैयार की। बड़ी कसरत लठक-बठक ऊँक-नाटक के बाद रपट सरकार के हवाले की गई कि यह नितांत व्यावहारिक और कम खर्च वाली योजना है, पर कुतुहलीनार हो या मेरुस्तम्भ उसमें इतनी मजिलें हैं कि रिपोर्ट का बुजों तक बढ़ पाना और वहाँ से उतरकर कपसिया चाची की झुर्रियों के सामने खुल पाना कतई सम्भव नहीं लगता। त्रिभुवननारायण सिंह और कमलापति

गिपाटी या दूरी तरह के दूगरे सामान का द्रव्य बना लोग । उ, गिर जना
की गरीबी और हाथपोका म पनकर बिगामी गराव करती ता है । वहीं । बड़े
बड़े नाम हैं, बिजनी उसकी हुई समस्याएँ हैं । फिर कुर्मी की हस्तगत मे भी वे
प्राची तरह बाकि है इसलिये वे उग कुर्मी को स्मिर गही रग । म रपा
प्या दें तो दग मागूमी बड़ई भी नमधननी नभी न बह पाणा । हमारी
बापकी तो यिसा हो गया ।

उस दिन जमानिया के सातपरेम पर गिरा के एक तामी-गरामी धाम्मी
मिल गए । बोले— बेटा, यह इसका तो सब धान-जाने सापस भी नहीं रहा ।
बाल-बच्चों को लेकर नभी धाना हो तो रात म गांव के लिए न चल पटना ।'

हमने मागूमिया से पूछा— 'बाहे बाबा !'

'धरे मइया, कल रात डेढ़गाँवा के दो जो बहो रिदागरी म नेवना
लकर जा रहे थे । यह तलासपुर की छाड़त है न ?'

मेरे सामने तलासपुर की छाड़त राखी हो गई । मेरा अचल बन्धीर नहीं
है बरल नहीं है, और तो और मिर्जापुर और चुनार भी नहीं है पर तलासपुर
की छाड़त पता नहीं क्या मुझे बेतरह सीकनी है । किसी जमाने म यह गल्ल
का बिनाल गाँव मी । जमानिया की गल्लामण्नी का पलंग पोस्ट कह
लीजिए । उन दिन गल्लाम्यापारिया को इसना मी सत्र नहीं था कि वे दहान
से लरीदा गल्लाम्या एक मील दूर स्टेशन की मण्डी म रथ धाएँ । रतेंगे, से जाएंगे
यहाँ पर पहले गल्लाम्या उठा तो लें । मनाज न बोरा स लदी बसगाडियाँ, बर
माती पानी सेबचने के लिए निरपाल या सरपत की छाजन । स डेकी लददू टटदुभा
की कतारें, घटी टुनटुनात लदू बल—सभी इस छाड़त के सामने छावर हटठे
हो जाते । गोदाम के नमरे ध्यापारिया को मनाज रखने के लिए किराय पर
उठा दिए जाते । सुबह से दूसरी सुबह तक सिफ एक काम—मनाज उतारना
और गोदाम म पहुँचाना । रात के घुघलके में गाडीवानों के जलते हुए चूल्हे या
महरे सिक्की हुई बाटिया की महक, ध्यापारी, मुनीम और गाडीवानों की
तकमक—क्या रीनक थी । उस वक्त छाड़त के धाँगन म पारिजात के दा पेड
थे । वे फूलते सब थे जब मनाज गाडिया की भीड शुरू न होती थी । हम लोग
पक्के धानो के बीच से सुगापखी खेतों की मेडों से गुजरते हुए इस छाड़त से
पारिजात के फूल बटोरने के लिए वहाँ पहुँच जाते ।

अब वहा सिफ खण्डहर है । आसपास के किसी गाँव के छोटे स बनिये ने
राहगीरों के लिए गुडपट्टी रेकडी-लकठे की छोटी सी दूकान खोल ली है एक
खण्डहर की दीवार पर फूस की मडई डालकर ।

तो बेटा उस रात हल्की बारिश होने लगी । वे दोनों जन उमी मडई म
घुस आए । तुम जानते ही हो रात को बनिया वहाँ रहता नहीं । सारा सामान

बटोरकर गांव चला जाता है।”

हां काका !” मैं कहता हूँ, पर स्मृति में पारिजात के ललछोंटे ढण्ठल वाले नाजूक फूल बहते उतराते चले जा रहे हैं।

बस एक आदमी ने सड़क से उन पर टाच से रोशनी फेंकी। उसका चेहरा गमछे से ढँसा था। बगल से वैसे ही दो और नकाबपोश निकले। सभी के हाथों में भाले थे। उन लोगों ने सामान छीनने की कोशिश की। एक से हाथापाई शुरू हुई, तब तक दूसरे ने पीठ में भाला मारा। और सामान लेकर चले बने। मुश्किल से आठ आठ रुपया की दो साड़िया, पांचके बें मिठाई-खाजे—यही न? इत्तेभर के लिए यह सब हो गया। राह चलना मुश्किल है वेना। अब जमनियाँ वह जमनियाँ नहीं रहा। जिम किसी को देखो कि थोड़ा नटवर है बदन पर घुशट और पतलून है बिना कहे जान लो कि उसके पास पिस्तौल है या बिजली का हण्टर है या और कुछ नहीं तो रामपुरी चाकू है। सारा इलाके का इलाका मुण्डा की ज़मींदारी हो गया।”

गाड़ी आ गई थी। वे चले गए। मैं सोचता रहा कि क्या सचमुच इस घरती में ही दोष है? पर नबमलवाड़ी में तो परशुराम नहीं हुए। मुशहरी में कोई ऐतिहासिक भ्रमराई नहीं है। श्रीकाकुलम बहुत दूर है भगुक्षेत्र से—फिर, फिर, इस क्या कहा जाए? आखिर दोष किसमें है?

कोई मेरे बाना में भुनभुनाता है—‘तुम भी अच्छी की तरह घरती को दोपी कहकर मौन हो जाओ। इसी में लाभ है। इसी में खैरियत है। क्योंकि भ्रष्ट व्यवस्था में कभी भी आदमी दोपी नहीं होता निर्जीव पदार्थों के सिर दोष मढ़कर अपना सिर बचाना ही बुद्धिमानी है, राजनीति है सफलता की कुजी है।’

थाक-थाक तोमार घोड़ागाड़ी आमरा हँटे इ जाबो

बगला देग म चलनेवाने स्वाधीनता-सपप म हँसते-हँसते मरनवाने लोग
 के बारे मे मैं जब भी कोई बयान पढ़ना हू मुझे खि बाबू का गीत याद आने
 लगता है—

कौन जानने जानिने फूल
 गंधे एत करे आकुल
 कौन गगने उठे रे चांद
 एमन हासि हेते
 ओ माँ आँखि मेलि तोमा आलो
 देखे आमार घोख जुडासो
 ए आलोक नयन रेखे
 मुखो नयन शोखे
 सायक जनम आमार
 ज मेछि ए देशे

नही जानता कि किसी और जानन मे ऐसे फूल होते है जिनकी गंध प्राणो को
 ऐसा आकुल कर सकती है। मुझे नही मालूम कि किसी और गगन म ऐसा
 चान होता है जो इस तरह झिलझिलाकर हसता है। हे माँ तुम्हारे इस आलोक
 को देखकर मेरे नयन जुड़ाते हैं। इसी आलोक को आँखो मे लिए नयन बन्द
 कर लू मही कामना है। मैं ऐसे देश म जमा कि जीवन सायक हो गया।

लाखा लाख यकिनया का यह जोश न तो गहारी है न देशद्रोह। इहे
 राज्य और शासन की मर्यादा का टोल पीटकर दबाया नहीं जा सकता।
 शासन उम यवन शैतान बन जाता है जब वह जनता की इच्छाओ को, जीने
 और जीते रहने की मामूली स्वाहिशा को सगोना की नोक पर उछालने की
 कोशिश करता है और आदमी ने मामूली सपनों को अपने गद्दे बूटो से कुचल

देने की वहनियाना हरबन करता है। ऐसे शासन को सानत है। पाकिस्तानी फौजी शासन ने खुनेग्राम इस जाति का शरारतपसंदा की छड छड कहा और फौजी छावनियां म घोषणा की गई कि मुजीब कहता है कि बंगाली बहुमत में हैं इसलिए वे पाकिस्तान पर हुक्मन करेंगे हमें इहे अल्पमत में बदल देना है ताकि अभी भी य पजाबी और पठानों पर शासन का मनसूरा न रख सकें।

उसने खुले चौराहे पर लोगो की भीड़ को सम्बोधित करते हुए कहा— 'सुनो लोगो ससार के तमाम खूखार दरिदो से कही बदतर एक जानवर होता है जिसे शासन कहा जाता है। यह निहायत बदसूरत और गलीज भूठ बोलता है। य अल्फाज सिर्फ इसी की खुदान से निकलते हैं कि मैं यानी शासन ही जनता है। हा हा हा। यह भूठ है। सरासर भूठ है। निर्माता वह है जिसने जनता को बनाया। उसने इनके ऊपर मुहब्बत और विश्वास की छाव डाली और हुक्मत ? हुक्मत वह घबसकारी गिरोह है जो बहुमत को हिकारत से देखती है और जनता पर नसवार और सगीनों की छाया तानती है।' इस तरह बोला जरफुष्ट। नीलसे का यह पागल दाशनिक धाज जाने कयो बार बार पाद आता है। साढे सात करोड जनता ने अपने सपना और भ्रमानों को पूरा करने के लिए जिस आदमी को चुना जिसे उन्होंने खुसेग्राम अपना एक मान रहनुमा और नेता करार दिया वह देशद्रोही और गद्दार है जब कि दुनिया भर स भीष मांगवर बटोरे हुए जमी सामानों की डेरी पर खडा याहिया खान पाकिस्तान का सदर है और वह मुल्क की एकता और हुक्मत की मर्यादा को बचाने के नाम पर जो कुछ कर रहा है वह पाकिस्तान का आत्सनी मामला है। कौसी बदमूरत होभी है हुक्मतों के नाम पर बनाई गई यह सबैधानिक साजिश। इसने दुनिया की छोटी बड़ी तमाम हुक्मतों के मुह सिल दिए हैं। असल में हुक्मतों की भी एक अंतर्राष्ट्रीय गिरोहगर्मी होती है जहा एक-दूसरे के जुलम और भ्रमानवीय कार्यों को ढँकना तापना गिरोहस्वाय की सहिता का परम पवित्र उद्देश्य बन जाता है।

हमारे देश के लोग परेधान हैं कि यदि ऐसी घटनाओं को समयन दें तो एक दिन नागालण्ड कश्मीर, तमिलनाडु आदि को भी देश से अलग होने से बचाया जा सकेगा। कुछ लोग कहते हैं क्या पता दोनों बंगाल मिलकर एक हो जाएँ। पता नहीं इस धका पर पागल दाशनिक जरफुष्ट क्या कहता पर एक मामूली बौद्धिक भी आसानी से कह सकता है कि क्या पूर्वी पाकिस्तान की घटनाओं से इतना भी नहीं सीख पाए कि मुहब्बत और विश्वास की छाया के नीचे ही एकता होती है, सगीन और तलवारें एकता नहीं पैदा कर सकती। हुक्मतें हमें भा भूठ बोलती हैं। जनता एक-एक दिन अपने खून का

हिताय गींगी है। उम जिय नि यह विदयाग हो जाणा कि घनगाव की बात बरने। यास गिराह स्वाम की सहिता का पाना बर रहे है। यह उन हुक्मतो की इसी तरह दफा देगी जस बांगला देग ॥ हो रहा है। एका एक दूसरे की मदद में बेहतर जीवन जीने में बुनियाती प्रण पर टिक गयी है। यदि ऐसा नहीं है तो यह नक्ली एकता है। मराल इस या उस हिम्मा का नहीं सवाल दस्ता का है जनता का है। भाप जनता में नाम पर कुछ ही समय तक घपना उल्लू सीधा बर सकत है। कागज की ताव हमें ना नहीं बना करती। इसलिए हम बांगला देग की घटनाओं पर नय सिरे से सोचने की जरूरत है। बहुत बरता में बाग देग उप महाडीप की जनता और नेताओं के सामने ऐसा अवसर आया है कि हम स्वाय और सजुचित सीमाओं से बाहर नियमबद्ध बठोर मयाय की जमीन पर गडे होकर सही ढंग से सोचना शुरू करें। इस नव चिंतन में बहुत सी चीजें टूटेंगी जिनसे हमारा मोह भी हो सकता है पर मोहविद्ध स्थिति में छुटकारा पान का सुभवसर भी जातिया की कभी कभी ही मिलता है।

स्वतंत्रता जमसिद्ध अधिनार है बहने बाना माडसे की जेल में बंद कर दिया गया। यह स्वतंत्रता शत्रु भी खूब छलावा है। स्वतंत्रता के नाम पर आजकल एक-से एक नारे प्रज्ज्वलित हो गए हैं। हम इसीलिए असली और नक्ली स्वतंत्रता में भेद करना होगा। असली स्वतंत्रता विद्वय्यापी मानवता की जरूरत है नक्ली स्वतंत्रता गिरोहस्वाय बालो की सत्तालिप्सा का आवरण होती है। मैं कम्युनिस्ट नामन में व्यक्ति की गत्ता और स्वतंत्रता को नकारने वाली हुक्मत की लपफात्री का सक्त विरोधी हूँ पर मुझे फ्रेडरिक् एंगिल्स का यह कथन हमें ना हो सही और साधक सगता रहा है कि स्वतंत्रता प्राकृतिक नियमों को इन्वार बरने की काल्पनिक स्थिति का नाम नहीं है बल्कि मनुष्य की जरूरियात को पूरा करने की छूट की स्वीकृति है। मनुष्य को मामूली जरूरतें पूरी करने की भी जहाँ छूट नहीं होती वहाँ असली स्वाधीनता सघप जम लेता है। यह असली स्वाधीनता मनुष्यता की स्वाभाविक अस्तित्वमूलक विशेषता है। यह कभी विभाजित नहीं होती। कभी धर्म, राष्ट्र या संस्कृति आदि की मामूली सीमाओं से घेरी नहीं जा सकती। इस स्वाधीनता के सलाब को मजहब या राष्ट्रीय एकता के नाम पर कुचला नहीं जा सकता और इसी लिए हर मनुष्य का यह स्वधर्म है कि मनुष्यता की इस अधिभाष्य आतिमक माँग को पूरा समथन दे। बांगला देश की स्वाधीनता का सघप असली स्वाधीनता-सघप है क्योंकि यह सघप वहाँ की जनता के जीवन की मामूली जरूरतों के पूरी न हो सकने की स्थिति से जमा है इसलिए यह एक आतिमक असली और बुनियाती स्वाधीनता सधाम है। इसे स्वीकार करने में धर्म

संविधान, राष्ट्रीयता अंतर्राष्ट्रीय तौर परीका की दुहाई देकर हिचकना अमानवीय और मानव धर्म के विपरीत है।

असली स्वाधीनता-संग्राम एक प्रकाश-स्तम्भ होता है जो न केवल अपने मूल स्थान में अंधकार और तमस की जड़ता से टकराता और उसका विनाश करता है, बल्कि अपनी ओर सहानुभूति और भावधर्मिता के भाव से देखने वाला को भी नया प्रकाश और उत्साह प्रदान करता है। असली स्वाधीनता संग्रामों को राजनीतिक मतवालों की घुसपठ से घूमिल और निरर्थक बनाने की कोशिशें भी कम नहीं होनी, बल्कि प्रायः इनसे बच पाना असम्भव नहीं तो कठिन तो अवश्य ही रहा है। परन्तु कभी कभी प्रकृति मनुष्यता को सही दिशा निर्दिष्ट देने के लिए शुद्ध स्वाधीनता आन्दोलन को जन्म देकर उदाहरण भी पेश करने का काम करती रहती है। आज यदि मुजीब अमेरिकी, चीनी या किसी मतवाद का पिढू होता तो उसे बिना मागे असुल सहायता मिल जाती। परन्तु यह भी खतरा होता कि एक नया वियतनाम पैदा हो जाता, जहाँ सत्य और अमृत्य का ऐसा गड़बड़झाला खड़ा कर दिया जाता कि पता ही न चलता कि जनता और फौज की आवाज में फर्क क्या होता है। मुजीब इस दृष्टि से प्रकृति का निर्वाचित ऐसा प्रतिनिधि है जो मनुष्यता को ही अपना नारा और उद्देश्य बनाकर चला है। किसी मतवाद और झुंके को नहीं। इसी कारण उस की लड़ाई अमानवीयता के खिलाफ मानवता की लड़ाई बन गई है। इसी वजह से इस लड़ाई की जोखिम भी बढ़ गई है। मानवीयता को बरीयता देने के कारण मुजीब ने क्रांति में कड़वा को जोड़ने की कोशिश की है। यानी लोन्गिया की शब्दावली में क्रांति में कड़वा का मत सिविल नाफरमानी है। सिविल नाफरमानी के सबसे बड़े उस्ताद सोहिया ने शायद यह नहीं सोचा कि दुर्दान्त सत्ता गड़ित नाजीवाद की पुनरावृत्ति भी कर सकती है। सोहिया को शायद विश्वास था कि दुनिया आगे बढ़ रही है इसलिए नाजीवाद का गढ़ मुड़ा क्योंकि खड़ा हो सकता है। परन्तु हमारा और यह मानना पड़ेगा कि सिविल नाफरमानी के फलसफे में इस लड़ाई के बाद थोड़ी तरकीब करनी पड़ेगी। सिविल नाफरमानी कलेसाम के सामने अहिंसक नहीं रहेगी यह जोड़ना लाजिमी हो गया है। लोग का पुराना शक फिर सिर उठा रहा है यानी गांधी का सत्याग्रह अपेक्षाकृत मध्यम अश्वजों के सामने और सोहिया की सिविल नाफरमानी देशी सत्ता के खिलाफ ही कारण हो सकती है।

वस्तुतः मुजीब का स्वाधीनता संग्राम एक ऐसी घटना है जो कई तरह के मुद्दे उभारेगी। इस लड़ाई में या क्रांति में कई चीजों पर सोचने के लिए विवश किया है। बांग्ला देश के मुक्ति सेनानियों की याद आती है तो तुलसी याद आते हैं। 'रावण रथी विरथ रघुनीरा' का दृश्य ताज़ा हो जाता है।

यह पहली विरथी क्रांति यानी साज सज्जा, साधनहीन तथा किसी मतवाद से अछूती क्रांति है। अर्थात् इस लड़ाई के सामने मजहद, मतवाद या क्रांति के परिचित स्कूलों अर्थात् भाग्यो जेम्हारा अथवा लेनिन आदि की क्रांतियों के नक्शे बेकार हो गए हैं। क्रांति कोई सिकका नहीं है कि उसे किसी-न किसी छापे के बिना ढाला ही नहीं जा सकता। क्रांति जनता की आत्मा का आक्रोश है रुढ़भाव है जो अपनी अभिव्यक्ति की शक्ति खुद तलाश कर लेता है। मुजीब का स्वाधीनता संग्राम क्रांतियों की नई नई पोशाकी या नवादा के बिना सहज स्वामाविक गति से पाद-म्यादे सामने आया है जो कि मनुष्यता के भविष्यत सघर्षों को एक नया मोड़ देने का कार्य करेगा। अन्धधर्म से जूझने का यह नया प्रयोग और इतने शहीदों का खून बेकार नहीं जाएगा। इसमें सफलता असफलता के प्रश्न का कोई खास मतलब नहीं। सभी जानते हैं कि असफल क्रांतियाँ देशद्रोह बन जाती हैं। सवाल क्रांति के उसूलों और उसको चलाने के तरीकों का है, सफल होने या असफल होने का उतना नहीं।

इस तरह की क्रांतियाँ हमेशा आंतरिक और बौद्धिक चेतना से खाद और खुराक ग्रहण करती हैं। बुद्धि को गिरवी रखकर क्रांति का फल सम्भवतः आसानी से या कम दिक्कत से पाया जा सकता है। पर बिना गिरवी रखी बुद्धि को क्रांति के दौर में जिन खूनी घाटियों से गुजरना होता है उसे भुक्तभोगी ही जान सकता है। इसका सबसे कड़वा स्वाद बागला देश के बौद्धिकों को चखना पड़ा है। अपनी बुद्धि पर विश्वास करना स्वाभिमान भले नये पतर्नाक कम नहीं होता। मुजीब और उसके साथी इसे जानते थे। इसका परिणाम भी सामने है। बागला देश की सामूहिक बौद्धिक चेतना को बाँटूको से उड़ा देने का प्रयत्न शैतान की बेइतहा अकलमनी का प्रमाण है, पर शैतान हमेशा ही यह गलती करता है। शायद यही उसकी विशेषता भी है, कि वह असली स्वतंत्रता की तरह असली बौद्धिकता को भी क्षेत्रीय वस्तु मान लेता है। बागला देश के बौद्धिक जो अब नहीं हैं, अपनी चेतना की विरासत, विश्व के उन तमाम बौद्धिकों के नाम छोड़ गए हैं जो बुद्धि को गिरवी रखना मर्यु से बदतर मानते हैं। बागला देश की यह विरथी क्रांति बस्तुतः विश्व के बौद्धिकों के लिए बहुत बड़ी चुनौती है।

वाल्ट व्हिटमैन के नाम एक खुला पत्र

पदमा एक समुद्री जहाज है जिस पर अमरीकी हथियार सदे हैं। पदमा एक नदी है जिसमें मछलियाँ होती हैं जिन्हें मारकर आदमी खाता था, अब मरे हुए आदमी को वहाँ मछलियाँ खा रही हैं। मैं किसी भी देश के कवि पर विश्वास करता हूँ क्योंकि वह अपने ही देश के इतिहासकार से ज्यादा ईमानदार होता है।

मैं अमरीकी कवि वाल्ट व्हिटमैन का प्रशंसक था। अब भी जब उसी की शली में या आग के मुहावरा में, उसी से मिलनी-जुलती, या आगे की बातें करनेवाले बहुतरे कवि सामने हैं, पवित्र की अपित होकर उन्होंने पक्ति लम्बी कर ली है, मैं उसका प्रशंसक हूँ, क्योंकि उसने एक नई जमीन तोड़ी थी। पर पिछले कई दिनों से जब भी लीब्ररी आफ ग्रास' पुस्तक किसी दूमरी के खोजने के सिलसिले में छू जाती है मुझे जाने क्या कुछ गिजगिजा सा लगता है। एक प्रस्पष्ट कही न जा सकनेवाली विरक्ति, जसी शायद पदमा के माँझिया की रोज-रोज छुए जानेवाले चबो की पुनर्वार छूकर होती होगी।

मैं आपसे कसे कहूँ कि अपने मनपसंद किसी साहित्यकार के बारे में जब अपनी भावनाओं में तन्नीली आती है खुद को एक सदमा-सा लगता है। चाहे वह तन्नीली गलत कारणों से, गलत रूप में ही क्यों न हो या वह एक बहुत छोटी घड़ी के लिए ही क्यों न जगे। व्हिटमैन ने मेरे दिमाग में पहली बार अमरीका के बारे में वनी हुई गलत तस्वीर को साफ किया था। मैं तब तक अमरीका को एक ऐसे ही समुद्री डाकुओं का मुल्क मानता था जो सोने की खोज में हमसफर एक ही उद्देश्य से प्रेरित साधियों की पीठ में छुरा मारकर रातोंरात सोना पाकर घना सेठ बन बैठे और फिर उन्होंने 'रेड इण्डियन' का शिकार करते हुए घने जंगल पर कब्जा किया जो बाद में ऐसी उपजाऊ जमीन में बदल गए जो इफरात में उगलती है जिसे वे दुनिया के बाजार में अपनी घीम

जमाने के लिए तथा हमारे जैसे भियारी मुल्को की 'निणय शक्ति' को गिरवी रखने के लिए इस्तेमाल करते हैं।

मुझे ह्विटमैन ने बताया कि मेरा सोचना गलत है। उसने अपने दिल की वशिश को शर्तों के जादू में धोलकर पता नहीं कौन सा माहौल रचाया कि मुझे भी उसी की तरह लगने लगा कि अमरीका खुद में एक काय है। मुझे विस्तृत फले सलत चट्टानी जगला स डकी धरती प्यारी लगने लगी, क्योंकि उसका अपना एक अलप संगीत था, जो बियाबान में भी गडरियों की धावाओं और 'काउबॉयज' के घोड़ों की टापों के साथ धूल मिलकर प्यारा लगता था। मुझे 'राष्ट्रो से बने उस राष्ट्र' की लोकतांत्रिक 'ययस्था' का जादू मोहित कर गया। मैंने दिल खोलकर यह स्वीकार कर लिया कि अमरीका ही ऐसा देश है, जो 'याय' के लिए सड़ता है, स्वतन्त्रता के लिए जीता है और व्यक्ति की प्रतिष्ठा के लिए सब कुछ कुरबान करने को तैयार रहता है।

मुझे ह्विटमैन पर गुस्सा आता है। सच पूछिए तो ऐसा आरम्भवादी गुस्सा जो सिर्फ किसी कवि या साहित्यकार पर ही आ सकता है या जग सकता है। कमबलत जाने किस मूढ़ में था कि लिख गया, 'दूसरे राज्य अपने देश के चुने हुए प्रतिनिधियों से जाने जाते हैं। मगर अमरीका अपनी सरकार से सिनेट से प्रतिनिधि सभाओं से राजदूतों से कालेजों यूनिवर्सिटियों या गिरजाघरों से नहीं पहचाना जा सकता, उसे पहचानना हो तो उस जनता को जनारण्य को देखो उनके स्वच्छद रहन सहन, मित्र भावना मृत्युहीन स्वतन्त्रता की मदम्य इच्छा गलाजत नीचता और जघन्यता के प्रति उनकी उत्कट द्वेषणा और विरक्ति उनकी अकूत जिज्ञासा को देखो। याद रखो अमरीकी प्रेसिडेंट हट उठाकर जनता का अभिवादन करता है जनता उसका नहीं।

आज भी जनता वही है उसके जोश-खरोश में कमी नहीं आई है। उसके स्वच्छद रहन सहन में वृद्धि ही हुई है। आज भी चुनाव के बाद इस जनता का अभिवादन प्रेसिडेंट ही करता है, पर पर

वही प्रेसिडेंट नीचता के अंतिम छोर पर जाकर पूरे अमरीका को बर्नाम करने वाली हरकतें भी करता है। वह स्वतन्त्रता के लिए जीते रहने की मामूली छूट के लिए जहोजहद करती हुई अधनग्न बुभुक्षित पूब बगाल की निहत्थी जनता को फौजी बूटों से कुचलने की साजिश में याहिया खाँ की मन्द करने की हरचद कोशिश से बाज नहीं आता। क्या मैं मान लू कि पिछले दो दशकों से लगातार एशिया की जमीन पर एक से एक निखटटू बठपुतले प्रेसिडेंटों की मन्द करता हुआ, ह्विटमैन का अमरीका सब जगह से आत खाता हुआ भी अपनी गलतियाँ स्वीकार करने को तैयार नहीं है? क्या कोई शोक सिगमैन री अम्यूब कितने नाम लूँ—सभी-ने सभी अमरीकी धोगे के भीतर जनाक्रोम स बचाने की गरज

से छिपाए जाते रहे और अतः बुरी तरह पिटकर बेनकाब करके धकेल बाहर किए जाते रहे—यह सब कुछ वाल्ट व्हिटमन वा वह भ्रमरीका करता रहा, जिसके स्वतंत्र मछुवे, व्यापारी और खदानों में कार्य करने वाले श्रमिक, प्रयोग-शालाओं के वैज्ञानिक और तकनीकी जानकार, प्राध्यापक और बौद्धिकों ने एक नये स्वतंत्र देश में मानवीय सवादित और सौमनस्य की जन्म दिया था।

इसी सौमनस्य की विश्व के रगमच पर उतारने के लिए तुम्हारी आत्मा तड़प जाती थी। तुम्हें याद आता होगा व्हिटमन, कि 'पसेज टु इडिया कविता को लिखते समय तुम कितने विश्वास साहस और उत्साह के साथ अपनी ही आत्मा को संबोधित करते हुए आंदोलित हो उठे थे

डाढ़ बढ़ाओ केवल गहरे जल की ओर चलो तुम
ओ दुःसाहस भरी आत्मा।

आओ दूँ, साथ तुम्हारे मैं ओ तुम होकर मेरे साथ चलो
जहाँ आज तक कोई नाविक कभी न पहुँचा
चिन्ता क्या, असुविधा पड़े खतरे में हम, या सब कुछ
ओ रे मेरी धीर आत्मा आगे आगे बढ़ती जाओ

तुम्हें भारत के गहरे समुद्रों के आह्वान ने मंत्रमुग्ध कर लिया था, क्योंकि तुम जानते थे कि जब तब पश्चिम की भौतिक उन्नति पू्व के अध्यात्म से जुड़ती नहीं विश्व कोई सचमुच की सही दिशा नहीं पाएगा। आज भारत के ये ही समुद्र भ्रमरीकी हथियारों से लदे जहाजों से आक्रांत हो रहे हैं। एक देश की स्वतंत्रता को कुचलने की इस साजिश में तुम्हारे देश की सरकार भाकठ घँसी हुई है। तुम एक ऐसे व्यक्ति थे, जो हर किसी को अपना गुप्त से गुप्त दब सुनाने के लिए प्रेरित करते थे। तुमने मेरा गीत' शीपक रचना में अपनी कफियत यों दी थी—

मैं अपने को ही अभिनदित करता
अपने को गाता हूँ
हर क्षण मेरा जो अपना है वही तुम्हारा भी है।
सुननेवालो, कुछ है क्या ओ विश्वस्त भाव ।
सिफ मुझी से कह पाओगे ?
मेरे मुख पर सीधे देखो
जब तक मैं भुङ्कती सध्या को श्वासों में अपने भर लूँ
सच्चे दिल से वह डालो
कोई नहीं यहाँ जो सुन पाएगा
मैं तो केवल एक मिनट के लिए रुका हूँ ।

हाँ, व्हिटमन हमारे पास विश्वस्त भाव से कहने के लिए बहुत कुछ है।

बांगला देश के हजार हजार भूखे, पन्दलित, निहत्थे, मजलूम बहुत कुछ कहना चाहते हैं। पर तुम्हारे जसे कितने लोग हैं, तुम्हारी सरकार के भीतर, जो एक मिनट रुककर यह सब सुनना चाहें ?

तुम्हारा एक नेता था। तुमने अपने शोकगीत में वही उसका नाम नहीं लिया है। पर किसी को समझते देर नहीं लगती कि एरोइका सिफनी से भी ज्यादा दर्दिल ये वाक्य तुमने अब्राहम लिंकन की हत्या से विह्वल और कातर होकर लिखे थे—

नीले साइलन्स के फूल, तारे और चिड़ियाँ

मेरी आत्मा के दर्दलि गीतों से किस तरह जुड़ गई हैं

वही सुगंधित देवदार और चीड़ की कुँ

धुंधले अंधेरे से घिर गई हैं।

क्या तुम चाहते हो व्हिटमैन, कि बांगला देश का कोई नजरूल कोई मुस्तफा या मोइनउद्दीन इसी तरह की पक्तियाँ लिखने के लिए मजबूर हो ? मुजीब की लिंकन बनने से शायद रोका नहीं जा सकता।

हम तुम्हारे देश की जनता के प्रति श्रद्धावन्त हैं, क्योंकि वह अभी जीवित है। सब मानो व्हिटमैन हम हि दुस्तानी आज भी तुम्हारे स्वतंत्रताप्रिय शहीदों को वैसे ही याद करते हैं। उनके प्रति हमारी आस्था आज भी ज्यों-की-रूपा है। सब मानो व्हिटमैन, हम अपोलो अतिरिक्त यानों की चद्रपरिक्रमा और अवतरण के रिपोर्टिज पढ़कर बिना किसी सकोच के तुम्हारे महान राष्ट्र की अभ्ययना में कमी धुके नहीं, किन्तु हम तुम्हारी उन सरकारों का क्या करें जो हमेशा अपने साधियों और मित्रों के रूप में तानाशाहों और जगबाजों को ही चुनती हैं। जिनके लिए एशियाई और अफ्रीकी जनता की आजादी के लिए चल रही लड़ाइयों का कोई मूल्य नहीं। वे जन नेताओं को अपनी शतरंज की गोटियों में बदलने के लिए कुछ भी करने को तयार हैं। वे झूठ बोलते हैं राजनीति में समुद्री दस्युनीति का प्रयोग करते हैं वे अपनी मूल्यता के कारण पिटते हैं। एक वियतनाम से हटते हैं तो दूसरे का निर्माण किए बिना उन्हें नींद नहीं आती। हम निक्सन की कपट छुरी से उठने परेशान नहीं हैं जितने इस बात से कि आखिर एक कवि राजनीतिकों के पड्यत्र से झूठा साबित क्यों हो रहा है। क्या चुनाव के बाद प्रेसिडेंट हट उठाकर चूँकि जनता का अभिवादन कर देता है इसीलिए जनता वह महान स्वतंत्रताप्रिय जनता उसे गलत कामों को करने से रोक नहीं सकती ?

अब तक तो संभव नहीं हुआ व्हिटमैन शायद आगे हो सके और जब तक ऐसा नहीं होता तुम्हारी आत्मा जहाँ भी हो समा करना मैं स्पष्ट कहना चाहता हूँ कि मैं जो तुम्हें प्यार करता था धन्य करता हूँ। इस सदम को तुम सही ढंग से समझोगे—दुमी आगा के साथ।

अविससा=शवासन+खामख्याली

करीब दस बरस पहले की बात है। मेरे एक मित्र ने हँसते हुए कहा—“आखिर आप हैं क्या ?”

मैं कुछ न समझता-जसा उसकी ओर देखता रहा। उस वक़्त मैं गगनहिता ले आया था और उसके एक भद्र का सस्वर पाठ कर रहा था। मैं अपने बेसुरे राग में अक्सर तमय रहता हूँ। मेरी हैरानी देखकर वे बोले—“आप इसी तमयता से ‘दुर्गास्तोत्र’ का या गीता का ग्यारहवाँ अध्याय गाते हैं। इसी तमयता से मानस भी पढ़ेंगे, सूरमागर भी चंडीदास को और विद्यापति को भी और उसी तमयता से नातियां बम्बाली भी गाएँगे और ईसाई प्रायनाएँ भी सुनेंगे। आखिर आप यह लिचड़ी और घपला क्या चलाते रहते हैं ?”

मेरे वे मित्र कट्टर कृष्णभक्त हैं, उन्हें दुर्गामंदिर की ड्योड़ी लांघना भी पसंद नहीं आता। बात भाई गई हो गई। वे अपने काम में लगे, मैं युनि वर्सिटी चला गया।

मैंने उस दिन राखो का ‘क्षत्रियता विवाह’ समय पढ़ाया जो मात्र शृंगारिक था यानी ऐसा कि माइन कही जानेवाली लड़की भी गुस्सा हो जाए। सूर के ‘भ्रमरगीत’ के कुछ पद जो अचानक मुझे उस मूढ़ में ले गए, जहाँ जाकर मैं अक्सर क्या मे एक अजीब उन्मासी की नीरवता में धाराप्रवाह धोलता हूँ। गिर बी० ए० में मैंने मैथिलीकरण की ‘कुंजा’ पर भाषण दिया। कुंजा बिलकुल भदलील नही होती, सो यका-यकाया घर लौटा।

चौकी पर शवासन की मुद्रा में लेटा-नेटा मैं सोचता रहा—चाकई यह कसा घपला है ? मुझे कबीर तुलसी, सूर गालिब चंडीदास, विद्यापति जायसी आलम गेटे, शेक्सपियर, मलार्मे चेखव, रवींद्र और कृष्ण गुरुभम्भर रफी और शकील अनाउद्दीन खाँ और रविशंकर जैन बुद्धिब्रम और तिव्वती लामाघम,

बवाला और नित्यापोडशिवाणव म वही न-वहीं तो स्पष्ट रेखा मीच देनी ही चाहिए। ऐसा तीतर-बटेरवाद निहायत गलत और नामाबूल है। मैं सचमुच परेशान हो गया। मुझे लगा कि मैं एक कमजोर मस्तिष्क का ऐसा आदमी हूँ जो बहुत जल्दी ऐसे बसे ही प्रभावित हो जाता है और मुझे परस्पर आमने सामने टक्कर मारने वाली चीजों को एक जगह इकट्ठा करने की विवशता म गिरफ्त हो जाना पड़ता है।

मेरे डाक्टर ने मुझे सलाह दे रखी है। विश्वविद्यालय से लीटकर सीधे चौकी पर या किसी बराबर सतह वाली चारपाई या जमीन पर चित लेट जाइए। दिमाग को एकदम खाली कर दीजिए। बीस मिनट ऐसे ही पड़े रहिए। हाटस्ट्रेन से बचने का यह एकमात्र तरीका है। और मैं हूँ कि लेटा हूँ। सतह भी बराबर है, श्वासन भी ठीक ही है, पर दिमाग है कि अपनी धुनकी चलाए जा रहा है। पहले से भी अधिक तेज, पहले से भी अधिक चौकस घेरेबन्दी के साथ। यानी बिलकुल बेसतह बिलकुल नाबराबर और नागवार हरकत के साथ।

बगल म सिरहाने की ओर रखे रेडियो को खोल देता हूँ। यह आकाशवाणी का उबू प्रोग्राम है। पाकिस्तान के संगीत के साथ हिन्दुस्तानी जम्हूरियत का डोज दिया जा रहा है। डेरो खत पाकिस्तानी श्रोताओं के उनके नाम सुनाये जा रहे हैं। जाहिर है कि अक्सर ये नाम खालिस मुसलमानी होंगे ही। इन्हें सुनकर मेरा हिंदू मन फूलकर कुप्पा होता है। एनाउंसर उनके फरमाइशी गीतों को इस तरह पेश कर रहा है जैसे एयरइण्डिया के महाराजा अपनी मूछों की नोक पर अजता उठाए जापानी गीसा का चरण बुम्बन करने जा रहे हों। मुझे बड़ी खुशी होती है कि पाकिस्तान की लड़कियाँ भी आकाशवाणी से कुछ फरमाइश करती हैं। रेडियो पाकिस्तान क ढाका केन्द्रों के कार्यक्रम मेरी अपनी कमजोरी हैं। भटियाली और माभी गीत सुनने के लिए जी बेकरार रहता है। कभी कभी पूर्वी बंग की जनपत्नीया बोली बड़ी अक्ल बन जाती है। अँगूठा दिखा देती है। औरत है न सो यह हरकत भी अच्छी ही लगती है। पर पता नहीं क्यों लाकगायक के तीन तीन बल खात अलाप का जादू दिल पर ऐसा असर करता है कि मुझे लगता है कि सुदूर फले हरे-हरे सुगापखी धानी खेतों के ऊपर से मड़राते पाली चल आ रहे हैं। पद्या की धारा म तरती नावों की छाया मुझे कोपेनहेगन के जे० ब्रेनलड के स्टिल फोटोग्राफ्स म अंकित नावों की याद दिलाने लगती है। मरा बस चले तो मैं ब्रह्मदेव नारायण सिंह को पटना से और मोइनउद्दीन को ढाका से निकालकर टिबकटू भिजवा दूँ। पता नहीं, इन दोनों के मले म इतना मर्ना क्या मरोड़ और जालिम जादू कहाँ से आया। अभी म श्वासन म हाटस्ट्रेन का भुलवाने की कोशिश म था और य है कि

अपने कंठ का नाजायज फायदा उठाकर मुझे एक सम्झी, उदास शीली साँस खींचने के लिए विवश करते हैं जिसे सीने से बिना बाहर निकाले काई जी नहीं सकता। कभी सुना है आपने मोइनउद्दीन को ? नहीं सुना होगा। वह कोई नाम नहीं है। नाम मरणा भी क्या है ? वह सिर्फ गीत है। मैंने पहली दफा उसे सुना था, तो लगा कि ऊबड़ खाबड़ जंगली पहाड़ों के ऊपर से नाचता पिरकता ब्रह्मपुत्र नद ताटव करता नीचे उतर रहा है। वह गा रहा था—

आमि त अबुला बधु हइलाम अतरपुरा
 कल भागिले नदीर जल मध्ये पडे चडा
 रे बधु मध्ये पडे चडा ।
 कल कहुरा बुझाइ पाखी नाइ से माने माना
 भरा कलसी हइल र बधु दिने दिने उणा
 रे बधु दिने दिने उणा ।

पनपट की भरी कलसी, गौर पिजड़े से उड़े पाखी का क्या ठिकाना ! कितने दिन के साथी हैं भला ये ? यह सारा बद अचानक पूर्वी दंग के 'महुया गौर नचार ठाकुर' के प्रेम प्रसर्गों की स्मृतियाँ जगा जाता है।

यह गीतकार गायद नज्जल इस्लाम का मानस पुत्र है। कौन जाने शरत के 'श्रीकांत' के गीहर की भेंडराती रह हो या हो सकता है वह भी कहा कामाख्या की ही आत्मा न हो। विष्णुाचल की आत्मा (पाकिस्तानी कवि असद मोहम्मद खाँ बराँची की प्रत्यात कविता) की तरह। उमानन्द मैरव का कृपापात्र होगा गायद ! देखिए न कितना खुश हूँ मैं ! मलाउद्दीन खाँ मैहर की माँ शारदा का नाम लेते हैं। डागरबधु कृष्ण का बिसमिल्ला ने गंगा घाट पर घोंघरे मैं किसी देवी का दगन किया था किंतु मैं हूँ कि मुझे मोइनउद्दीन के गीत में खाली 'पाखी पाखी ही दीखते हैं। सुदूरैर पियासी' आत्माओं की तरह भेंडराते पाखी पाखी पाखी। कहाँ नहीं हैं मनेर बधु कहाँ नहीं हैं ये आत्माएँ ! कहाँ नहीं हैं ये पाखी ! आप चटगाँव जाइए ग्रहमशावाद जाइए भिवडी जाइए कहीं भी निकल जाइए यदि आपको जरा भी हाटस्टन होता हो तो आपका लगेगा कि इस उपमहाद्वीप का सारा आकाश फिर व्याकुल पिपासित पाखियों से भरता जा रहा है।

खर जाने दीजिए मोइनउद्दीन को। पाकिस्तानी है वह ! और मैं क्यों सोचू मुगलमान के बारे में ? हमारे देश के बारे में इनके मन में कहीं भी प्रीति नहीं कहीं भी आस्था नहीं। इनका भारतीयकरण होना निःशङ्क अचरी है। हो ही जाना चाहिए भारतीयकरण। यह कितने कलक की बात है कि हिंदुस्तान में रहकर मुसलमान हिंदुस्तान की बात नहीं करते। कितना दाग है इनके जिस्म पर रुह पर मन पर ।

मैं धर दूँ दूँ दूँ दूँ दूँ मैं गोबिन्द मैं । धारको राग राग है ।
 जो मगना हो मुझे दगकी जगदाह मदी । रागमय का धर रिय मैं को मात
 करता है । 'विजय' को राग करता है । भीजी को रागदाह तक देगने की मात
 देना है । धारा की विजय में यत् नय विगा है । सभी धरदेव रागमयि
 के 'गोरोरा' को का जायाह कंत जे मे गाते जिजी को धरने धारो ॥ गदे-
 रा है । मेरा विम विर गुन होने मगा है । राग मैं को गुन गुन
 रागमुदा को रागमय विरय मे काने मगी है — 'महररा मे राग मगाह
 धाई चुनरी ।

कबीर भी राग ॥ राग राग । धार मे गुनगा है धीर मे कबीर की
 कागी की धारा के माये धर के गुन विग मगा है । मैं जब नय कबीर के
 धार ॥ गोबिन्द मैं मुझे धारुन धी- के बुद्ध बाव का धर्मगुन ॥ राग काने
 धार धार मगा है । मैं कानाकोगी मैं राग राग दुर्गद पर । धी राग मे
 एक राग को राग के विगरे विगरी धीरा के वेद का गुनार होना है । रागुन
 बाव का । धी कहर उगाही धर उगाही मे । राग राग ॥ धर मे राग
 गुन के ६ धरे तक कबीर दग मगा था । धारको राग ही गुन है जि मे
 गराय मन का धामी है । कबीरभी रागमय मे भी बाव मगी बागी । धीर
 जहाँ टीर विहरी क भीध राग पर दो धारि के दुर्गद बर रा, मा-
 को बुसाता बोद्धाण गो- मे स भी राग मुदिन बाव है ।

पर भसा गी- न धारो मे काम के मे कनका ? मैंने कर् तई धार रागमय
 साया । तिहरी के पत ब- विग । माये धार धीरा को जी भरकर गाविया
 दी । मगर जो होना था बही हुआ । धारी मैं राग दो बर धारपाई छोडकर
 तिहरी मे धा धर । मलीउत्ता गाता गुन था । विगुन धरुन हमी-
 के धार की तरह । उगरी रागी कबीर की तरह रोना- नहीं धी छतवार,
 धारी उलभी उलभी मधुमकी के छत की तरह धी । उम बर यह राग था ।
 उसका लम्बा कुरता निरामा के कुरते से होइ सेता था, हासवि बर धरुन
 धारिप्रिय द्विने जता था । मगर पुर्ती मे वह बाव हायरसी को भी मात
 कर सकता है । उसकी धारों का बोलिया, हारमोनियमवाला धीर दूसरे सगतिमे
 जरा भी कमजोर नहीं थे । पर जैसे उसे उन पर विश्वास न हो । रह रहकर
 वह जग उठा लेता । उसकी पतली पर सोहे के छड की तरह सधी वाली
 उंगलियों की फोट से राजकी स जो धावाज निबलती, वह मुझे धार-धार
 विवेकानन्द शिला पर टकराने वाली समुन्नी सहारा की याद दिला देती ।

मैं कबीर का प्रेमी हूँ । पथी नहीं । कबीर पड़ा है द्विनेजी से । मगर
 उसने धर पर कबीर की जो कहानी सुनाई उसे मने किसी प्रवाणित प्रकाशित
 ग्रंथ मे वही नहीं देखा । वह कजली की धुन पर गा रहा था

कांगी नगरी में हो गए दास कबीर गुना हो सावरिया ५५५ ।

जुलाहे की ईमानदारी, सत्यनिष्ठा और भक्ति से देवमंडल कांपने लगा । ब्रह्मा, विष्णु भवेश सिपाहियों का वेद बदलकर परीक्षा लेने चले । कबीर का घर पूछा तो गली में खेलते कमाल ने तिढी बता दी । भाकर भवा से बोला, “तीन सिपाही आ रहे थे जनाब मैंने कह दिया इधर कबीर-कबीर नहीं रहते ।” कबीर अपने ‘वश डुबावन लडके को मडककर ताना-बाना भ भगन हो गए । तभी साकल खडकी । कबीर ने दरवाजा खोला । तीना सिपाही सामने थे । हाथ जोड़कर स्वागत किया । नाश्ता पानी के लिए पूछा ।

“हम कुछ भ्रमी हैं” ब्रह्मा बोले, “आपने सरकारी टैक्स जमा नहीं किया । नीलामी करन आए हैं । नाश्ता पानी की दरकार नहीं ।” ‘जसी मर्जी । कबीर चुप रहे । “क्या-क्या सामान हैं आपके पास ?” विष्णु ने पूछा— ‘यह ताना बाना, धरखा, धुनकी तो बेकार है । इसके भलावा बोलिए ।’ ‘इसके भलावा भला क्या है मेरे पास, केवल मेरा तन ।’ कबीर ने कहा । “मनुष्य के तन का क्या उपयोग । चमड़ा तब कोई नहीं पूछना । हाड मांस भी बकार हैं ।’ शिव ने कहा ।

कबीर लाचार हो गए । सिर खुजलाने लगे—“तब क्या है जिसे नीलामी पर घडाऊँ ।” उन्होंने उदास होकर पूछा— जेल ही ले चलिए तब ।

‘आपके पास एक चीज और है, उसका कुछ दाम लग सकता है ।’ ब्रह्मा ने कहा ।

‘क्या ?’ कबीर हैरानी से बोले ।

‘तुम्हारी आत्मा ।’ ब्रह्मा ने कहा ।

बलीउल्ला की सफेद सुरसुरी दाढ़ी ब्रह्मा की दाढ़ी की तरह लहरा उठी । उसने चग को थोड़ा ऊंचा किया । वही तीन तोड़वाला भलाप—यानी मोहन उद्दीन के ब्रह्म पुत्र का ताड़व, या कौन जाने कांगी की आत्मा का समूचा दद उसके गले में धरधराया—

जो कुछ है सब ले लो भइया कहूँ कसम से बोल हो सावरिया ५५५

ई आत्मा तो नहीं बिकाई ई त है अनमोल हो सावरिया ५५५

सगातार तासियों की गडगडाहट । मैं देख रहा हूँ । सभी झूम रहे हैं । चारों तरफ खड़ी जनता, रिकशेवाले छोटे दूकानदार यात्री, पुजारी, पडे सभी पागल की तरह उसकी सुरसुरी दाढ़ी को हवा में उड़ते देख रहे हैं और चग में फँसी एक जोड़ी भौंक की ठुनक के जादू से बिचे चित्र की तरह निश्चेष्ट हो गए हैं । आत्मा की विभी का विरोध और दाग लगी चुनरी—पर अप्सोम—यह है काशी की आत्मा की ज्योति । ।

मैं बार-बार सोचता हूँ कबीर का भारतीयकरण किसने किया ? कव्याली

गायक हबीबुल्ला का भारतीयकरण किसने किया ? अब्दुल हमीद का भारतीयकरण किसने किया ? हजारो हजार मुसलमान जो हिंदुओं के मुँह दुःख में हँसते और रोते हैं शान्ति-व्याह में यौने पर जात है दरवाजे पर बैठकर दुःख दद की बातें करते हैं सुहाग की चूड़ियाँ बेचते हैं, सहनाई बजाते हैं लहंगा और धूल्ले का कपड़ा सीते हैं—इसका भारतीयकरण किसने किया है ? इस्राइल अहमद मेरा मकान बनवा रहा था। सुपरवाइजर था। मैंने गृहप्रवेश पर कहा कि तुम पगत में खाने क्यों नहीं बैठे ? यहाँ क्यों बैठे ? तो बोला यहाँ एकात है बाबूजी ! भारतीयकरण का मतलब एकात है भारतीयकरण का मतलब अलगाव है। भारतीयकरण का मतलब शिनास्त करके सजा देना है तो यह नितात अभासीय है, गलत है अस्वील है।

आप निहायत भावुक हैं ? इसी से आप को हाटस्ट्रेन होता है। सही जमीन पर खड़े होकर आप सोचने की कोशिश ही नहीं करते। "मेरे एक अध्यापक मित्र कहते हैं 'क्या आपने सुबह चार बजे अजान सुनी है ? मैं स्वीकृति में गन्त हिलाता हूँ। "आपकी नींद टूट जाती है कि नहीं ? मैं फिर स्वीकार करता हूँ। परसाल दशाहावाद में दंगे हुए आप जानते हैं न। मैं फिर हाँ करता हूँ। 'आपको मालूम है कि मुसलमानों के घरों से विस्फोटक सामान बरामद हुए ? आपने अमृतराय का लेख पढ़ा था ? उस गदस ने सही बात कही थी तो उस पर भोर्चा बाँधकर नामवर सिंह मुन्नाराक्षस में मयनाथ वगैरह टूट पड़े थे। क्या मुस्लिम साम्प्रदायिकता जसी चीज इस देश में नहीं है ? आप लोग एकतरफा बातें करके चीखा को उसभात हैं। कितने अम्नुस हमीद हैं ? कितने राही मामूम रजा हैं ? कितने हमीद दलवाई हैं इस मुल्क में ? बोलिए, आपने अपनी आँख से ताजिए उठने के वक्त बिजली और टेलीफोन के तारा को कटते नहीं देखा है ? क्या आपने जुलूसों में पाकिस्तान जिदाबाद के नारे नहीं सुने हैं ? क्या अलअक्सा मस्जिद के जलने से ही दंग हो सकता है चन्गाँव का हिंदू मंदिर कोई अप्र नहीं रगना ? यदि पान इस्लाम का नारा साकार करने की कोशिश जारी रहेगी तो स्थिति क्या संभव पाएगी ? तुम्हें अम्नुन रहमान इस्लामी सभ के अंतराल सेन्टेदरी बनने जा रहे हैं। मान अब्दुल गफ्फार खाँ जैसा मुसलमान जिसके हिंदू यहाँ पर छूने रहे हम साम्प्रदायिक कहना है और सारे मुस्लिम देशों में मिलकर हिंदुस्तान के मुसलमानों को बचाने की कोशिश करता है। यह सब क्या है ? इस्लाम धर्म, सस्कृति धर्मस्थानों पर नहीं हैं कोई आघात पहुँचे तो दुनिया में एक दज्जन ऐम मुस्लिम देश हैं जो इसका विरोध करेंगे गुप्त बाँध कर गोर-शराबा मचाएँगे पर यदि हिंदू धर्म, मन्दिर या सस्कृति पर कोई आघात हो तो हिंदुओं की आर में कौन बाध ? हिंदुस्तान ? वह तो धर्मनिरपेक्ष है ! अब बजाएँ आप ही कि अगर हमारी सोचा पर धर्म धर्म धर्म धर्म धर्म

जारी रखता है और हिंदुओं को ठेल कर हिन्दुस्तान की ओर भावता है, उन्हें धमपरिवर्तन के लिए बलान् विवर्ण करना है ऐसी हालत में यह सोचना कि हिन्दुस्तान में मतुलन बना रहेगा, बुद्धि का दिवालियापन नहीं तो और क्या है ?' मित्र की बात सुनकर मैं चुप रह गया। वे मुझे निरुत्तर देगकर मुमकराते हुए चल गए। मैंने फिर श्वासन माघ लिया।

वही रास्ता नहीं दीयता। राजनीतिक दल अपना प्रपना स्वाथ सिद्ध करने के लिए एकमात्र अपने दल की ही अल्पसंख्यका का सरसक घोषित करते हैं। साम्प्रदायिकता के लिए सबसे बड़ी मुलजिम ये राजनीतिक पार्टियाँ है, जो उचित अनुचित सभी कुछ भूलकर सिर्फ वोट पाने के लिए पंतेरे बलते रहने का करिश्मा निताती रहती है। कोई खुलकर सही बात नहीं कहता। कुछ थोड़े-ने ऐसे लोग हैं इस मुल्क में जो अनीस के भून से सन्नस्त हैं। इन्हें साफ भाफ जान लेना चाहिए कि न तो हिन्दुस्तान में कभी हिन्दू शासन होगा, न तो साख कोशिश करने भी मुगनिया सत्तनत को बापम बुलाया जा सक्ता है। इसलिए पाकिस्तान और उनके अनुयायियों के हाथ का गिलीना बनना मुसलमानों के हक में अच्छा न होगा। मुसलमानों को धम के नाम पर बहुविवाह की छूट कब तक मिलेगी ? कानून के दबाव से नहीं मुसलमान औरतों के घक्के से यह तथा कथित गलत प्रथा खत्म होगी। मुसलमानों को हमेशा-हमेशा के लिए यह मान लेना होगा कि वे हिन्दुस्तानी आबोहवा की उपज हैं। उन्हें हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक फटे बिनाल देग की प्राकृतिक सपत्ति फूल पीघे पसलें और श्रुतुएँ विरासत में मिली हैं जो अरब देगों से किसी भी तरह कम खूबमूरत नहीं हैं। उन्हें एक ऐसे सरस-उ मुल्क के नागरिक होने का गौरव प्राप्त है, जो खुद में किसी भी बड़े से-बड़े सपटन से बड़ा है। सबाल है कि हिंदू और मुसलमान दोनों ही अपनी आत्मा की बिक्री को रोकें। चाहे खरीदने वाले राजनीतिक नेता हों, पुजारी पडे हों, मुल्ला मौलवी हों, हमें अपनी आत्मा की, व्यक्तित्व की, हर कीमत पर रक्षा करनी है।

पर यह सब कैसे होगा। मेरे दिमाग में एक अनूठा शब्द उछल पडता है—
अविषसा !! अविषसा !! अविषसा !!!

हम १९७० में बठकर यदि दुहस्त तरीके से आत्मपरीक्षण करें तो लगगा कि हम गी साल पीछे वाली उपसंघियों को भी खो चुके हैं। आज से सी साल पहले रामकृष्ण ने कहा था 'यह तो एक जलानय है एक ओर हिंदू अपने घडे से जल भरता है दूसरी ओर मुसलमान उसे 'घाव कहता है और तीमरी ओर साहब उसे बातर। पर जलानाय तो वही रहता है। (गास्पेल आफ रामकृष्ण प० २०४) स्वामी विवेकानंद एक कदम और आगे जाकर कहते हैं भारत के बिना पर मुहर उमी दिन लग गई जब हमन भ्लेच्छ गण का

भावधार किया और दूसरा से काट गए (सितेशेठ वरस, पृ० १८०) विवेका-
नन्द एक ऐसे हिन्दुस्तानी का सपना देगते ही रह गए जिगजा मस्तिष्क हिन्दू
वेदांत में और जिसमें इस्लामी रुढ़ता है निहित हो ।' (संज्ञा ग्राम कोसम्बो टु
अत्मोडा पृ० ३६०)

श्री अरविन्द इसी साम्प्रदायिकताहीन अध्यात्मवाणी अभिव्यक्त मानवता के
प्रप्रदूत थे । वे तो अध्यात्म और धर्म को एक-दूसरे का विरोधी तक कहने को
तयार हैं, 'बहुमन साइजिस का बच बच ऑफ़ बरगनस एज दीयर अध्यात्म
हमारे देश के राजनेताओं को एक बार पढ़ लेने में परमान का अनुभव नहीं
होना चाहिए । वैसे राजनीतिक व्यभिचारी का मतलब ही होना है पढ़ने से या कुछ
जानने से नफरत करना ।' धार्मिकता मनुष्य की धारणा में ईश्वरीय राज्य का
नाम है किसी पंढे महत्त, पोष या मुन्ना की सन्ननन का नहीं ।' उनका एक
दूसरा उद्धरण भी देखिए— धार्मिक सम्प्रदायों के भगड़े उग्र यतना के भगड़ा
के समान हैं जिनमें हरेक यही कहता है कि समरता देने वाला सुधारण सिर्फ
उसी में भरा है । हम यतनों के पीछे क्या सब हम सुधारण चाहिए, चाहे वह
किसी भी यतन में भरा हो ।

धर्म का नाम लेकर दूसरा पर अत्याचार करने वाला के प्रति तीव्र नफरत
से वे लिखते हैं यह एक अदभुत समस्कार है कि ये (तथावधि धार्मिक)
भगवान को तो प्यार कर सकते हैं परन्तु मनुष्या से प्यार करने में असमर्थ
होते हैं । तब भला वे किससे प्रेम करते हैं ?'

हिन्दू धर्म की ये महान विभूतियाँ धर्म के कमवाइ को महत्त्व नहीं देती ।
ये सब अध्यात्म को धर्म का धर्म सत्य मानते हैं और उसी को दृष्टि में
रखकर ये सभी धर्मों की सीमाओं से ऊपर उठकर सिर्फ मानवता को देख पाते
हैं । ऐसा नहीं है कि हिन्दू मात्र इस ऊँचाई को पहुँच गया है । यहाँ भी काफी
कमकाई कीचड़ है, पर इसमें कमलों का भी अस्तित्व रहा है, इससे इन्कार
नहीं किया जा सकता ।

श्री विवेकानन्द या श्री अरविन्द कोई नई उपलब्धि नहीं हैं । ये उस हिन्दू
संस्कृति की सहज परिणति हैं, जो बहुत पहले से अध्यात्म की ओर मुड़ी रही
है । भारतीय मुसलमानी धर्म के साथ एक गड़बड़ी यह हुई कि उसकी मध्य
कालीन समृद्ध संस्कृति की धारा भारत में आज के भारत में, रुद्ध हो गई है ।
हमें पुनः कबीर, हजरत निजामुद्दीन रिश्ती हाजी बाबा हजरत ख्वाजा विरय,
शेख हिसामुद्दीन बगाल के गीराज साद लालनशाह, गेल मन्न की वापस
बुलाना होगा । आज भी बाबलों की आत्माएँ हमसे पूछ रही हैं— 'यह सब
क्या हो रहा है । तुम पागल की तरह किस मंदिर मस्जिद में खोज रहे हो
भाई ।'

तोमार पय ढायकावे मदरे भस्जिवे
तोमार डाक गुन आमी चल्ते ना पाद
रुइला उढाय गुस्ते मुरगेदे ।

इन गुरुग्रो और मुसिदा से, पढे और मौलवियों के हाथ अपने को बेचना
कब तक चलेगा ? और हम हैं कि हमारे पास इन सवालो का कोई जवाब
नहीं है । मध्यकाल की कहानियाँ याद आती हैं, और आखें भर जाती हैं । कहा
गए हुमायूँ और कमवती, वहाँ गई वह राखी । कहाँ गया अमरसिंह राठौर,
उसका मित्र नौसहवाज पठान । कहाँ गए बाजबहादुर और रूपमती । कहाँ
गए जगतसिंह और आयगा । लक्ष्मीबाई का मुसलमान तोपची, शिवाजी के
मुसलमान सैनिक, गुरु गोविन्दसिंह की रक्षा करने वाले कहा गए ? जाने के
कैसे साग थे अभी सौ चप भी नहीं हुए कमल लता और गीहर की काल्पनिक
दास्तान तक आखें गीसी कर जाती थी । ऐसा भारतीयकरण तब हुआ था, जब
कोई नारा नहीं दिया गया था । जब भारत घमनिरपेक्ष नहीं था, न विज्ञान
प्राया था ।

हम फिर से ऐसी महान् आध्यात्मिक विभूतियों को बुलाना होगा, अपने
भीतर उन्हें जगाना होगा जिनके चरणों पर बरगाहो पर, हिन्दू समूहबद्ध होकर
माया भुक्ताने में कभी भी पीछे नहीं रहा है । क्यों नहीं पैदा होती अब ये
विभूतियाँ ? वही महान् मुस्लिम सभ्यता की धारा में ही तो अवच्छेदता नहीं
आ गई है ? यदि ऐसा है तो उसका बूझा तत्वार साफ करके उस फिर से निमल
और प्रवाहपूर्ण बनाना होगा । यह काम नई पीढ़ी के मुस्लिम युवकों को ही
करना होगा । हिन्दुस्तानी धर्मों की आध्यात्मिक शिक्षा में मुड
जाने की जरूरत है । पर यह काम न तो पड़े-पुजारी कर सकते हैं, न राजनीतिक
नेता, न तो बहुत मौलवी और न तो फतवा देने वाले घमगुरु ही । यह काम
नई पीढ़ी के लोग ही कर सकते हैं पर कितना दुखद है कि आज सबसे बड़े कट्टर
संप्रदायवादी नई पीढ़ी के युवक ही होते जा रहे हैं । तो यह है अविश्वस का
पहला बीजाक्षर—यानी अ=अध्यात्म ।

घम आध्यात्मिकता बनाए रख सबके विश्वास की चीजें नहीं हैं । आधुनिक
चित्त इन दारोक्त और अदृश्य तत्वों को और भुक् नहीं पाता । आज की बुद्धि
स्पष्ट, तेजसगन्त, प्रयोगात्मक तथ्य और प्रमाण की अपेक्षा करती है । यह कार्य
आज के युग में विज्ञान कर रहा है । विज्ञान बड़ी तेजी के साथ घम की घना
वश्यक हडिया को तोड़कर भविष्यत् मानवता के नये तत्त्व गढ़ता जा रहा है ।
अणुविस्फोट से भी अधिक महत्तर ज्ञाति डॉ० शुराग के जीन-तत्त्वावेपण में
छिपी है जो कुछ दवाका बाद ही नम्बो को आदतें बदल सकती है भविष्यत्
मनुष्य का सारा मिजाज सोचने विचारने का तरीका और जिज्ञासा की चमूगन

हरवत। वो समस्त गण्ट कर सकती है। पर इसमें काफी विवाद है। जाने वह दिन क्या आए ?

यूरोप में धार्मिक जाति ने जो तन्मीनी साम्राज्यों में पना की, वह हिन्दुस्तान में कुछ देशों में ही घटित हो रही है। पर मुझे यह गोचर बड़ी हैरानी होती है कि क्या तभी हिन्दुस्तान और भारतवासी ने मुगलशासन में यानी भारतीय उपमहाद्वीपीय मुगलशासन में, जिनके भीतर हिन्दुस्तानी नस्ल का चाहे हिन्दू या मुसलमान, एक ही रचन बहना है जगन्नीयबद्द बोग रमण, डॉ० भाभा डॉ० सिर्रोही, डॉ० गुराना जैसे लोग पना हो रहे हैं। मैं यह आरोप की गरज तो नहीं कह रहा हूँ। मोतने के लिए कह रहा हूँ। वहीं धार्मिक धारणा के कारण मानव में दीक्षित मुसलमानी प्रतिभाएँ विज्ञान की इस नई शक्ति को पकड़ सकने में कोई दिशरत का अनुभव तो नहीं करती ? आज से २५ वर्ष पहले डिस्कवरी आफ इंडिया में प० जवाहरलाल नेहरू ने बड़े प्रफुल्लित के साथ लिखा था— 'मुगलमान हिन्दुस्तान तथा दूसरे धर्मविलंबियों की प्रपेक्षा विनाम और औद्योगिक विकास में बहुत पिछड़े हैं हिन्दू भी पिछड़े हैं, कुछ ऐसे भी हैं जो रूढ़ परम्परा से बहुत परादा चिपे हैं, फिर भी उन्हें विज्ञान और प्राविधिक संस्थानों आदि के मामले में कई महत्वपूर्ण प्रतिभाओं को जन्म देने का श्रेय प्राप्त है। छोटी-सी पारसी जाति भी काफी आगे है।' (डिस्कवरी आफ इंडिया, प० ३६६)

धार्मिक दृष्टि ने संपूर्ण विश्व में धर्मों की पुरानी भावनाओं को पुनः परीक्षित करने के लिए बाध्य किया है। श्री एस० सी० बकेट ने अपने प्रतिष्ठित ग्रन्थ कपरेटिव रिलिजन में विज्ञान और पश्चिमी प्रभावों की प्रतिक्रिया से उत्पन्न हिन्दुत्व की नई चेतना के बारे में लिखा है 'स्वातंत्र्य के शान्ति में विश्व और जीवन को नकारने' वाली हिन्दू कमयोग की धारणा विश्व-पापी आक्राणण का कारण बनी है। जब तक पापी का प्रभाव इस देश पर वर्तमान है तब तक मार्क्सवादी धारणाओं के लिए शायद ही जगह मिले। किन्तु यदि नेहरू या दूसरे जो उनसे कहीं ज्यादा परिवर्तनप्रेमी हैं अपने देश की जनता के सामने के लिए, महारमा पापी के प्रभाव को हटाने में सफल हो जाते हैं, तो शायद भारत में तुर्किस्तान और चीन की ही तरह भयानक उथल-पुथल मच कर रहेगी' (प० १२२) इस निष्कर्ष के बारे में अभी कुछ कहना ठीक नहीं। इससे इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि हिन्दू धर्म निरंतर आधुनिक प्रभावों से टकरा रहा है और अपने को बदलने की कोशिश कर रहा है। किन्तु क्या यह स्थिति इस्लाम के साथ भी निम्नाई पड़ती है ? बकेट के ही शब्दों में— 'भारत के कुछ पते लिखे मुसलमान यमीस्तापूर्वक इस्लाम के सभी पहलुओं के—अध्यात्मतत्त्व नीतिशास्त्र, मनोविज्ञान आदि के प्रकाश में पुनः परीक्षण की

आवश्यकता महसूस करते हैं।' (पृ० २८६) किंतु इसी लेखक ने बड़े दुःख के साथ यह स्वीकार किया है— 'जोड़न, मिस्र लीबिया यहाँ तक कि पाकिस्तान में भी धार्मिक रुढ़ियाँ को तोड़ने वाली पर सलियो के काफी उदाहरण मिलते हैं। और यह सब बीसवीं शताब्दी में हो रहा है।' (पृ० २८६) यह एक विचित्र बात है कि आधुनिकता का प्रभाव मुस्लिम समाज पर अपना वृत्त बहुत कम दिखाई पड़ता है।

मेरा ध्रुव विश्वास है कि जैसे-जैसे विज्ञान का प्रभाव बढ़ता जाएगा उस-उस आदिम प्राकृतिक गुणधर्मों का तत्कालीन प्रामाणिक समाधान उपस्थित होता जाएगा, विश्व के सभी धर्म सामूहिक कानून संहिता के स्वरूप पर व्यक्तिगत चीज होने जाएंगे और उनका रूप मात्र आध्यात्मिक निष्ठा के अलावा और कुछ नहीं रहेगा। यह प्रक्रिया जितनी ही तीव्र होगी, धार्मिक दंगे और दुर्घटन सांप्रदायिक कलह उत्पन्न ही कमजोर दिखाई पड़ेंगे।

इस्लाम का भारतीयकरण राजनीतिक नारा से कदापि नहीं होगा, क्योंकि प्रथम तो उसका भारतीयकरण बड़े अदृश्य रूप से तभी शुरू हो गया, जब मुसलमानी कारवाँ बंगाल के तट पर पहुँचा। यह परिवर्तन भारतीय धरती की सांसायनिक प्रक्रिया ने किया है और कर रही है। जो कुछ शेष है उसे कोई सध या सघटन नहीं करेगा। करेगा तो धलगाव बढ़ेगा। उसे तो विज्ञान ही करेगा जसा कि वह हिंदू धर्म के साथ कर रहा है। वैसा ही इस्लाम के साथ भी होगा हो रहा है।

अविषया के शपथ बीजावर हैं संगीत और साहित्य। संगीत के क्षेत्र में भारत और पाकिस्तान दोनों को मिलाकर देखें, तो यह कहने में किसी को भी आपत्ति नहीं होगी कि गायद इम दिना में मुसलमानों का योगदान हिन्दुओं की अपेक्षा कहीं से भी कम नहीं है। गायद कुल मिलाकर पलड़ा भारी ही पड़े। और क्या यह सही नहीं है कि शुद्ध इस्लाम संगीत को प्रोत्साहन देनेवाला धर्म नहीं था? यह भारतीय इस्लाम की देन है कि उसने सूफी सतों की दरगाहों तक को भजन और कीर्तन से मुक्ति करने में बाधा नहीं डाली। भारतीय संगीत का स्वर्णयुग अकबर के शासनकाल में उपस्थित हुआ। मुगलिया सल्तनत के गीतकारों और वन्दावन के युगल सरकार के भक्त गीतकारों की प्रतिद्वंद्विता, प्रेम मोहान और इसके परिणामस्वरूप उत्पन्न संगीत की प्रख्याति ऊँचाईयों कहीं से भाई?

औरगजेब संगीत को जमीन के भीतर इतना नीचे गाढ़ देना चाहता था कि उसकी गंध तक नहीं आए। उसी के सूत्रधार फकीरुल्ला ने मानकुतूहल का फारसी में अनुवाद किया। फकीरुल्ला ने बड़े विश्वास से लिखा है— "हमारे अकबर के बाल का कोई भी गायक मानसिंह सर्वर व बान व गायक। से

संगीतशास्त्र के ज्ञान में टक्कर नहीं ले सता।" (मानकतुहल, पृ० १२६) खुमरो, गापाल नायक वजू और बाद में हरिदास, तासन आदि संगीतकारों ने अपनी साधना से एक ऐसे संगीत को जन्म दिया जो न हिंदू संगीत है न मुस्लिम संगीत। यह शुद्ध हिंदुस्तानी संगीत है।

और कहा न होगा कि आज भी संगीत और इसी से सम्बद्ध लोकप्रिय फिल्मी गीत और फिल्मी जगत ने हिंदू मुस्लिम एकता को एक जीवन्त रूप प्रदान करने में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

सबसे दयनीय स्थिति इस दिशा में साहित्य की रही है। जिस साहित्य में किसी जमाने में इन दोनों संस्कृतियों के स्वस्थ समन्वय की दिशा में अप्रतिम भूमिका निभाई थी, वही कई कारणों से फिरकापरस्ती का शिकार हो रहा है। आज शायद ही कोई उर्दू कवि या अफसानानिगार हो जिसकी रचनाएं उर्दू में छपने के पहले हिंदी में न छपनी हों। कृष्णचंदर जिहोने उर्दू की हिमायत में सबसे गलत भूमिका निभाई है हिंदी पाठकों और अखबारों से सर्वाधिक श्रद्धा और पूजा पाते रहे हैं। उर्दू किसी भी प्रदेश की इलाकाई जवान इसलिए नहीं हो सकती क्योंकि इसे इस्तमाल करने वाले किसी भी इलाक में बहुमत में नहीं दिखाई पड़ते। पूरे प्रदेश में कस्बा और गहरो में रहने वाले मुसलमानों की संख्या जोड़कर उर्दू के लिए 'इलाकाई' जवान का दर्जा मांगना एक अनुचित प्रयास माना है। उर्दू को मजहब के साथ जोड़ना दूसरी गलती है और उर्दू के नाम पर कम्युनिस्टों और तथाकथित प्रगतिशीलों का घाव मूढ़ और हल्का मचाना एक तीसरी गलती है जो हिंदी और उर्दू साहित्य और उनके साहित्यकारों के बीच विद्यमान मित्रता और बंधुत्व को नष्ट कर रही है।

हिंदी साहित्य प्रगतिशील नहीं रहा और रातोंरात उर्दू काति की भाषा हो गई यह मुगलता बहुत ज़िंदा तक चलता रहा। यह एक प्रगतिशील सांप्रदायिकता है जो प्रतिनिधावादी सांप्रदायिकता से कम खतरनाक नहीं होती। (एक गलत के लिए लखनवागरी का श्रेणी है!) मुझे याद है मैं अलीगढ़ विश्वविद्यालय में हिंदी बहानी पर भाषण देने गया था। उस जलसे में जिसमें उर्दू और हिंदी विभाग के अध्यापक प्राध्यापक और छात्र छात्राएं उपस्थित थीं डा० अलीम सदर थे। उस वक्त के स्लामी उच्चाध्ययन केंद्र का संचालक थे अत्र कुलपति हैं। एक जमाने में वे प्रगतिशील तरफ सच के स्तंभ भी थे। मैं वही एक निहायन खुशगवार बानावरण पाया, एक सात तरह की भावपूर्ण तहजीब और बानगीन का मलीका देना। मैंने भाषण के सिलसिले में तरकरीपन और बानी प्रगतिशील संभव संघ की पिछनी कार गुजारिया की मजहब भा की कि इन्होंने सच्च और प्रामाणिक साहित्य की

जगह ध्वजारनवीसी की तरजीह देने और उसने डिंडोरची चलने का गलत काम किया था। डा० अलीम ने स्वीकार किया कि एक जमाने में ऐसी गलती हुई, जिसके कारण सही निस्म के साहित्यकार इस आन्दोलन से बतराने लगे और धीरे धीरे प्रगतिशील लेखक संघ और उसके आंदोलन में भयंकर गिरावट आई।

अभी शायद समय नहीं आया है इसलिए यह बताने की जरूरत नहीं है कि राही मामूम रजा की साफगोई मेरे राष्ट्रीय विचारों को व्यक्त करने के कारण किन किन दिक्कतों का सामना करना पड़ा है। उनका एक बहुत ही सजीदा करने वाला छत मेरे पास है। हमीद दलवाई की जो कढ़वे घूट पीने पड़ रहे हैं वह भी किसी से छिपा नहीं है। हिंदी का लेखक अपनी घरती से इस तरह कटा है कि उसके बारे में कुछ कहना ही बेकार है। आज से पाँच साल पहले परिमल के वापिकोत्सव पर मैंने एक निबंध पढ़ा था। शीघ्र था— 'आधुनिक परिवेश और बौद्धिक वचना'। उसका एक अंग मुझे इस सदन में उद्धृत कर देना उचित लग रहा है 'पिछले दिना राउरकेला पूना, बनकत्ता, अलीगढ़, सागर जबलपुर आदि में दंगे हुए। क्या आज के नवलेखन में इस समस्या (हिंदू मुस्लिम साम्रदायिकता) पर पिछले १८ वर्षों में कुछ भी लिखा गया? यहूतियों की समस्या पर यूरोप के आधुनिक से आधुनिक साहित्यकारों ने जिस सवेदना और गहराई का साथ लिखा है, क्या वह हमारे लिए विचारणीय नहीं है? (आधुनिक परिवेश और नवलेखन, पृ० १२) मुझे बड़ी हैरानी होती है। अचानक कोई समस्या जब सार राष्ट्र की हिलाने लगती है, तो हिंदी लेखक वक्तव्य देने लगते हैं। उसके पहले भी तो उस समस्या के बीज बिंदु समाज में प्रकट छिपे रहते ही रहते, फिर उस समय कुछ न करना, कहना और बाद में अलवारों में स्टेटमेंट देना क्या लेखकीय सूक्ष्मता और समाज की तज पहचानने की असमर्थता का प्रमाण नहीं है? पर हमारे यहां यही होना है।

मैं ही क्यों परेशान होंगे? मौके पर मैं भी 'स्टेटमेंट' देकर पाँचों सबारों में नाम लिख सकता हूँ। हा 'स्टेटमेंट' काफी गोल मटोल होना चाहिए ताकि समय आने पर चित भी अपनी पट भी अपनी वाला तरीका कारणरूप से इस्तेमाल किया जा सके। मेरे खाटी व्यावहारिक प्राध्यापक मित्र मुझे समझाते हैं— 'पता नहीं भगले दो चार साल में ऊट किस करवट बड़े। इसलिए अच्छा है कि आप किसी भी सिद्धांत की हिमायत करके अपने करियर को कलकित न कीजिए।' वे हँसते हुए चले गए। शवासन में लेटने के अलावा मेरे पास कोई रास्ता नहीं। कलक दाग दाग कलक। जकडबली का समयन सफरता की कुंजी है मानवता की हिमायत करियर को कलकित करने वाली चीज है। ऐसा है हमारा समाज।

हिंदू, मुसलमान, पारसी, सिख ईसाई, कितने कितने रूप हैं कितने कितने वेश हैं । इनके भीतर की मोहन मानवता को जिसने नहीं देखा, यकसा प्राक्पक्, यकसा दिलकश, जिसने इस रूप को देखा ही नहीं, वह जान ही नहीं सकता कि कलकी या कलकिनी बनने का अर्थ क्या होता है । मुझे अचानक माईकेल की पक्तियाँ याद आती हैं

जिसने देखा कभी न मन भर मोहन रूप
बिना बाधा ।

वही न जान सकता है क्यों कर कल
कलकिनी है राधा ।

परस्मपद भूतकाल
पाच श्रद्धाजलियाँ

बीहड़ पथ के महायात्रिक राहुल

जब-जब मैंने राहुलजी के बारे में सोचा है, मेरी आँखों के सामने गाव के छपरे पर पड़ा हुआ पीपल पड़ा हो गया है—सकड़ा घर्मी परसतें भेले हुए फिर भी उत्पन्न कण्ठ और उन्नत वस का बूढ़ा पीपल । अनगिनत पछी जिसकी सघन पत्तियाँ की छाया में नींद बसाय विश्राम लेत हैं । अनेक दिशा देशांतरों से आते हुए, आते जाने हुए पक्षी आकाश में इद्रघनुषी वितान बनाते जिसके शीश पर निरंतर महराया करते हैं । गर्मी सपती है तो जड़ से मटकर चौगुद भाग बल में स-गड़वे खड़े, बैठे, अधलेट जुगासी करते रहते हैं और जिसकी आरवस्तकारी छाया में प्रकृति के उत्पातों से परेगान कृपक निरंतर शरण ढूँढत रहते हैं । ऐमा ही आच्छादक, चिर परिचित उन्मुक्त अपनपी से भरा हुआ ग्रामीण व्यक्तित्व था राहुल का । विनाल गरीर भरा पूरा चौड़ा चकला सीना वपम-स्वप्न । उनके मानस में जाने कितने देश-दशांतरों की स्मृतियों के आकुल नीड़ थे कितने कितने स्वर और रंगवाले मनुष्यों के प्रेम के स्वेद फूल और आकाशमार्गों के स्वप्नित गुच्छे थे ।

मैंने राहुल को पहली बार १९४७-४८ में देखा सारनाथ में । मूल गंध कुटी विहार के वार्षिक अधिवेशन पर दक्षिण एशिया के बौद्धों का सम्मेलन था । मैं तब उदयप्रताप कालेज में पढ़ता था और उस समय मेरा जैसे असमय वैराग्य और आत्मघाती उदासी से पूर्ण मायुज्य-सा हा गया था । राहुल को वही पहली बार मध से भाषण देते देखा । लम्बा डील डील हल्के बान्गो रंग का मोटा उनी कुरता वाला चितकबरा सा आबेट और काफी चौड़ी मोहरी का पायजामा पहने—उनके कंधे से एक कमरा भी सटक रहा था जो पत्थरा की भग्नि चित्रलिपियों की घनी मगनेट आँखों में बाँधने के लिए काफी मगहूर हो चुका था । मैंने गुना था कि राहुल बौद्ध हैं । नाम ने रूप की जो सहज काल्पनिक छवि उठेही था, वह अजन्ता की चिगी बानी गुफा में ही बंद रह गई । सामने खड़े

ये राहुल, सहज उभूता स्वप्नदर्शी जीवन का मिमांसी राहुल, जिन्हीं प्राधान्य में बौद्धवादी गणराज्य और बाईसवीं सदी की रमणीय सभ्यता को सारा करने के लिए धातुर भाकुन प्राधान्य का प्रकाश है और जिनका शरीर मन्मथ प्रिय प्राचीन की निर्मलता और सह गुरु से यवनर गुर गुवरा की मस्ती का बोध था ।

इसके बाद बहुत वर्षों तक राहुल से मिलना न हो सका । उनके गृहजिवा व्यक्तित्व ने एक चाट ज़रूर जगा दी जिसे पुस्तकालयों से किताबों की दुकानों से, भयवा मित्रों से, वहाँ भी राहुल की कोई किताब या जाऊँ तो उससे लिए भवसर भनभवसर की परवाह किए बिना ससक उठूँ और जस भी हो गये उसे समाप्त करके ही खैन या सबूँ । उन्हीं दिनों 'बोल्गा' ने गया 'अप मोघेय और सिंह सनापति' पढ़ा । इन कथाकृतियों ने मेरी धारणा के सामने स वैदिक और दक्ष इतिहास का पापाणी आवरण हटा दिया जो भनीन के जीवन को अपनी सङ्कुचित सीमाओं में बाँधकर निरंतर आहत करता रहता है । बहुतों की गिनती यह रही है कि राहुल ने इन कथाकृतियों में इतिहास के अंगुलि निर्देश का तिरस्कार किया है । पापाण कथाओं को कल्पना का जाला पहना दिया है और तत्कालीन सभ्यता के चित्रण में इतिहास विरुद्ध दिशाओं का सहारा लिया है । ऐसे कथ्या इतिहास गौहारिकों को कौन समझाये भला कि साहित्यकार इतिहास का भीरु उपासक नहीं, अपने बाह्य कलेवर के भीतर अहमय रूप से प्रवाहित स्रोतस्विनी का सचेत भवगाह्य होता है । वह इतिहास की पापाणी का भपनी निष्ठा और कल्पना की सजीवनी से भानवी में बदल देता है । 'तुम सिर्फ यही है कि यह सब करते हुए वह सदा मनुष्य की अप्रतिहत जीवन-यात्रा के सभी मोड़ों को ठीक से समझे और सरिता की गति को न तो रूँदता करे और न बदलने के लिए प्रयत्नशील हो । राहुल ने जो कुछ किया वह सब मनुष्य की अविष्यत यात्रा को दृष्टि से रखकर, उसके लिए सहज सम्बल और पाथ्य जुटाने के लिए बहुत उद्देश्य से प्रेरित होकर ही किया । और कभी भी सङ्कुचित ऐतिहासिकता और यथाय का अभिनय नहीं किया ।

यह क्या कम आश्चर्य की बात है कि जिसे ये सङ्कुचित इतिहास 'गौहारिक स्वप्नप्रिय और काल्पनिक' कहते रहे उसने अपने स्वयं के लिए यथाय स्मानियत के बशीभूत होकर कभी भी व्यक्तिपूजा और अतिरिक्त श्रद्धा का चरणगान नहीं किया । राहुल ने कई जीवनियाँ लिखी हैं—मदालिम जैसे परम और दाम्पटिक व्यक्तित्व की भी किन्तु उन्होंने कभी भी यावूनता से प्रेरित होकर लच्छेनार भाषा में—किसी भी व्यक्ति का जयगान नहीं किया—उन्होंने कभी भी बड़े से बड़े व्यक्तित्व के सामने घुटने नहीं टेके कभी भी राजनीतिक पुण्या की सत्ता और शक्ति के सम्मुख भाषा झुकाकर लम्बनी को अपदाय नहीं बनाया कभी

भी चावचिस, बाहवाही, अथवा अंतरराष्ट्रीय लेखक माने जाने की गद्दी स्पष्टा से प्रेरित होकर चाटुकारिता नहीं की। व ऐसा इसलिए नहीं कर सक, क्योंकि व लेखक की मर्यादा और सजन का सही उद्देश्य दोनों जानते थे। राहुल की गम्भीरता निश्चल व्यावहारिकता, अस्मिताहीन मुसकराहट किसे भूल सकेगी। वे निराला के पर छू सकते थे, हजारोप्रसाद द्विवेदी को अँकवार में बाँध सकते थे और छोट से छोटे साहित्यकार के प्रति अपनत्व से भर सकते थे, क्योंकि वे साहित्यकार थे। वे राजनीतिक व्यक्तित्व के सामने भीगी विल्ली और साहित्यकारों के बीच में अफलातून बनना और अपने ठिगने व्यक्तित्व को दूसरों पर आरोपित करके निकृष्ट उद्देश्य से प्रेरित होकर विश्व निन्दक का बाना धारण करना कोई शान की बात नहीं समझते थे।

राहुल अपने विशाल साहित्य निवेदन के शिल्पी इजीनियर श्रमिक और राजगीर सभी कुछ थे। अपनी बहुविध और अनेक क्षेत्रव्यापी कृतियों की उन्होंने स्वयं योजना बनाई। सामग्री एकत्र की, खून पसीना एक करके इटो पर इटें जोड़ी और धैर्यपूर्वक उसके प्रत्येक पहलू को उभारने और समझाने का यथासम्भव प्रयत्न भी किया। उन्होंने अपनी अधिकांश कृतियों की विषयसूची और अनुक्रमणिकाएँ भी स्वयं तैयार की। वे दूसरों के श्रम का अपहरण करके अपने विश्व कौपिक ज्ञान का प्रदर्शन करने वाले कृतिकार नहीं थे। उन्होंने कभी भी छोटे से छोटे शोधकर्ता के श्रम को भी आत्मसात् करने का प्रयत्न नहीं किया क्योंकि वे श्रम का ग्रथ और उसका मूल्य दोनों जानते थे। व परभृत नहीं थे, अमरवेली विद्वत्ता से उह नफरत थी। इसीलिए न तो उन्होंने कभी भी दूसरों के श्रम का गोपण करके आत्म प्रशंसन के लिए पिरमिडस खड़े किए और न तो अपने व्यक्तित्व को ममी की तरह उसमें प्रतिष्ठित कराने का प्रयत्न ही किया।

ज्ञान, इतिहास, पुरातत्त्व, भाषाशास्त्र, वैज्ञानिक कथा नामी भाषाएँ हस्त लेख पुरातन समाजशास्त्र राजनीति, अर्थनीति लिपि शास्त्र मुद्रालिपि, उपन्यास कहानियाँ एकाकी यात्रावर्णन सस्मरण जीवनी काव्य सग्रह इतना इतना विज्ञान और बहुरंगी उनकी प्रतिभा का क्षेत्र था और इतना इतना कठिन, बोहड़ कष्ट। भरा था उनका लेखन-यथ। राहुलजी अध्ययन और लेखन के बोहड़ पथ के महायात्रिक थे। अपनी पुस्तक 'कोतिलता और अवहट्ट भाषा की एक प्रति प्रकाशित होने पर मैंने उनका पास भेजी। उनका पत्र मिला— तुमने अवहट्ट सम्बन्धी जो पथमय काम किया वह तो है ही मुझे प्रशन्नता है कि इस बोहड़ पथ पर चलने के लिए हिन्दी को दा सबल पर मिले। मैं पत्र पढ़कर लज्जा से गड़ गया था। मेरी कठिनाइयाँ गोपद थीं तो राहुल की समुद्र। राहुल को इन कार्यों को करने में जो पीड़ा और अपमान भेलना पड़ा वह हमेशा हमेशा के लिए छिपा-ढँका ही रह जाएगा। उसे कोई ज्ञान न पायेगा। नायद १९५५

मे वे वाशी था। उनका पूरा शरीर, स्वास्थ्य, धोप, धामा गभी कुछ मधुमह की भेंट हो चुका था। देखकर पहचानना भी मुश्किल था। सामने रातल नहीं किसी महत् स्तूप का सज्जित जजर ढाँचामान धड़ा था। भिन्न ही पूछा, 'कहा क्या कर रहे हो आजकल?' मैं उन दिनों सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य विषय पर शोध कर रहा था। और हस्तलेखों के सिलसिले में राजस्थान की यात्रा समाप्त करने लौटा ही था। मैंने उन्हें विषय बताया और हस्तलेखों के लिए यात्रा का विवरण। वे मुसकराये। 'कमी रही यात्रा?' उनसे चेहरे पर एक मजीब तरह की हँसी थी, उन्नीसों तिकनना और आत्मनोप भरी। मैं बड़ा नरा हुआ था। राजस्थान के एक साहित्यिक व्यवसायी के व्यवहार में इतना इतना चिढ़ा था कि मैं गुस्से में जाने क्या-क्या बकता रहा। मैंने अन्त में यह भी कहा कि मैं उस व्यक्ति को छोड़ूंगा नहीं। पूरा कच्चा बिटठा छपाऊंगा किसी पत्रिका में। वे मौन ही रहे।

शिव ऐसा मत करना कमी। उनकी आँखें पता नहीं किस ग्रहस्थ बिंदु पर लगी रही। उन्होंने एक सम्झी सास ली और बोले 'तुम लोग नौजवान हो। जल्दी तन में आ जाने हो।

कमी क्या उसमें मेरी गलती थी?

'नहीं,' वे धीरे धीरे वैसे ही कही और ताकते हुए कहते रहे गलती तुम्हारी कुछ नहीं है। मगर तुम्हें जब यह काम करना है तुमने सही या गलत जिस ढंग से भी जब यह कीहड़ रास्ता चुन लिया तो यह सब सहना ही पड़गा। मैं अपने अनुभव के आधार पर तुम्हें दो बातें बता रहा हूँ। उन्हें हमना याद रखना। इसमें कहीं अपमान मालूम हो तो पी जाना। खाना पानी न मिले तो फिक्र मत करना। भिड़की और उपेक्षा मिले तो सह जाना। और हाँ तुम उनके खिलाफ कुछ मत लिखना। बल्कि एक ऐसा लेख लिखो जिसमें उनकी प्रशंसा हो। लिखो कि उनके जसा उदार विद्वान साहित्यप्रेमी हमने देखा नहीं।'।

मैं बहुत कौशिक के वावजूद मुसकरा पड़ा। मगर वे वैसे ही गंभीर थे। वैसे ही कही खोये हुए तमय। 'इस दिना में कुछ करना चाहते हो तो याद रखो कि अंधकार में छिपी हुई सामग्री का प्रकाश में ले आना ही तुम्हारा काम है यही उपलब्धि है यही मूल्य। बंदने में कष्ट और निरस्कार ही मिलेगा और उस हृदय में छिपाये ही चिन्ता सब जाने की प्रतिज्ञा करनी होगी।

मैं कुछ न बोला। सिर्फ उनकी भरी भरी आँखों में देखता सड़ा रह गया। आज रातल नहीं है। वे अपनी अनेक कटु तिकन स्मृतियों को हृदय में दबाये ही चिन्ता पर सो गए हैं। उनके हृदय में धावों को कोई देय न पाएगा। तिर्यक्त में हजारों हस्तलेखों के उद्धार की कहानी मय दुहराएंगे पर उनके उद्धारकों की बहुत कुछ आपसीती यों हस्तलेख भी दुहरा न पाएंगे। किंतु इस पूरी कष्ट

भरो महायात्रा को ठीन से समझने वाले को ही बीहड़ शब्द का सही अर्थ मानूम हो सकेगा, ध्याया और पीडा का एक प्रकाशपूर्ण अर्थ ।

उनकी मृत्यु के बाद पुनः धीमे स्वर में ही सही, एक फुमफुसाहट सुनाई पड़ रही है—बौद्ध वि कम्युनिस्ट । इतना ही क्यों, राहुल के पूरे मानस और मस्तिष्क को खण्ड खण्ड करके तमांगा देखन वालों को कुछ और भी विशेषण जोड़ने चाहिए—आयसमाजी मठाधीन । अनेक और भी विशेषण जो शायद उनकी मृत्यु के बाद जोड़ना अभद्रता मानकर लोग प्रकट न कह सकें । य सऽ विशेषण क्या राहुल के व्यक्तित्व को पूरी तरह आयत्त कर सके है या कर सकेंगे ? राहुल इन विशेषणों से परे एक निरुपाधिक साहित्य सत्ता है, जिसके व्यक्तित्व के चिन्ता पूना को बराबर बराबर बाँटकर भी उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं हुआ जा सकता । राहुल न किसी भी मत को मत के लिए स्वीकार नहीं किया । राहुल की आत्मा एक ऐसी चेतन आत्मा थी जो अपने को और मनुष्यता को चरितायता प्रदान करने के लिए निरन्तर विकल रही । उन्हें बुद्ध का यह कथन सदा याद रहा कि 'मैंने तुम्हें नदी पार करने के लिए नाव दी थी । पार हो जाने पर उसे सर पर उठाकर डोन के लिए नहीं । राहुल ने इस कथन की वास्तविकता को समझा ही नहीं, अपने कार्यों में भली भाँति उतार भी लिया था । उनकी नावें स्पष्ट थी, किन्तु जहा इन नावों ने वाहन नहीं वाहक बनता बाहा, राहुल ने उन्हें भटक कर एक तरफ फेंक दिया । राहुल भारतीय सारस्वत परम्परा की स्वाभाविक उपलब्धि है, उस परम्परा की जो कूटस्थ रूढ़िवादिता को कभी भी मनुष्यता का उपास्य नहीं मानती ।

प्रकृति का गोताखोर

तेईस अप्रैल १९६४। स्ट्रटफ़ोर्ड की सड़क पर एक ऐसा दुश्म जो इतिहास में कभी कभी ही दिखाई पड़ता है। एक सौ पात्रह देगों के राजदूत अपनी राजनयिक बैठ भूषा में मुमज्जित एक कतार में चलते हुए शेक्सपीयर की समाधि पर जा रहे थे, उसकी चारसौबी बपगाँठ पर बासन्ती गुलाब के गुच्छे भेंट करने।

स्वेडेन के राजदूत गुमार हेग्लोक जो राजनयिक प्रतिनिधियों के डीन की हैसियत से इस प्रमद बचि नाटककार को श्रद्धाजलि अर्पित कर रहे थे, बोले 'शेक्सपीयर स्ट्रटफ़ोर्ड के थे ? इंग्लण्ड के थे ? नहीं, वे समूची मानवता के थे इसीलिए आज विद्वद के हर राज्य के प्रतिनिधि यहाँ एकत्र होकर एक स्वर से कह रहे हैं 'हमारे शेक्सपीयर।

हम सम्पूर्ण बर्तानिया साम्राज्य को खो सकते हैं कि ॥ शेक्सपीयर को नहीं। यह वाक्य जाने कितनी बार हमारे अध्यापकों ने साहित्यकारों ने राजनीतिज्ञों ने अध्येत्यों के साहित्य प्रेम की अभ्यथना करते समय दुहराया है। लेकिन क्या है ऐसा इस शेक्सपीयर में कि जिसके आलोक के सामने ब्रिटिश ताज के सर्वोत्तम हीरे धूमिल लगने लगते हैं जिसकी गरिमा के सामने सत्तार के सबसे बड़े साम्राज्य से संयुक्त पलड़ा भी हलका होकर ऊपर उठ जाता है ? इसकी शक्ति देखकर मुझे हमेशा ही कल कहानी के माडीवान जगपती की याद आ जाती है जो अपने भाई के घर को आबाद करने के लिए दिन रात बोरे साद लादकर ढोया करता था और उनकी रगड़ से उसकी चॉन एकदम निर्लौभ साफ निकल आई थी। वेश भूषा ऐसी कि लाख श्रद्धा के बावजूद उसी तरह हँसी फूट पड़ती है जस सोमन डफाली को देखकर बचपन में उभरा करती थी। इसी सपाट भाव हीन चेहरे को देखकर गायद बेन जानसन ने कहा था कि उसे चित्रा में नहीं उसकी कृतियों में ही ढूँढना चाहिए।

मैं बार बार सोचता हूँ कि न तो शारीरिक गठन में, न जन्म या मृत्यु में और न तो जीवन में ही इसके कोई ऐसी बात थी जो अनोखी कही जाए। फिर क्या था इसमें एमा जिसने एक व्यक्ति को इतिहास बना दिया एक छोटी सी इकाई को समष्टि की पीठिका पर आसीन करा दिया ?

इस आश्चर्य और परेशानी से लाचार होकर हमें वहाँ जाना पड़ता है जहाँ शेक्सपीयर का व्यक्ति नहीं है, आत्मा है। सूक्ष्म माहित्य में प्रतिफलित आत्मा। सारे कौतूहल और प्रश्नों से आकुल अंतर जन्म ही शेक्सपीयर जगत के द्वार में प्रवेश करता है एक अजीब तरह की गंध से नाक के पुटपुटे भर उठने हैं—
‘आह कसी यह गंध ! तरह-तरह के जंगली और शाही उद्यान फलों की मिली जुली गंध, समुद्र की और पत्थर की, चादनी और धूप की, कब्रिस्तान की और युद्ध भूमि की नाना प्रकार की भीठी-मधुर, तीखी कसली गंध—और इन सबके ऊपर एक और अजीब गंध ! एक खून की गंध, हाँ खून की ! सुना नहीं आपने, लेडी मक्वेथ चीखती हुई पागलों की तरह दौड़ भाग रही है—
‘आह यहाँ अभी भी वही गंध है !’ इस छोटे से हाथ को अरेबिया का तमाम इत्र भी साफ नहीं कर सकता ! आह आह !’

शेक्सपीयर-जगत के अतन्त्र में पहुँचते ही आपकी आँखों के सामने नाना रंगों का एक ऐसा समन्वय दिखाई पड़ेगा कि जैसे आप इन्द्रधनुष के देश में आ गए हो। तरह-तरह के रंगों की यह चित्रसाजी वस्तुओं के ऊपर जब परत की तरह लपेट नहीं दी गई है बल्कि ये रंग इतने जीवन्त हैं कि आप इनकी प्रत्येक सन्धि में एक नयी अनुभूति में डूब उतरा सकते हैं। यहाँ बरतने अपशकुन से भरी भँबेरी रातों की कालिमा है टूटते तारों के रहस्यपूर्ण अग्निदाह का पीला पन है, नीले समुद्र और भूरे पहाड़ हैं, बसों से ढक हरे मदान हैं, और इन सबके बीच रात में नीले आसमान से छनकर आती चाँदनी में खड़ी जूलियट है—
आह ज्यो ही वह बालकनी में खड़ी हुई कि एक मुलायम रेशमी प्रकाश चारा और फूट पड़ा—नक्षत्रों की तरह चमकती उसकी आँखें एक साथ ही घबराती और आसमान साध रही हैं—और कुहरा की चीरती हुई इन आँखों की ज्योति—

हवाके अक्षरों की चीरती ये आँखें

जब चमकती हैं—

पछी गाते हैं यह सोचकर कि

अब रात गेय नहीं है।

—रोमियो जूलिएट २।१

रंग रूप गंध का यह शेक्सपीयर-जगत् वस्तुतः बाहरी कायामात्र है। भीतर की आत्मा कुछ और ही है। उसमें न गंध है न रूप, न रंग उसमें एक ऐसा शालीन प्रकाश है जो मनुष्य और प्रकृति के भीतर छिपे सारे रहस्यों को खोलकर रख देता है। आत्मा के इस रूप का दर्शन सम्भवतः उसी रचनाकार को हो

पाता है जो न माया-रूपा को मोहर मटल में लेता जाता है। य-
गंवार न मटल में घातित होने पर वैभव न भीताये मटल धारिणीत — यद्
नय मरा है ?

समो तो समने हैं वनमी गरीब हवा में
मूत्र होत निराधार बग्न को तरा
मेघ गुडिबग्न बग्न ऊँचो घट्टानिवाज
घात गिनार बग्निर के बग्न ल बिब गुर भी
हो सामी कुल ओ है यहाँ घमना है—
घोर हत निराधार दुःख का कुल भी गरी बगना
हम उत पदाप से बने हैं—
ओ स्वप्नों को बुता है
घोर यह स्वप्नवत् जीवन आदि घोर घात में
बोझो तरा

एक गहरो निद्रा से सम्पुटित है।

—द टेंपेस्ट ४१३

सौगरीपर एक ऐसा दान है जिसका दान मूग्म प्रकृति के साथ मूग साधुप
है। प्रकृति के सभी स्मृत हृदय दान में भाँटा है किन्तु दानका मनोगातन
है या न है कि इन स्मृत स्मृतों में वगनर वह दमरी घातित आभा को न
तो काँपना-सोपना है न उग विरुध या मूमि ही होत दान है। मूग्म प्रकृति
यह स-यह सतिष्ठत के लिए भी घमावर रही है। उगरी घातित प्रकृति को
समझने के लिए एक ऐसा माध्यम चाहिए जो हृदय और बुद्धि दोनों की
मूग्मागिगूग्म घातितों में दान तरह सम्बलित हो वह हतास सपन और भाव
प्रवण हो कि प्रकृति की अमिष्यविन की हृदयी से हृदयी लहर भी बिना विहित
हूए न बने। ऐसी ही घतना के सामने प्रकृति घटना सारा रहस्य मोलकर बिगेरती
है। प्रकृति मुक्ष-लता पयत ममुग्म के समुच्चय का नाम उही है, यल्लि जड घनन
सबक भीतर अमिष्यक्त होने वाली यह एक अत्यन्त सस्तिगाती प्रकृति है। बाला,
सर्फ द तमस्-सत्त्व भूत अविष्य, बला बाष्ठा आदि घतिवाणी छोरो में व्याप्त
बहुविध छायाओं में प्रस्तुटित। इस प्रकृति के सारे निगूढ़ तत्त्वा की समझना
मामूली बात उही है। मनुष्य को ही लें उसमें रूप धावार का जितना अविष्य
है उससे कई गुनी अधिक बहुरयी छन उसने स्वभाव और बाय-व्यापार में
निहित है। कटुता, निममता, हिंसा छल जिघांसा क्रूरता चालवाजी प्रवचना
धोखेवाजी बेईमानी, विश्वासघात मिथ्याचरण अनतिक्रता बलात्कार आदि से
बेकर दया उगारता, दामा, सिष्टता भमता स्नेह प्रेम प्रणय नियम सदाचार
नील सौंदर्य मातृत्व आदि अनेक रंगों के भाव और इनके नाना प्रकार के
मिश्रण मानव प्रकृति के ही विविध रूप हैं। इन सबको सही और मूग्म दष्टि

से वही देत सकती है जो ऊपर के स्थूल आवरण को भेदकर तलवर्तिनी शक्ति की प्रक्रिया को ठीक से समझ सके । शैवसंप्रदाय इस प्रकृति के गूढ़ रहस्यों का ज्ञाता था, क्योंकि प्रकृति स्वयं उसकी चेतना को अपनी अभिव्यक्ति का सही माध्यम समझकर भवित कर रही थी । प्रकृति की स्पष्ट भाषा उसने भले न सुनी हो, किन्तु उसके नेत्रों में जा रय उभरते थे, उन्हें वह अच्छी तरह पढ़ लेता था और अपनी शक्ति भर उसने इन प्रश्नों का उत्तर देने की कोशिश की

यह बोलती है

फिर भी कुछ नहीं कहती ।

तो हुआ क्या ।

शायद तो कुछ कह रही है ।

इसलिए दूँगा सभी उत्तर उसी को

—रोमियो जूलिएट २।१

उसकी महत्ता का सबसे बड़ा आधार शायद यह है कि उसने कभी भी कोमलश्रीर मुन्दर के सामने परुषश्रीर असुन्दर का त्याग नहीं किया । कोमलश्रीर सुन्दर खुद हमारी आत्मा में रहकर हम मोहता है किन्तु वह पूरा सत्य तो नहीं होता । सत्य की अपि क जो खाये हुए सूत्र है उनमें से अधिकांश कल्प के पत्र में ही दिये मिलेंगे । इस लिए शैवसंप्रदाय जीवन के अंधेरे पथ से कतराता नहीं । वह प्रकृति का भक्त है । कृष्णपथ का चित्रण करत समय वह कह सकता है

सुनो सुनो ओ प्रकृति प्यारी देवी, सुनो

यदि किया हो तुमने इरादा भी तो त्यागो

इस प्राणी को निष्फल ही रहने दो

भर दो इसके गम में अध्यात्म

मुझा दो विकसित होते शिशु अंगों को

मुझा दो

इस कुत्सित शरीर से कभी न भागे

अत्र शिशु

इसे देने की प्रतिष्ठा

और यदि आना ही हो लाजिमी

तो रचो एक ऐसा विकल्पाग बीना

पिनीना सा

जो हमेंगा इसे अपनी जिन्दगी से

तटपाता रहे ।

—विंग वीयर १।४

प्रकृति का मोताखोर / १३५

मत्स्य और कल्मष के प्रतिगोचर के लिए प्रकृति से की गई यह याचना भी दासतपीयर के स्वभाव का ही एक रूप है। दासतपीयर को गुनर' में प्रेम है मत्स्य, कि तु उसने सत्य' और शिव' के कठोर से कठोर रूप को भी कभी तिरस्कृत नहीं किया। समयात्मक जीवन के प्रति उमरी यह मनुष्य दुष्ट उसका साक्ष्य की कु जी है। वह धर्म परसोच परी या भूनों के वनन में वापसी सत्ता के प्रति समर्पित-मा प्रतीत होता है कि तु ऐसी बात है महा। इन तरवा के प्रति वह आदृष्ट इसलिये है कि ये मनुष्य-जीवन से सम्बद्ध हैं और उसे गहराई से प्रभावित करत-मा प्रतीत होते हैं। साथ ही यह है कि दासतपीयर मानव प्रकृति का कवि है। वह इस प्रकृति की सारी शुभना और बलुपना को अच्छी तरह समझता है। उसकी एक एक योजना और दुरभिसन्धि की पुन पुनः उगके चित्त में पूजित प्रकृत होती हैं और यह जिना सकोच भव्य कालीन समाज के इन यथाप जीवन को चित्रित कर देता है। यह जानना है कि समूची सुदम प्रकृति की सबसे बहनरीन उपलब्धि मनुष्य ही है और जब उसे समाज में ऐसा व्यक्ति लिखाई पड़ जाता है जो अपनी सारी कमजोरिया के बावजूद महान् और श्रेष्ठ हो, चाहे वह भले ही मनुष्य की क्षुद्रनामा का शिकार होकर मरपत हो गया हो या मर चुका हो तो वह उसकी सम्पत्ति में विद्वानों के साथ सम्मान होकर वह उठता है

जीवन उसका शीलवान था
और सृष्टि के तत्त्व समर्पित ऐसे
प्रकृति स्वयं उठ कहती जग से
बेलो, यह मनुष्य है।

—अलिपत सीद्धर

सच्चे स्वाभाविक मनुष्य के सजन पर आत्मचरितापता का अनुभव करती यही प्रकृति दासतपीयर के काय का प्राणस्रोत है और दासतपीयर इसी प्रकृति के मूलातिगूढ़ भेदों का स्पष्ट द्रष्टा।

अंधेरी रात का गुलाब

२७ मई १९६४

शीपहर बाद । करीब दो बजकर कुछ मिनट । मई की स्तब्ध धूप, इतनी घमकीली कि पेड़ा के पत्ते, मकान, तालाब का पानी सभी घाईने की तरह उसे अपने में जड़ करने में असमर्थ होकर उगल रहे थे—ऐसे में साकल का खड़खड़ाना मुझे हमेशा ही परसानी की बात लगती है । दरवाजा खोला तो पये । उन्होंने न असमर्थ आन पर अफसोस जाहिर किया न नमस्कार ग्राम । मेरे कमरे की कुरसी पर धुमककर बैठते हुए बोल 'आपने कुछ सुना?' एक क्षण मौन, फिर खुद ही हकलाने से बोले 'नेहरू जी नहीं रहे ।'

मेरे मन में एक क्षण के लिए भी अविश्वास नहीं उगा । जाने क्यों मैं आने वाले सफ़ट या अशुभ को कुछ पहले से ही भाप जाता हूँ और धुकि हर बार इसे टालना अपनी शक्ति के बाहर ही रहा है, इसलिए अपने भीतर एक बबल नियतिवादिता निरंतर दृढ़ होती गई है । उस दिन अभी पत्रकार सम्मेलन में नेहरू ने कहा 'मेरी जिंदगी इतनी जल्दी खत्म होन नहीं जा रही है । लोगो ने खुशी में तालिया बजाई थी । उसी शाम अखबार में यह खबर पढ़कर मेरे अन्ततम में छिपी नियतिवादिता बड़ी शकालु की तरह फुसफुसाई थी—कहीं यह वाक्य उस नील रहस्यमयी का 'यग्य न बन जाए' का यह नियति पराजित हो जाती ।

प को किसी ऊँचरी काम से जाना था गए । मैं वैसे ही निश्चेष्ट बंठा रहा । खिड़की से तालाब परे का बाग बगल की सड़क देखता मोन ।

घटनाओं का एक अजीब वक्त होना है । असल में भाग्यवादी वे हैं जो काले वक्त के भीतर एकाएक रोगनी दख लेते हैं—उनका जीवन या इद गिद में वे वक्त पूरे होते होते अचानक सुखद मोड़ ले लेते हैं—किंतु मैं तो इम अपूरे अतिमय वक्त को देखकर इमकी चरम परिणति का अघनम ध्रुव को सोच-मोच

पर ही पक जाता हूँ। चीनी आक्रमण पराजय, महंगाई, प्रजा में अन्ध-तोष और निराशा, बलह, भ्रष्टाचार, पाकिस्तान के साथ निरंतर बढ़ता हुआ संघर्ष अ-दुल्ला की रिहाई के बाद तेजी से घटनाओं की धुमधन, परिस्थितियों का वगैरे से बाहर उच्छ्वसल श्रिया-कलाप—इतना तीव्र घटनाचक्र और मुझे जाने क्यों बार-बार लगता था कि आंधी का प्रचण्ड वेग अभी अंतिम थपेड़ा मारने को बाकी है—और अचानक यह खबर! दौड़ते हुए ध्रुवीय विदुषी बर्रा ही उठे! कालिमा का घत्ता पूरा हो गया—नेहरू नहीं रहे!।

यह भी एक क्या व्यक्ति था! इसे लेकर जितनी कुत्तन मेरे मन में हुई है, उतनी शायद ही किसी के प्रति हुई हो। जाने क्यों मन के भीतर एक आकांक्षा रही है और वह निरंतर पनी और मजबूत होती गई है कि काल अथवा ये ऐसा कर जाते—कई-कई बार इसने कुछ न-कुछ घसा किया जरूर तभी तो प्यास बढ़ती गई पर अक्सर यह वह कर नहीं सका, जो इस जलती प्यास को बुझा देता। मुझे ठीक लगात नहीं, पढ़ा बाद में कि अपने देश में एक ऐसा व्यक्ति है जो पतला दुबला सुंदर तन अन्न का आकर्षण सा पुरुष है, जो चाहता तो राजकुमारों की तरह रहता पर जिसने अलग फकीरी का बाना धारण कर लिया है, जो मित्राज का बड़ा गरम है दिल का बड़ा कोमल। एक क्षण आग, दूसरे क्षण पानी। जो हजारों हजार नवयुवकों के दिल दिमाग पर शासन करता है जिसका दशन के लिए जनता की भीड़ समझती है जिन्होंने १९२६ में रावी तट पर पूण स्वराज्य का नारा बुलाया था—मैंने यह सब बाद में पढ़ा क्योंकि तब तो मैं सिर्फ एक साल का शिशु था।

स्वतंत्रता! इस शब्द का जादू क्या होता है यह मुझे १९४२ के पहले नहीं मालूम था। १९४२ के बाद से निरंतर इसके बारे में सोचता विचारता रहा हूँ। इसके भीतर कितनी परत है, यह भी धीरे धीरे बरके खुलती गई हैं। इसकी आगिरी परत को देखकर ही दास्तोएवस्की ने कहा था— शायद मनुष्य और मनुष्य-जाति के लिए इतनी निरवधारण और कुछ नहीं है जितनी स्वतंत्रता। अपनी चरम सीमा पर यह अकेलेपन का अभिग्राह भी लग, दम-लिए साथ में जब कहा कि मनुष्य स्वतंत्र होने के लिए अभिशप्त है तो असंगत नहीं था। इस स्वतंत्रता के इतने पहलू हैं इतने विभेद हैं इतने रूप हैं, फिर भी सबके भीतर यह एक ही शक्ति ऐसी अखण्ड सत्ता है, कि इसे समझने के लिए इसे जीना जरूरी लगता है। १९४२ के बाद से इसकी अनेक परतों को मैंने समझा, किसी न किसी रूप में शक्ति और शोषण और जिया किंतु इस जीने में जादू था विवर्तता और कृत्य की भावना ही थी। जादू तो सिर एक बार ही बढ़ा और वह १९४२ में ही जब मैं जमानिया हाईस्कूल में सातवीं कक्षा का विद्यार्थी था। नारा लगाने की शक्ति तब भी मिली थी,

घोर जोग म मुन-बुध को बठने की विवशता उस समय भी थी। तार-टेलीफोन बन्द रह्ये, रेल की पटरिया उमड़ रही थीं, पुल टूट रह्ये स्टेनाना, डाकखानों, कचहरिया सरकारी इमारतों पर निरगा फहराने की उमंग का धार-पार न था— घोर तन धीरे धीरे वह तिन भी आया जब टूट पुलों को जोड़नी पटरिया को ठीक करती गोरे सनिकों की 'बोगी आई और जमानिया मे गोनी चली, बलिया का स्वदेशी राज्य छिन मित्र हुआ। जनता पर बन्दूक के कुत्ता, और सगीनों की बपा हुई। आत्मी पडा से ओधे मुह लटकाय गए। नाक मे मिच का घुसा लिया गया। घनी मानी लूट गए। औरता पर बलात्कार हुए—'४२ का विद्यार्थी आन्दोलन नेताओं के हाथ से बाहर निकल चुका था, हिमात्मक हो गया था—मन ग्लानि से भरा था। आन्दोलन का उत्तरदायित्व स्वीकार करने के लिए कोई बड़ा नेता तैयार नहीं हुआ, यानी यह मारा तरण जोश निरपेक्ष था ? यह सारी उमंग बमनलव थी ? सितम्बर की वारिण मे रात आसमान क नीचे, प्रसफन त्रान्ति के विद्यार्थी सैनिक जनता पर हाने वाले प्रत्याचारा के लिए प्रपन को दोषी मानकर ग्लानि और लज्जा से सिर झुकाए बठे रहते लोगों से मुह छिपाए दधर-उधर धूमत रहत। घर के बड़े-बूढ़े हमारी मालायकी, मूलना और बचपने को वास-कोसकर अपने दुख के घाँसू पोछ रहे थे— रेलव लाइन पर गाँव के लागों को बगार-पहरा देना पड़ता। खाना खाकर रेलव की ओर जाने वाली टोनी जी मरकर हम मालिया दती। पन्नाई बन्द थी, कृतविद्य लज्जा स मिर झुका था। हमन तन्नाई क जोग और उमंग मे जिसे बहुत महन् और पवित्र काय समझ लिया था उसे अपने ही लोग प्रनुचित कहकर वितुष्ण हो गए थे—तभी एक ऐसा तिन आया कि हमने सुना कि जेल स निकलत ही नेहट ने भाषण लिया कि सन '४२ की त्रान्ति का उत्तरदायित्व मुझ पर है। तो वह त्रान्ति प्रमफन न थी ? शहीदों का खून पानी न था कृबानिया बवकूफी न थी।। मघ उस तिन हमारे पैर खुशी के मारे धरती पर नहीं पडत थे। तन मन पर पडा स्याह परदा जम एकबारगी भटके से हट गया था और उस बदनी दुनिया मे चारों तरफ मरे सामने बस एक ही तसधीर थी—जवाहरनाल नेहट।

नेहट न इस स्वतंत्रता' त्रान्ति क प्रति किनना आक्षेप किननी प्रभीप्ता जगाई, यह सब कुछ सबके सामने है। स्वतंत्रता हमारा जयसिद्ध अधिकार है का नारा प्रत्येक समाज म मानवीय पुण्याय के प्रतीक क रूप म पूजित और प्रभीसिद्ध है किन्तु क्या यह सच नहीं है कि मानवता का इतिहास व्यक्ति के इस अधिकार के अपहरण की भयानक कुत्साभा से भरा हुआ है। मानव मन की इस प्रमृत कत्ती को तोडन के पागविक कृत्य केवल धार्मिक समाज और मध्यकालीन युग तक ही तो सीमित नहीं हैं। साम्य-न्याय निरन्तर सम्य हान

सम्प्रति समाज की भी दिग्दर्शनी नहीं रहा क्या ? गणिया और प्रफ़ीवा के सच उदित राष्ट्रों में एक एक करने सनिक तानाशाही का बीभत्स रूप उभरता गया—सबहारा बग की भगलकामना के मनोरथ ध्वज भी स्वतन्त्रता कामी व्यक्तियों के रक्त से लाल होते रहे । स्टालिन के शासन में व्यक्ति स्वातन्त्र्य की जो निमग्न हत्या हुई उसकी गायार्ण अब पूजीवादी प्रतिप्रियावादिया की बल्लना की उपज ही नहीं रही । स इचेव के बयान और साधिया ने 'नेकेड गाड' के कुकृत्यों पर क्या प्रामाणिकता की मुहर नहीं लगा दी ? हिमालय के पार चीन में व्यक्ति के अधिकारों का जो इतिहास लिखा जा रहा है उसे तो भविष्य का कालपुरुष ही उदघाटित कर सकेगा । चारों तरफ तो हम व्यक्ति की स्वतन्त्रता को सीलने वाली लपटें ही दिखाई पड़ती हैं ।

ऐसी लपटों से घिरे एक भूमिखण्ड का नाम भारत है जहाँ नेहरू का शासन था । और ससार का कौन शासक था जिसे नेहरू से अधिक जन-श्रद्धा और भक्ति का अवदान मिला हो । भारत की लाख लाख जनता नेहरू के सामने श्रद्धा से झुक जाती थी । यह अथ भक्ति और समर्पण किस राजनेता को पागल नहीं बना सकता ? यह उमादक शराब किसे प्रमत्त नहीं कर सकती ? जनता की इसी अथश्रद्धा को लक्ष्य करके नेहरू ने लिखा था— यह धारणा कि मैं हूँ प्रभावित करके किसी भी तरफ मोड़ सकता हूँ मेरे मन में इनके दिलों दिमाग पर अपने अधिकार की भावना को जगाती थी और मेरी शक्ति की अमीक्षा को सतुल्य करती थी । और वे अपनी श्रद्धा और भक्ति के विश्वास से मेरे हृदय पर एक सूक्ष्म ढग का ऐसा अत्याचार करते थे कि मेरे अतन्तम को गहराई से छूकर बसा ही सबेगात्मक प्रतिदान देने के लिए मुझे विवश कर देते थे । केवल एक वीतरागी महात्मा या शायद कोई अमानवीय दृष्टि ही इस सब कुछ से अपने को अप्रभावित रख सकता है ।

नेहरू ने अपने शासन काल में अनेक बार ऐसे निणय लिए जो जनता को रुचे नहीं । अनेक बार उनकी कटु से कटु निन्दा हुई । लेकिन वे थे कि जैसे इस सबसे अछूते अलग अलग बने रहे । बड़ा नाटकीय है यह व्यक्ति । माला तो जपता है जनतन्त्र की समाजवादी मानव प्रतिष्ठा और व्यक्ति स्वातन्त्र्य की पर करता है हमेशा मनमानी । बुद्धिजीवी निरन्तर इस आकाश से पीड़ित रहे कि जाने कब नेहरू निरंकुश शासक बन बैठें । ज्यों-ज्यों राष्ट्र निर्माण में बाहरी सम्बन्ध और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में निराशा उपजो पनपी आलोचना का स्वर तीव्र हुआ कि हृदय के भीतर किसी अथ सन्धि में इस भावना ने सिर उठाया बस अब वह सब नहीं सुनेगा और एक सुबह उठकर हम अन्वचारों में पड़ेंगे कि नेहरू ने अपने को सर्वोच्च शासक घोषित करने सारे अधिकार अपने हाथों में लिए । इसी समय नेहरू पर किसी ने 'चाणक्य' के छद्मनाम से

एक लेख लिखा और अपने मन की सारी गंजाया की घनीभूत वाली छाया से पूरे वातावरण को आच्छादित करते हुए निणय दिया—‘एक हल्का-सा भटका, और बस जवाहरलाल मगर गति से चलते जनतंत्र के टण्ट घण्ट की एक तरफ करके तानाशाह में बनल सकते हैं। वे तब भी शायद प्रजातंत्र और समाजवाद की दावाली और नारे दुहराते रहेंगे मगर हम जानते हैं कि किस तरह तानाशाहों ने इस तरह की भाषा से अपने को मजबूत किया है और कसे समय आने पर इसे बकवास कहकर एक तरफ भुत्त दिया है। साम्राज्य परिस्थितियों में वे शायद एक सफल और योग्य शासक ही बने रहते, किन्तु इस प्रातिकारी युग में सीजरशाही हमेशा ताक में बठी रहती है और क्या यह सम्भव नहीं है कि नेहरू सीजर की भूमिका में उतरने की कल्पना कर रहे हों?’

इस निबन्ध ने चारों तरफ खलबली मचा दी। अनेक लोगों के मन की गुप्त आशंका और भावना को जैसे किसी ने शब्द दे दिए हों। छद्मनाम से ही सही, किसी ने सच्ची बात कहने का साहस तो किया? किन्तु यह कठोर आरोपपूर्ण दावावाली में व्यक्त निम्न आलोचना लिखी किसने?—खुद जवाहरलाल ने। यह निबन्ध अपने बारे में उ होने खुद लिखा और इतिहास साक्षी है कि जवाहरलाल सीजर नहीं बने। इतिहास साक्षी है कि ससद भवन में तीखे से तीखे प्रहारों को नेहरू ने सुना और सहा। इतिहास साक्षी है कि घनघोर से घनघोर राष्ट्रीय सङ्कट के समय भी उन्होंने किसी व्यक्ति, राजनीतिक दल या पार्टी के विरुद्ध ऐसा कोई कदम नहीं उठाया जो मनुष्य के सावधानी अधिकार यानी उसकी स्वतंत्रता में बाधा पहुँचाए।

व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और मनुष्य के सावधानी अधिकारों के प्रति जवाहरलाल हमेशा प्रणतगिर रहे यह उनका हमारे राष्ट्र को सबसे बड़ा भवदान है लाल गुलाब का मण्डहारी फूल भारत राष्ट्र के नाम विरासत में।

यह तीन मूर्ति मांग है। प्रधानमंत्री भवन। नीचे के दीर्घ कक्ष में पलंग पर गुम्फा खादी की चादर में ढँका जवाहरलाल का गव। सिर्फ मुख भाग खुला है। मरु के बाद किसी भी व्यक्ति के चेहरे पर इतनी गाम्ति और इतनी शीतलता। कल रात से ही लाखों-लाख लोग आँखों में आँसू भरे इस गव की निरन्तर परिश्रम कर रहे हैं—आकाशवाणी से ‘कमेंटेटर’ बोल रहा था

परिश्रमा? क्या यह सम्भव है कि हम इस गव के समूचे अर्थ को खोलकर रख सकें? परिश्रमा उस गव की, उस जीवन की उस व्यक्ति की परिश्रमा उमड़े मानस में निरंतर आबुल उमदत विचारों की परिश्रमा उस परिश्रमार्थी की जिसने राष्ट्र के एक छोर से दूसरे छोर की अनगिनत परिश्रमा की जिसने अपने लघु चरणा से पूरे भू मण्डल का अपनी मानवीय परिश्रमाओं में बाँध लिया—परिश्रमा किसकी?

परित्रमा क्या ? इसलिए कि वह जाता था कि स्वतन्त्रता एक अविभाज्य इकाई है । यदि मनुष्य की स्वतन्त्रता ससार के किसी भी कोने में ग्राह्य और विदीर्ण हुई है, तो उसके घाव की पीड़ा सबत्र व्याप्त स्वतन्त्रता के चेतन शरीर को बेचन कर देगी । नेहरू के सामने मनुष्य से बड़ा कोई सत्य नहीं था, और स्वतन्त्रता से बड़ा कोई मात्र नहीं था ।

और मुझे लग रहा है कि यह परित्रमा उस घाव की नहीं हो रही है मनुष्य और उसकी स्वतन्त्रता की हो रही है ।

मनुष्य ? जवाहर की प्रतीति या विजन का मनुष्य भी कितना भिन्न था । नीत्से का डायानीसियस मनुष्य भारतीय धातावरण में ! एक ऐसा मनुष्य जो घम और रुढ़ियों से अलस हो जो विज्ञान की रोशनी में सत्य की परख करने के लिए कृतसकल्प हो किन्तु जो विज्ञान के वाले पक्ष से कभी समझौता न करे, जो खुद अयपूर्ण जिन्दगी लिए और दूसरे को बसी ही जिन्दगी जीने दे । उनके मन में एक ऐसे आधुनिक मनुष्य की कल्पना थी जो मानवता की लम्बी विकास यात्रा की सहज उपलब्धि होगा । उन्होंने आधुनिक मनुष्य के बारे में लिखा—‘आधुनिक मस्तिष्क असल में एक बेहतर तरह का आधुनिक मस्तिष्क वह है जो व्यावहारिक और वास्तविक मूल्यों से सशुक्त हो नैतिक और सामाजिक हो, दूसरों के विचारों की कद्र करने वाला और मानवतावादी हो । वह सबदा सामाजिक अभ्युन्नय के वास्तविक आदर्शों से प्रेरित हो । उन आदर्शों से जो युग की आत्मा के प्रतिनिधि होते हैं गुणधर्म होते हैं । (इस्किवरी भाषा इण्डिया पृ० ५७२)

आगे चलकर इन आदर्शों को उन्होंने दो प्रमुख वर्गों में सीमित किया है—मानववाद और धार्मिक चेतना । वे यह स्वीकार करते हैं कि दोनों आदर्शों में परस्पर संघर्ष की स्थिति भी आती है किन्तु आधुनिक मनुष्य की तो यह विशेषता ही होनी चाहिए कि इन दोनों के बीच एक प्रसन्न समन्वय घमिता खोज सके और एक वैज्ञानिक मानवतावाद को व्यवहार भूमि में उतार सके ।

वे विज्ञान की सीमाओं से भी परिचित थे इसीलिए उन्हें एक तरफ जैम्स जोस याद आते हैं जो विज्ञान का मुख्य तत्त्व यह मानते हैं कि मनुष्य अथवा प्रकृति को अपने से भिन्न पदार्थ नहीं मानता । तभी उन्हें उपनिषदों के ऋषि भी याद आते हैं जो पूछते हैं कि ‘ज्ञाता येय कसे हो सकता है अथवा दूसरों को देखने वाली आँखें खुद को कस देख सकती हैं । और तब नेहरू को लगता है कि आज का वैज्ञानिक दार्शनिक की भूमिका में भी उतर रहा है और वे बड़ी प्रसन्नता के साथ आइंस्टीन की बात दोहराते हैं कि आज के हमारे इस भौतिक युग में केवल गम्भीर वैज्ञानिक कायवर्ता ही पूर्ण धार्मिक मनुष्य है ।

समन्वय की यह भाँग तीव्रतर होती जाती है और नेहरू को लगता है कि

विज्ञान और मानव म, आदर्श और वास्तविकता में प्रकृति और मनुष्य में समाज और व्यक्ति में समन्वय की सही प्रतीति और प्रक्रिया ही आधुनिक मनुष्य की अभीप्सा का रूप है, फिर भी 'हिस्वरों और इण्डिया' का 'पुरानी समस्या आधुनिक दृष्टि' का अध्याय समाप्त करत हुए वे लिखते हैं—'अपने सम्पूर्ण तत्व और बुद्धि की शक्ति के साथ, अपने सम्पूर्ण उपलब्ध ज्ञान और अनुभव के बावजूद हम जीवन के गुप्त भेदा के विषय में बहुत कम जानते हैं और केवल रहस्यात्मक प्रक्रिया के द्वारा ही इसका थोड़ा बहुत अनुमान कर सकते हैं। फिर भी हम हमेशा इसके सौंदर्य की प्रशंसा तो कर ही सकते हैं और इसकी ईश्वर सदृश रचना शक्ति को कला के माध्यम से व्यक्त कर सकते हैं। यद्यपि हम गलतियाँ करने वाले दुबल, मत्पुशील प्राणी हैं और यह जीवन एक अनिश्चित लघुकाल में सीमित है फिर भी हममें कहीं न-कहीं अमर देवताओं का तत्त्व भी विद्यमान है। इसलिए हमें कभी भी—जसा अरस्तू ने कहा है उनका अनुशासन नहीं मानना है जो हम मत्पुशील मनुष्य कहकर वैसे ही विचारों में जीने को कहते हैं। बल्कि हम अमरता के लिए प्रयत्न करना हैं और वह कोई भी प्रयास छोड़ना नहीं है जो हमारे भीतर के सर्वोत्तम को उस ओर ले जाता है।' यह नेहरू का रोमण्टिक रूप है।

मनुष्य के विषय में ऐसी उदात्त कल्पना थी नेहरू के मन में। किन्तु विश्व मनुष्यता का जो रूप उनके सामने था उसमें गरीबी, जहालत, अशिक्षा में घुटते मरते असह्य भारतीय म, डालर का देश अमेरिका था साम्यवादी सोवियत रूस महान शक्तिसम्पन्न राज्य सत्ताएँ साथ ही गुलामी की बडियाँ में जकड़ा एशिया और अफ्रीका वणविद्वेष धर्मोन्माद धनी गरीब का अपटनीय अंतर आधुनिक शिक्षा के बल पर राकट युग में जीनवाले सोप तो साथ ही गोबर युग के कीटसुंय जीवन वाले असह्य प्राणी—और इस पूरे गोल भूमण्डल का अपने मृत्यु प्रांचल में समेटने की उतावली युद्धदेवी! इसलिए इसी के बीच और इसी परिप्रेक्ष्य में अपने को रखकर हमें सोचना चाहिए कि नेहरू ने मनुष्यता के लिए क्या किया?

२६ मई १९६४

हजारों लोग रो रहे हैं। बूढ़े, युवक वच्चे। नहुएँ बहनें। आधुनिक भारत का निर्माता चला गया। भारत की हानि अनुलनीय है विश्व की भी कम नहीं। वे शान्ति के पैगम्बर थे। वे स्वतंत्रता के मन्त्रदाता थे। ज्यानि दलाका बुझ गई। एशिया का नक्षत्र अस्त हो गया। आज विश्व को उनकी अत्यन्त जरूरत थी। रूस के विश्वस्त मित्र थे। स्वतंत्र विश्व का ग्यात्र म। एक रोगनी जिमने विश्व को अपनी अदम्य राजनीतिज्ञता और आकाश में

प्रकाशित किया था बुझ गई । वे भारत पाकिस्तानी उप महाद्वीप के सवश्रेष्ठ पुत्र थे । वह स्वन त्रता के सनानी थे ।

उनने अमाव मे हिमालय भहरा गया है । भूकम्प हुआ है । पवतारोही, वैज्ञानिक विद्यार्थी, व्यवसायी, खिलाडी, पशुपालक माली, किसान—सभी विगलित हैं । सगार भर के समाचार पत्र काले बाढरो से भरे हैं । भण्डे भुके हैं । सयुक्त राष्ट्र मे भी नियम के प्रतिकूल जहाँ केवल देश प्रमुख की मृत्यु पर ही भण्डे भुक्ते हैं शोक का वातावरण है । विदेशो से अनेक प्रतिनिधि आए, और आज लौट रहे हैं । उनके दाह संस्कार में शामिल होने के लिए होड़ लगी है । अनेक देशों मे शोक सप्ताह मनाये जा रहे हैं ।

हम रो रहे हैं, पर भीतर-ही भीतर प्रसन्न भी हैं कि हमारे बीच एक ऐसा भी व्यक्ति था जिसकी मृत्यु दुनिया को एक दान के लिए स्तब्ध कर गई । एक दान को ही सही बड़े-से बड़े माये उसकी याद मे भुक्त गए ।

कल परसो दस दिन बाद महीने बप बीतेंगे । इन तीन दिनों का यह दमघाट चारों तरफ सदस्य रूप में फैला सबके मन मन को छता वातावरण बदल जाएगा—यद्यपि अब भी हमारे सामने भाखड़ा-नगल हागा नागाजूत बांध होगा दामोदर बली होगी अणु भट्टी अफ्फरा होगी, विज्ञान भवन, कृषि भवन हागे, प्राविधिक शिक्षा की अनेक संस्थाएँ होगी, यानी नेहरू की टेक्नोक्रैसी विज्ञान प्रेम, प्रजातान्त्रिक संस्थाएँ अकादमियाँ अस्पताल स्कूल सड़कें, बांध योजनाएँ, उनके कुछ-न कुछ बदलते बनते रूप हमारे सामने होंगे । मात्र कितायें होगी जो उठाने लिसी । अनेक भाषणा के समूह जिनमें मानव जाति में सम्पन्न सभी प्रमुख समस्याओं पर एक विजयरी की छाप अंकित होगी ।

पर क्या इसी कारण राष्ट्र की रोनी-नलपती जनता यह पूछना भूल जाएगी कि अभी मजिद कितनी दूर है प्यारे नेता ? अभी रागनी मान में कितनी दूर है ?

जयप्रकाश ने कहा—देश का नेता सबके मन में जनता को छोड़कर चलता गया ।

राजाजी ने सम्झी उर्ताम के साथ कहा—मगवान् इग देश की रक्षा करें ।

कल सड़क के बांस्त में हो सकते हैं नेहरू की मृत्यु का यह गमगीन वातावरण तब हमारे बीच न हागा तब क्या अनेक लोग जयप्रकाश और राजाजी के शब्दों को ही नया राष्ट्रारम्भ ?

जल्द दाहराएँगे । नेहरू का जीवन ही क्या भाग्य भर में प्रसन्न नहीं उठा ये । और फिर जनता मगवान का तरंग ही ला है । बहुतों हर एक को अपनी उपयोगिता के तराजू पर ही तोलती है । जो उठपुठा है उस पर धारा में सारा सनी है जो व्यर्थ है उस विनारा पर पेंच दनी है ।

फिर क्या निममना के साथ इनका पुछा जा सकता है कि जाना नेहरू में

वह सब क्यों माँगती है जो व दे नहीं सके या दे नहीं सकते ?

वह इसलिए कि जनता के मन पर गलत या सही ढंग से यह छाप डाली गई कि नेहरू सब कुछ दे सकते हैं। जनता भोली होती है, पर हमारे बुद्धिजीवी भी जो नष्ट से सब कुछ न पा सके, रूठ जाते हैं तो बड़ा अचम्भा होता है।

नेहरू प्रकृति की उपज हैं परिस्थितियों की देन। उसके तन और मन में भी वे तमाम दुबलताएँ थी जो एक आदमी में होती हैं या आदमी को आदमी बनाए रखने के लिए होनी चाहिए। जिन परिस्थितियों ने हमें नेहरू दिया, उन्हीं ने उनकी दुबलताएँ भी।

मैं पूव और पश्चिम का एक अदभुत मिश्रण हूँ। सब जगह बेजगह घर कहीं भी नहीं। शायद मेरे विचार और दृष्टिकोण पूरव की अपेक्षा पश्चिम के ज्यादा नजदीक है। पर भारत अपने सभी बच्चों की तरह मुझे भी चिपका लेता है और मेरी पृष्ठभूमि में, अवचेतन में कहीं सबड़ा, या जो भी सस्या हो ब्राह्मण-पीढ़ियों के जाति संस्कार छिपे हुए हैं। न तो मैं उस प्राचीन उत्तराधिकार से मुक्त हो पाता हूँ और न ही अपनी आधुनिक अर्जित उपलब्धि से। ये दोनों ही मेरे अंग हैं। और यद्यपि मैं मुझे पूरव और पश्चिम दोनों जगहों पर सहायता देते हैं तथापि मैं मेरे भीतर एक आध्यात्मिक अकेलेपन की भावना भी जगाते हैं न केवल सामाजिक कार्यों में बल्कि व्यक्तिगत जीवन में भी। मैं पश्चिमी जात में एक अजनबी और बाहरी हूँ और अपने मूल देश में कभी-कभी मैं अपने को एक निष्कासित की तरह पाता हूँ।'

नेहरू का यह अजनबीपन उह साहित्य का एक बेहतरीन आधुनिक नायक तो बना सकता था एक सफल शासक नहीं। पर व्यक्ति की भाग्य विडम्बनाओं की तरह राष्ट्रों की भी विडम्बनाएँ होती हैं कि नेहरू का एक ऐसा बड़ सहयोगी नहीं मिला जो उनके विजन को काय रूप में उतार सके। वे इतिहास के स्वप्नदृष्टा जबरनस्त थे इतिहास को मोड़ देने वाले कायगील-व्यक्तित्व उतने बड़े नहीं।

वे बहुमुख जगत में निरन्तर छाए रहे पर यह अक्सर उनके अतमन के विक्षेप का ही परिणाम था। वे बौद्धिक अवश्य थे, पर सवेगात्मक भी कम न थे। इसी कारण राजनीतिक सघर्षों में वे कठोर निष्णय नहीं ले पाए। एक स्थान पर अपनी मन स्थिति का निष्णय करते हुए उन्होंने लिखा है— मेरा असली सघर्ष मेरी आत्मा के भीतर चलता रहता है एक अतप्त बुभुक्षा के आन्तरिक जगत और बाह्य परिस्थितियों का सघर्ष। सघर्ष भावनाओं और विचारों का आकाशाओं और मायनाओं का। मैं इन विविध अधिकार जमाने की इच्छुक शक्ति का युद्ध-स्थल बन जाता हूँ। मैं इनसे बचन के लिए,

समय और सवादित पाने व प्रयत्न में बाह्य सज्जिता में बूट पड़ता हूँ।”

सच तो यह है कि नेट्स का भक्तिपरस्पर विरोधी तत्त्वा का, उनकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म छायाओं से रजित एवं ऐसा अठकोण पटल है कि उसे ठीक से समझ पाना बहुत कठिन है। व हमारे वर्तमान विश्व की सञ्जाति कालीन परिस्थितियों की बेहतरीन उपलब्धि थे। अगल वर्षों में एशिया और अफ्रीका में बदलते हुए रंगमंच पर जो कुछ दृश्य और जियाएँ घटित होंगी, उनका वे सूत्रधार थे, किंतु अफसोस कि नाटक समाप्त होने में पहले ही निर्दोश मृदा निद्रा में सो गया।

मुझे बार बार यह लगता रहा है कि स्वतंत्रता की लड़ाई तो जिन के उजाले में हुई, किंतु देश का निर्माण के सक्षम के साथ ही गाम घिर आई। नहकूँ य कि इस कारवा की अघरी रात में भी धीरे धीरे उठते गिरते राह टटो लत ही सही, एवं निश्चित मजिल की ओर ले जा रहे थे—किंतु अब तो यह भविष्य ही बताया कि देश का यह कारवा उस गुलाब की सुगंध के सहारे मजिल की ओर बढ़कर सुबह की रोजनी पर लता है या अघरी रात में कहीं भटक जाता है।

उनकी आकांक्षा तो यही थी कि उन्हें अभी अनेक प्रतिज्ञाएँ निभानी हैं इसलिए धकी हारी आत्मा अभी नहीं सोएगी। पिछले एक वर्ष से उनकी मज पर उनके ही हाथों लिखी अमरिकी कवि राबर्ट फ्रास्ट की पंक्तियाँ रखी हुई थी

वन कितने सुंदर हैं घने अधरे
किंतु वचन हैं कई निभाने मेरे
मीलों जाना अमा मुश्किल है—
फिर आऊँगा नौद पास में तेरे।

फिर आऊँगा

किन्तु वे नींद के पास भैसे न आते महानिद्रा उनके पास अवश्य आ गई।

बँधी दृष्टि मुक्त हँसी

युग ऐसे सहज ढंग से बीत जाता है ? यह प्रश्न कई दिनों से मन को उन्मथित कर रहा है । एक मोमूसी रात बीतने पर भी सुबह होती है रोशनी होती है शोर गुल और चह चह होती है । दहा के साथ एक युग बीता है यह भी कहते हैं, पर क्या बीता है यह पक्क म नहीं आता । किन्तु क्या जो पक्क म नहीं आता वह सत्य नहीं होता ? बहुत सी चीजें ऐसी होती हैं जो इस कदर आती और जाती हैं कि हमारी बाह्य धर्मी चेतना उसे समझ नहीं पाती । राजनीतिक व्यक्तियों के साथ युग परिवर्तन काफी स्पूल और बाह्य होता है, वह तुरंत समझ में आ जाता है । वाकधर्मी व्यक्ति का जगन अतजगत होता है, इसी कारण उसके कम और उपलब्धियाँ प्रायः ही ऊपरी स्तर के जीवन में भ्रष्ट होती रह जाती हैं । दहा को मैंने देखा था, बहुत नज़दीक से नहीं । कुल दो चार बार का ही मिलना था । सीता निवास में भाई भानूदत्तजी ने परिचय कराया था एक विवेकमय परिचय । यह भी बताया कि खूब लिखत पढ़त हैं । दहा मुसकराए थे, एक सदिच्छा भरी हँसी । साहित्य ज़रूर पढ़ा उनका नज़दीक स । अक्सर इसलिए कि पाठ्यक्रम में भी उनका कुछ न कुछ रहा ही छोटी कक्षा से ऊपर तक । खड़ी बोली का लेखक हैं । वाक से जुड़ा अक्षरों से समुक्त । कभी कभी ऐसे भी क्षण लेखन के दौरान आए हैं जब लगा कि जो कहना चाहता हूँ वह शब्दों में बँध नहीं पा रहा है । वस हमारी भाषा बहुत लचीली और इच्छा के अनुकूल ढलने वाली है । पर ऐसा तो कभी न कभी हुआ ही है कि जब लगता है कि—वाक यह कुछ और चेतना और सर्वांगित शक्तिवाली होती । उसी क्षण दहा की याद आती रही है । खड़ी बोली के साहित्य की उमर के दहा प्रतीक थे जैसे । अभी कल की ही तो बात है जब उन्होंने सारे अवरोधों और विरोधों के बीच खड़ी बोली को सूक्ष्म वाक्य-बोधों और अभिव्यक्तियों के माध्यम के रूप में अपनाया था । तब कौन

जाता था कि दाती जल्दी यह भाषा रच गाना था रच गीर गाता प्रचार
 व सफटा म फिर विमान जागमगा था रच की सम्पूर्ण मायति और गारम्या
 गम-परिपाटी के भार-बहुत का माध्यम बानी । इसीलिए मैं रच की मृगु को
 युग परिवर्तन । कहकर नहीं बोनी की घात माया व पत्र मुरास की
 समाप्ति ही कहना चाहूँगा । असल में ददा हमारी भाषा की सम्बन्धी माया के
 पहले जन्मा था । हम छोड़कर य रहा गा । उन्हें छोड़कर उनकी सागा
 सहायताया स वसित होकर हम प्राण जाता है । मानी जाता म मूट रही है ।
 इसलिए यही हम बल-गुजों की जीत कर सनी चाहिए । प्राण व विम वाकी
 कोयला पानी सँजो सना चाहिए ।

हर साहित्यकार का एक व्यक्तित्व होता है । पहल के सोपा का व्यक्तित्व
 विताया प्रावपक था । मझे बार-बार यह लगा है कि प्राधुनिक साहित्यकार
 किसी व्यक्तित्वहीन जगत म गो नग हैं । भीड़ का व्यक्तित्व जाने या मनजाने
 छोड़ लिया है हमने । मैं यह नहीं कहना कि सबका व्यक्तित्व ददा की ही तरह
 होना चाहिए । यसा ह्य नहीं सजता । कुछ नया कुछ भिन्न होना ही । पर
 कुछ होना तो जरूर चाहिए । महादेवीजी एक घात विष प्राता या उनना ।
 हमम से घनक ने उनको देगा है इसलिए चित्र की जरूरत नहा पर चित्र
 स्मृतियों को तरौनाजा तो कर ही जाता है । इसलिए एक बार इस गान विम
 को देख सने म वाई मज नहीं ।

‘साधारण मझोला कब साधारण छरहरा गेहूँघा या हलका साँवला रंग,
 साधारण पगड़ी भंगरखा धोती या उसका प्राधुनिक संस्करण गांधी टोपी,
 कुरता धोती और इस प्रावक भारतीयता से सीमित साम्प्रदायिकता का
 गठब धन करती हुई तुलसी की कण्ठी, सब कुछ साधारण—इसी कारण अपने
 रूप और वेप दोनों मे वे इतने अधिक राष्ट्रीय हैं कि भीड़ मे मिल जाने प
 सीध ही खोज नहीं निकाले जा सकते ।

यह एक ऐसा व्यक्ति है जो ऊपर से बिसकुल साधारण सामान्य ही बना
 रहा क्योंकि वह जानता था कि व्यक्तित्व ऊपर के साधारण म नहीं घनत की
 धारणाओं और चरित्र मे होता है । गुप्तजी का स्वभाव भी महादेवीजी की
 दष्टि मे बधा था— उनके चौड़े ललाट पर क्रोध और दुश्चिन्ताओं की क्रूर
 लिखावट नहीं है । सीधी भकुटियों म असहिष्णुता का कुचन नहीं है ऊंची
 नाक पर दम्भ का उतार चढ़ाव नहीं है । और होठो मे निष्ठुरता की चक्रता
 नहीं है । जो विनोयताएँ उ हे सबसे मि र कर देती हैं वे हैं उनकी बंधी दष्टि
 और मुक्त हसी । महादेवीजी ने बंधी दष्टि और मुक्त हसी को परिचय और
 आत्मीयता का सूचक माना है ।

मुझे लगता है कि दष्टि और हँसी व्यक्तित्व का बरोमीटर है । उसके

अतस्तत्तल म चना वाले प्रत्येक ध्यान प्रतिष्ठात, गति और दशाव, स्वभाव और सम्यता की अवन पट्टिकाएँ हैं, य जिन पर मामूली से मामूली स्पन्दन भी अपनी स्पष्ट छाप अंकित कर जाने हैं। दशा की बंधी दृष्टि और मुक्त होंगी-उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व की बुझी है। बंधी दृष्टि उद्देश्यों के प्रति एकाग्रता, निष्ठा और अग्रत आस्था की सूचक है जब कि मुक्त होंगी नि सगता और विरोधों के बीच अग्रम्पित जिजीविषा का प्रतीक है।

१८५७ के राष्ट्रीय सग्राम के असफल होने पर, भारतीय चेतना की गगा मरी नहीं। उसका प्रवाह विदेशी शक्ति से टकराकर एक क्षण धमा रहा और वह फिर दूसरी तरफ मुड़कर बाह्य आवरण के भीतर मूढम परता म वह निकला। पाताल गगा बना। सरस्वती का एक नई भास्वर चेतना का उदय हुआ। तिलक, गोमले गांधी रामकृष्ण विवेकानंद आदि उनके सन्नेवाहक थे। भारतीय पुनर्जागरण एक और विज्ञान की नव-नूतन उपसंधिया से आरंभ चकित था, दूसरी ओर अपनी आत्मा की नोज म तल्लीन था। हमारा प्राचीन वैभव हम अपनी साम्प्रतिक अधोऽंगा से मुक्ति पाने के लिए प्रेरित कर रहा था तो धार्मिक प्रक्रिया सत्र कुछ को नये विरे से देखने-संरक्षने के लिए विवश कर रही थी। एक अद्भुत अत मयन का युग था वह। राष्ट्रीय सग्राम और मानसिक अन्तर्द्वंद्व का युग। अधिलीनरण इसी युग की देन थे। यह प्रश्न निराधार और ध्वय है कि अपने साहित्य के इस युग को हम गुप्त युग कहें या महावीरप्रसाद द्विवेदी युग। वस्तुतः यह भारतीय मनीषा के पुनर्जागरण का युग था जो समामयिक भारत म सत्र एक-जैसा था। यह एक व्यापक चेतना थी। गुप्तजी की विवेकता यह थी कि उनका चित्त इस सूक्ष्म चेतना को सही रूप म पकड़ने का उचित यत्र सावित हुआ और उन्होंने इस अक्षरीरी भाव बोध को अपने व्यक्तित्व मन के माध्यम से सहज और सुलभ बनाकर जन-जन तक पहुँचाने का महत कार्य पूरा किया। उनकी भारत भारती सत्र गूज उठी। वे अपने युग की सूक्ष्म उलझी हुई मनीषा और भारत के लाखों सामान्य नागरिकों के हृदय के बीच स्वतः निर्मित सेतु बन गए।

गुप्तजी आस्था और आदश के साहित्यकार थे। ये भीजें आज विरल हैं। गुप्तजी जसी आस्था और आदशवादिता आज सम्भव भी नहीं। आस्था और आत्म की स्वीकार लेना हमेशा ही सरल होता है किन्तु उनके अनुकूल अपनी सम्पूर्ण गतिविधि और जीवन प्रणाली को नियमित करना आसान नहीं होता। गुप्तजी का आत्म सुलसी की ही भांति इसी पृथ्वी पर रामराज्य की स्थापना था पर सुलसी और गुप्तजी के रामराज्य के आत्म मे काफी अंतर है। सुलसी के युग मे रामराज्य की विरोधी शक्तियाँ थी विदेशी शासन तथा धर्म और दान के नाम पर फनते हुए मिथ्या पंथ जो सत्य दान के माय म बाधक थे।

गुप्तजी का भारत भिन्न था। विन्नेगी साम्राज्य की 'चरित' तब भी थी, किन्तु तबसे अधिक खतरा विन्नेगी सभ्यता का आनामना रूप था। एवं घोर ज्ञान विज्ञान के आयात के लिए अग्रजों भाषा नया गोन थी, तो उगरी धारा में बहकर ऐसे तत्त्व भी आ रहे थे जो हमारे देश की सभ्यता के लिए हानिकारक थे। गुप्तजी ने ज्ञान विज्ञान के विरोधी थे और न सभ्यता की सभ्यता में डालने को तैयार थे। इसी कारण ज्ञान माग काफी विराट और उत्कृष्ट। सभ्यता हुआ था। ऐसी परिस्थिति में जीवन और प्राचीन के स्वस्थ सम्बन्ध के आधार पर गुप्तजी ने भारत के लिए एक आत्म-ग्रामजीवन का नया उद्देश्य की स्थापना की।

वे चाहते थे कि हमारे देश में ज्ञान का प्रसार हो। चारों दिशाओं के लोग अपने प्राचीन गौरव को समझें और नये भारत की आवाजा के अनुरूप स्वस्थ जीवन व्यतीत करें। भारत भारती का स्वर दशमंश सरस्वती के आय सदेशों से काफी नजदीक प्रतीत होता है। भारत भारती काफी दूर तक हिन्दू राष्ट्रीयता का समर्थन करती थी प्रतीत होती है। 'जयद्रथ वध' सभी प्रकार के वधविकार आक्रमणों की उपेक्षा करके 'याय' के लिए युद्ध करने वाले अभिमन्यु के चरित्र को राष्ट्रीय स्तर पर उपस्थित करता है। रावण के असीम बल और साधनों के सामने राम की 'विराट' देवदत्त विभीषण के चित्त में क्षोभ हुआ था। राम के मुख से तुलसी ने 'विजयरथ' का स्वरूप और महिमा कहलाई है। गुप्तजी का अभिमन्यु आयाय की ओर से सहनेवाले सप्त महारथियों के सम्मिलित बल को ललकारता है। अग्रजों की विराट सैन्य शक्ति को चुनौती देनेवाले राष्ट्रीय सभ्यता के निहत्थे वीर सैनिकों के प्रति इससे बड़ी और भद्रा जति क्या हो सकती थी।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए सशस्त्र आवश्यक है, पर स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हम किस प्रकार के समाज की रचना करेंगे? यह प्रश्न उस समय नेताओं के मन में भी उठता था। निश्चित ध्येय के बिना विराट आंदोलनों का जसे कोई महत्त्व नहीं होता वैसे ही गुप्तजी भी अपने सम्पूर्ण राष्ट्रप्रेम, उदबोधन और जागरण के कार्य का मुख्य उद्देश्य एक आदर्श समाज की रचना मानते थे। उनका यह आदर्श कितना 'मुटोपियन' या वायबी था, यह एक अलग प्रश्न है। महिलाशरणजी साहू, गृहस्थिक मर्यादाओं से सुरक्षित, सीधे सादे जीवन के हिमायती थे। उनका कानन-जीवन या ग्राम जीवन रोमण्टिक भावनाओं से कितना प्रेरित था कहना कठिन है। औद्योगिक क्रान्ति से उत्पन्न कोलाहल और 'यस्तता' से उठकर रोमण्टिक कवियों ने कल्पनालोक के शांत सुंदर आवासों की चर्चा जरूर की है। इस दृष्टि से चाहे तो कह सकते हैं कि गुप्तजी के काव्य में आत्म-ग्राम जीवन की कामना रोमण्टिक भावना से प्रेरित है पर

सचमुच एमा है नहीं। गुप्तजी की यह इच्छा वस्तुन प्राचीन भारतीय ग्राम्य सस्कृति की ही देन है। यद्यपि उन्होंने यत्रा के विरोध में लिखा है, जसे—

होने यत्र न तत्र और ये ग्राम्य यान अपार।

होता नहीं क्रांति होताहल क्रांति खेलती अप ॥

जसा आता बस बसा हो जाता में चुपचाप।

स्वजनों में ही चिता छिड़ती सो भी दिन दो चार ॥

स्पष्ट ही यहाँ कवि यत्र-तत्र ग्राम्ययान से परेगान लगता है। लेकिन वह परेगान तो क्रांति से भी है। मर्यु के बाद ज्यादा लोगो में चर्चा छिड़े, इससे भी परेशान है। रोमण्टिक कवि विद्रोही होता है। वह क्रांति से परेगान नहीं था। समी जानते हैं कि गुप्तजी के जीवन का अन्तिम हिस्सा मात्र इस तरह व्यतीत हुआ जहाँ यात्रिक कोलाहल से वे कुछ परेगान हो सकते थे। शेष भाग तो चिरगाँव में ही बीता, जिसके बारे में वे कहते थे—

अहा ग्राम जीवन भी क्या है।

यहाँ न इसे सब का जी चाहे ॥

इसी कारण मुझे लगता है कि गुप्तजी का आदर्श ग्राम-जीवन विदेशी रोमण्टिक कविओं से उतना प्रभावित नहीं है जितना प्राचीन ग्राम्य सस्कृति और गाँवों दगान से। जिसका एक रूप ग्राम विनोद के विचारों और कर्मों में भी प्रति फलित हो रहा है। मुझे पत की भारतमाता ग्रामवासिनी और मधिलीशरण के ग्राम जीवन में इसी कारण अपार अंतर लगाई पड़ता है। यह जानन सस्कृति उन्हें कितनी प्यारी थी, यह पंचवटी में उसकी प्रगति से माहूम हो जाता है—

कभी बिपिन में हमे यजन का पड़ता नहीं प्रयोजन है।

निमल जल मधु बंद मूल फल आयोजनमय भोजन है ॥

वन की इस सात्विक, तत्त्वज्ञानपूर्ण, आढम्बरहीन सस्कृति को वे योग्य समझते थे कि—

इच्छा होती है स्वजनों को एक बार वन से आऊँ।

और यहाँ की अनुपम महिमा उन्हें घुमाकर दिलसाऊँ ॥

आहिर है कि वे न सिर्फ ग्राम जीवन बल्कि उसके भी आरम्भिक रूप जानन जीवन के पक्षपाती थे। जसा मैंने पहले ही कहा—यह विलकुल ही युटोपियन यानी पूर्णतः काल्पनिक जीवन-दर्शन है। भारत जैसे जनसंख्या बहुल और अभावग्रस्त देश के लिए यह जानन जीवन क्या अर्थ रखता है? औद्योगिक विकास और जानन जीवन में भारत के लिए कौन उपयुक्त है इसका निणय तो अग्रगामी ही करेंगे मेरे जसे मामूली व्यक्ति को तो यह मिथ्या स्वप्न दगान ही लगता है। ग्राम जीवन के प्रति अटूट आस्था रखते हुए

भी मैं यही देख रहा हूँ कि यात्रा की गति नगर से गांव की ओर नहीं गांव से नगर की ओर उन्मुख है। गांधीवादी स्वयं 'ग्रॉस' पर लटका हुआ है। भारत का जीवन जिधर बह रहा है वह भाग गुप्तजी के 'ग्राम-जीवन' को एक तरफ से बाटकर निकल गया है।

हम गुप्तजी का यह आदेश मान्य हो या न हो, इसने प्रति उनकी अटूट आस्था थी और इसी आस्था के लिए वे जीवन भर सघप करते रहे। यही है उनकी बेंधी दृष्टि। यह दृष्टि उनके सम्पूर्ण लेखन में व्यक्तित्व जीवन में और अतर्व्यक्तित्व सम्बन्धों में सर्वत्र छापी हुई दिखाई पड़ती है। इसी दृष्टि ने मधिलीशरण को सर्वश्रेष्ठ उद्बोधन के साहित्यकार के साथ ही साथ राष्ट्रीय संप्राम का सनिक बनाया। वे भी जेल गए। पारिवारिक सम्पत्ति से हार घोना पड़ा। देश की स्वतंत्रता के बाद वे संसद के मनोनीत सदस्य हुए। पिछले कई वर्षों तक लगातार संसद में गम्भीर राष्ट्रीय सक्ती महगाई गरीबी और टक्को की प्रतिशयता आदि समस्याओं पर अपने विचार व्यक्त किए—प्रवसर दो पक्तियों में पद्यबद्ध। इन कविताओं का अध्ययन करने वाले जानते हैं कि वे कितने उदात्त थे। राष्ट्रीय संप्राम का सारा जोग और बलिदान, ग्राम-जीवन की भव्य कल्पनाएँ सभी प्रकार की मंड। जस सम्पूर्ण देश की जनता उदासीन और निराश है, वैसे ही मधिलीशरण भी थे। फिर भी वे चुपचाप यह सब कुछ देखते रहे। क्या करते? विदेशी शासन का तो सारा दोष उनके सिर पर मढ़कर आश्रय व्यक्त किया जा सकता था, अब किससे कहें? हिंदी को उसका सही स्थान दिलाने के लिए वे शुरू से ही सघप करते रहे पर अपने देश की राष्ट्रीय सरकार एक न एक बहाना या तिकड़म करने रोडा मटकाती रही और मधिलीशरण आश्चर्य, दुख और ग्लानि से ठगे ठगे यह सब देखते रहे।

यह सब मधिलीशरणजी का एक रूप था। उनका एक रूप और था। कवि का, दहा का, मुक्त हसी का। रीतिवादी दरबारी सस्कृति की छाया में पोषित मूर धात्रि की शालीनता और मधुरता से बचिन दरबारी आडम्बर और बमरकार में बटव मटक रूपवाली बजभाषा हमारे नय युग की आकाशवाणी का माध्यम नहीं बन सकती। दहा ने इस सत्य को पहचान कर तुतलाती खड़ी बोली के शरणा में सर कुछ रस लिया। उन्होंने इस नई भाषा को सज्जन बनाने के लिए सून-पमीना एक कर लिया। कविता सबय का युग देगते-देगते खत्म हुआ। खड़ी बोली में राष्ट्रीय आन्दोलन की हुरारें प्रतिध्वनित होन लगी। इसका वजन ऊपर हो चुका है पर मधिलीशरण गुप्त का कवि व्यक्तित्व हम जागरण और उद्बोधन के सावजनिक जीवन में ही सीमित न था। उनका

हृदय में एक भावना से पूरा पीड़ा और सदाशयता से भरपूर ऐसा निम्न भी था जो कोलाहल सघष आदोलना से अलग एकांत में भरभर बरगता रहा। उसकी आवाज में कभी उर्मिला का रोदन है तो कभी यशोधरा का उपासम्भ।

आँखों में छवि झूली, मुझे फूल मत भारो न जा अधीर घूल में दग्धु धा दुल्ल में, और उधर अपन विरागी पति की याद में बठी यशोधरा का उनका 'चोरी चोरी जाना' सोचकर बिसूरना अबला जीवन की कहानी, आचल में दूध और आँखों में पानी का मीन पीड़ा भरा गीत। द्वापर की कुजा की वृत्तज्ञता और विष्णुप्रिया के वयनितक कारुणिक भाव स्वर।

एक ये दहा ऐसे भी जो जीवन में गरल पीकर हसते थे। दुःखा में जीकर सबको सहानुभूति देते थे। महादेवी के साग्य पर कहा जा सकता है— यदि अपने आप अरयत्त साधारण जीवन-यतीत करने वाले पुत्र के लिए पूवजों के ऋण की छायाकार है तो गुप्तजी इस दृष्ट के अङ्गारपथ को पार कर चुके हैं। यदि अपनी नौ नौ सत्ताओं को अपने हाथ से मिट्टी को सौटा देना पिता का दुःख है तो गुप्तजी इस दुःख के समुद्र की तर आए हैं। यदि अपनी परीक्षाओं में अविचलित रहना भक्त का घरदान है तो गुप्तजी पूणकाम हैं। यदि अपने अह को समष्टि में मिला देना कवि की मुक्ति है तो गुप्तजी मुक्त कवि हैं। गुप्तजी का घर चाहे वह चिरमाँव का हो या ससद सदस्य का बँगला गिरली का सबके लिए हमेशा खुला था। प्रत्येक लेखक उनके स्नेह का पात्र था। हमेशा उनकी मुक्त हँसी की हिलोरें उठा करती थीं।

मेरा ध्रुव विश्वास है कि ऐसी मुक्त हँसी बिना अश्रुओं से नहाये प्राप्त नहीं होती। हँसी की यह उन्मुक्तता असगता के कारण ही उपजती है और यह असगता सिर्फ उस व्यक्ति में आती है जो दुःखों से मँजवर कालुष्य से रहित हो जाता है। मधिलीकरण की वैष्णव भावना का रहस्य भी इसी में छिपा है। उनका हृदय की सम्पूर्ण विशालता का सून भी यही असगता है। इसी कारण वे नई पीढ़ी को देखकर कह सकते थे— जो पीछे आ रहे उन्हीं का मैं आगे का जयजयकार।

मधिलीकरण गुप्त के प्रति सही श्रद्धाजलि उनकी आस्था, उन्मुक्तता और असगता की स्वीकार करने में ही है। उनका सकल्प हमारा भी सकल्प बने—

जय देव मन्दिर देहली
सम भाव से जिस पर चढ़ी
नप हेम मुद्रा और रक्त बराटिका
मुनि सत्य सौरभ की कली
कवि कल्पना जिसमें बड़ी
फूले फले साहित्य की वह वाटिका।

जैचा पर्वत और अजापुत्र का चिह्निलास

लाउडस्पीकर पर जोर जोर से आवाज उठ रही थी— रागी का चिराग बुझ गया भाइयो प्राण दो यजे से आरम्भ होने वाली स्व० डॉ० सपूर्णानन्द की शवयात्रा में अवश्य सम्मिलित हो। मैं इस शवयात्रा में सम्मिलित नहीं हुआ। न कोई एतराज था मन में न कोई घातघण शवयात्राएँ भी अब इस देश में व्यस्त अभिप्रायवाला के लिए तरह-तरह के उद्देश्यों का साधन बन गई हैं। मैं यह बात दुःखी चित्त से ही कह रहा हूँ।

खर मैं सोच रहा था रागी के चिराग के बारे में। वैसे यह चिराग गुरु मुझे बहुत उपयुक्त नहीं लगा। फिर शरीर से क्या होता है। आत्मा तो प्रथम है। सपूर्णानन्द निस्संदेह अमृतत्व के स्फुल्लिंग थे। उनके भीतर प्रकाश था। ज्योति थी। इसलिए चिराग कहलाने ने कोई गलती नहीं की। सपूर्णानन्द एक बेहतर वेडील काया के भारी भरकम व्यक्ति थे। ऊपर से देखने पर क्यामता ही श्यामा नजर आती थी ज्योति कम पर ज्योति का आवरण हमेशा ही तमस से निर्मित होता है यह सचिद्रूप बड़ा गूढ़ रहस्य है। सपूर्णानन्द सूर्यपुत्र थे। उनकी गंभीर बीमारी की चर्चा ६ जनवरी की शाम को बड़ी तेजी से फैली। एक सज्जन ने कहा, 'सुना आपने सपूर्णानन्द का देहांत हो गया।' मैंने कहा, 'अच्छा! मेरी आश्चर्य भरी प्रश्नमुद्रा उड़ प्रीतिकर नहीं लगी बोले आपको विश्वास नहीं होता? मैंने कहा जब प्राण कह रहे हैं तो अविश्वास बाह्य का? कि तु जरा बेढंगा लग रहा है आज ६ तारीख है न? सपूर्णानन्द सोलर यानी सूर्यपुत्र थे उनका देहांत ६ तारीख को कुछ जमता नहीं। खर बात आई गई हो गई। सपूर्णानन्द के बारे में फैली वह खबर झूठी साबित हुई। वे ६ जनवरी को नहीं १० को मरे वह भी १० बजकर १० मिनट पर। उनका जन्म १८६० ई० के पहले महीने की पहली तारीख को हुआ था। सरया रहस्यज्ञ इस मूल्य की सरया कहते हैं उस भी सपूर्णानन्द का जीवन स्थूल पथवी

तत्त्व या सोमनस्व की अप्रत्याशितता से जगदा मोतप्रोन था, यह कोई भी उनके सम्ये ७६ वर्ष के जीवन के सघर्षों और उपलब्धियों का लेखा जोखा करके जान सकता है।

●

एलन लिप्रो कोई अच्छा दैवत है ऐसी बात नहीं पर मकर राशिवाला के बारे में उसने कुछ ऐसा लिखा है जो संपूर्णानंद पर बड़ा सटीक बैठता है—

यह त्सर्वी राशि है (१० सम्प्रा यहाँ भी है) यानी पूरा सम्प्रा, और एक पूरा सम्प्रा की जो भी समावनाएँ होती हैं वे यहाँ आपकी मिलेंगी। इस राशि का प्रतीक अदभुत है यानी एक ऊँचे पहाड़ पर चढ़ता हुआ बकरा। मकर राशि का जन्मा व्यक्ति यदि अपनी समावनाएँ का साकार रूप देने के लिए प्रयत्न नील हो तो एक निष्पन्न तथ्यवादी, सटीक स्पष्टवक्ता, स्थिर अटल सधन नील तथा निरंतर उद्यमी एक ऐसे व्यक्तित्व की तस्वीर उभरती है जो अपने मनवरत, अविच्छिन्न परिश्रम के द्वारा हर अभिलषित प्राप्त कर सता है। ऐसे लोग महन्ती तत्पूरा सावधान ईर्ष्यालु बौद्धिक शक्ति, गति, अडिग धन और गम्भीर अतमु नील प्रवृत्तियों वाले व्यक्ति होते हैं।'

ग्रीक ज्योतिष मिथक का राजापुत्र निस्सन्देह सामान्य प्राणी है। संपूर्णानंद भी य। सामान्य परिवार में उत्पन्न होकर वे उन्नति के क्षिपत पर चले। किंतु राजापुत्र के भारताय दष्टि से भी वे। साम्य दशन में प्रकृति का और अथवगीप में दुर्गादेवी को अजा कहा गया है। मरुतु के समय संपूर्णानंद के अन्तिम गच्छ— 'देवी, अद तग न करो, जल्दी बुला लो।'

सूय की तारीख और गति की राशि इन दोनों के अदभुत योग का क्या परिणाम हाता है यह तो ज्योतिषी लोग बनाएंगे। मैं सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ कि ऐसा व्यक्ति जीवन में गतिन करन के लिए ही हाता है वह अनुनासित कम ही होता है। वह जिस भी क्षेत्र में अपनी शक्तियों का विक्षिण करता है, वहा उसका ही प्रभामडल छाया रहता है। वह किसी महत् उद्देश्य पर उत्सग होने के लिए ही किसी दूसरे के नीचे रहना स्वीकार कर सता है अथवा वह प्राय अपनी दाहक आत्मा की दीप्ति से चतुर्दिक आलोचना और निरा का पात्र बनना भवै ही स्वीकार कर ले, मातहती स्वीकार नहीं कर सता।

स्वतन्त्रता सनिक और सनानी बदी मनी मुख्यमन्त्री राज्यपाल लेखक, गानिक पत्रकार ज्योतिषविद्याविद अध्यापक खगोलशास्त्री वेदशास्त्रममन योगशास्त्री तान्त्रिक उपसख ममाजसुधारक, हिन्दी सरसक अष्टि प्रादि भूमिकाएँ उनके बहुविध जीवन की कुछ मनकें दे सकेंगी। संपूर्णानंद का पूरा जीवन एक बौद्धिक शासक के नियमबद्ध अडिग सघर्षों की कहानी है। मैं उनके जीवन की घटनाएँ पारिवारिक नक़्शे या गजरा पनटन नहीं चला हूँ। मैं सिर्फ

उनके सचेत त्रियावलापा की एक गणिष्ण मनन भर दे रहा हूँ। सट्टा, पारंगी प्रप्रेजी बगला जैसी भाषाभाषा के दानिन् राजनीतिर समाजशास्त्रीय और तात्रिक बाड मय से उताता यनिष्ठ सपर रहा। गांगन की मृत्यु पर उनका हृदय उमथित हो गया था और उमी समय भात्रिनि की तरह उनकी बगरी स भी छटोरद बकिता ही निकली पर वे जन्ती हो भांग गण नि उनक भीतर बगना रम्य सवेदनात्मक तत्त्वा की नहा तत्पूण विदयपणपमी दानिन्क साहित्यकार की सभावनाए ज्वाला है। परिणामन उनका अधिकाग सधन मद्य म ही भाषा। करीब तीन दजन से ऊपर महत्त्वपूण पुस्तकें। उनम भी बाधी दर्जन तो ऐसी कि जिन्होंने अपनी मोलित स्थापनाओं के कारण भारतीय बौद्धिक जगत् को भक्भोर कर रख दिया। समाजवा भाषों का प्रादिभेन ब्राह्मण सावधान, चिद्विलास गणेश भाषा की सकिन तथा भारतीय बुद्धिजीवी।

सपूर्णानंद मूसतया दानिन्क ये। तात्रिकी की सबब प्रधानता उनके दानन को एक नई रगत और असह्य विदग्धना प्रदात करती है। 'समाजवा' पुस्तक उहोंने अपनी वामपधी प्रास्था की अभियक्ति के लिए लिखी किंतु सपूर्णानंद मावस को भी महंत पढाने स बाज नही आए। शायद उनकी इसी बात की और लक्ष्य करके महात्मा गी ने लिखा था—'ऐसा लगता है कि समाजवादी होते हुए भी तुम मावस के दशन का समधन नहीं करते। सपूर्णानंदजी ने गांधीजी का आरोप स्वीकार कर लिया। वस्तुतः सपूर्णानंदका भारतीय दानन की परम्परा मे भावण्ट पये शुद्ध भारतीय थे वे अपने दशनशास्त्र पर किसी विदेशी दशन की बरीयता स्वीकार कर लें यह सभव नहीं था। हाँ वे अपनी हर चीज को अच्छी मानकर कठमुत्लापन निलाने वाले परम्पराभीर भी नहीं थे। इसीलिए जहाँ वे मावस के तिलाफ जाने की हिम्मत कर सरते थे, वही ब्राह्मण सावधान का ऐलान भी कर सकते थे। उनकी अपनी निजी मा यत्ताए छिटपुट अनेकानेक निबन्धो म काफी स्पष्टतया उक्त हुई है पर मेरी दक्षि से सपूर्णानंद का चित पूणतया अपने बागिनास के सिखर पर चिद्विलास म ही दिखाई पडता है।



चिद्विलास भारतीय दशन की अर्वाचीन परपरा का एक महत्त्वपूण प्रथ है। पुस्तक जेल मे लिखी गई। यानी यह पुस्तक भी राष्ट्रीयता सग्राम के दिनो मे जेल मे लिखी हुई ज्योतिष बाड मयी परम्परा की एक बडी है। तिलक के गीता रहस्य नेहरू की 'भारत की खोज, और राजेन्द्र बाबू के खडित भारत की परम्परा मे चिद्विलास को भी स्थान मिलना चाहिए, वसे यह पुस्तक उद्देश्य मे तिलक के गीता रहस्य के नजदीक पडती है मय पुस्तको के नहीं।

चिद्विलास उस समय लिखा गया जब एक महासमर के भाव सूखने भी न पाए थे कि दूसरा छिड गया। युद्ध की भीषणता ऐसी बढ गई है कि यदि ऐसे

ही एकाध सपना और हुए, तो सभ्यता का नाम मिट जाएगा ।' ऐसी ही स्थिति में यूरोप में अस्तित्ववाद ने जन्म लिया, भारत में गांधीवाद ने । सपूर्णानन्द इस स्थिति का सामना करने के लिए किसी समसामयिक वाद या संप्रदाय को महत्त्व न देकर 'ध्यानिक दशन' की बात करते हैं । वे जानते हैं कि यन्त्रयुग के कारण धीरे धीरे विश्व-संस्कृति और वाद में विश्वगति की बात उठेगी, पर वे यह भी मानते हैं कि "आज तो अभी बबरयुग की सूचना देने वाले भण्डारों से दिग्गत घाबरा रहे हैं ।" सच कहें इस स्थिति में परतंत्र भारत की भूमिका की जिज्ञासा करता है । 'जो अपना घर नहीं संभाल सकता वह पत्थी भर का क्या प्रबंध करेगा ?' पर उस इतना विद्वान् है कि 'अनतिदूर में उसकी इच्छा पूर्ण होगी ।' यानी भारत स्वतंत्र होगा । फिर ? भारत अपनी स्वतंत्रता का क्या उपयोग करेगा ? भारत में सिर्फ दो विचारधाराएँ चल रही हैं एक अवसरवाद, दूसरी अतन्त्रवाद । इसका यह परिणाम है कि व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन में कोई दृढ़ सूत्र मिलता ही नहीं । यदि समाज को ठीक से चलाना है तो उसका संघटन किसी सिद्धांत के आधार पर होना चाहिए । जो शास्त्र इन मौलिक प्रश्नों को अपना विषय बनाता है । उसे दशन कहते हैं, सपूर्णानन्द का यह दशन शांति और अद्वैत पर स्थापित है इस आरोप को वे सह्य स्वीकार करते हुए कहते हैं—'यदि मुझको ऐसा प्रतीत होता है कि शांति और अद्वैत हमारी सभी परेशानियों को सुलझाता है और हमको कर्त्तव्य का पथ दिखाता है तो उसका समर्थन करना मेरा कर्त्तव्य हो जाता है ।' यदि ऐसा ही है तो फिर अद्वैतवाद पर नई पुस्तक लिखने की क्या जरूरत थी ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए वे कहते हैं—'यदि नये विचारक सनातन सत्य को नई वेशभूषा में न उपस्थित करें तो ज्ञान का स्रोत सूख जाएगा ।'

यह पुस्तक न सिर्फ ज्ञान के स्रोत को अप्रतिहत रखने के लिए बल्कि इस लिए भी लिखी गई कि भय तक कि हमारे शासनकार और दार्शनिक जीवन मरण का भय दिखाकर, वराम्य का ऐसा राग अलापते रहे हैं कि मनुष्य की उनसे विरक्ति होती गई है । दूसरी ओर हमारे मध्ययुगीन और आधुनिक विचारक दशन और विज्ञान को इस तरह अलग अलग रखकर सावते रहे हैं कि आधुनिक चिंतन पर उसका प्रभाव ही नहीं पड़ता । इसलिए विज्ञान के सहारे दशन में हमको वह सतु मिलना चाहिए जो भौतिक अर्थोत्पत्तिक दृश्य प्रदर्य और जड़ चेतन को मिलता है ।' इसी के साथ साथ सपूर्णानन्द की यह भी धारणा है कि "दशन को विज्ञान के पीछे नहीं चलना है परन्तु जहाँ विज्ञान नहीं पहुँच सका है वहाँ अपना प्रकाश डालना है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि चिद्धिलास की रचना पूरे समाज को एक दृढ़ वैचारिक भित्ति देने के उद्देश्य से हुई । इस धारणा के पीछे समाजवाद वाले

गोडना पड़ा तथा डा० भगवानदास जसे ध्यवित्तयो को भी कभी भी उनका
 आप्य नहीं मिला। संपूर्णानन्द की इस प्रतिनिध्या की परवाह नहीं थी, क्योंकि
 प्रतिकूलकर्मा ब्राह्मण का विरोध कर सकते थे, तो सस्कृत विद्या के लिए
 अश्वविद्यालय बनवाने का काम भी। उनके लिए दोनों ही जरूरी निष्काम काम
 जिन्हें उन्होंने निःसंकोच पूरा किया।

उनके दर्शन का तीसरा बिंदु है भारतीय सनातन मनीषा में अटूट विश्वास।
 उनकी धारणा थी कि सभ्यता और सस्कृति का सभुक्त्य सबसे पहले आय
 जाति में हुआ और पूव युगों के तपस्विना ने ऋषिया और मनुष्यों का गरीर
 धारण करके सबसे पहले आय जाति को आत्मज्ञान का भाग दिखाया।" इस
 धारणा पर सकुचित वृत्ति का आरोप लगाया जा सकता है। विश्व की अनेक
 प्राचीन सस्कृतियाँ आय सभ्यता के समानांतर ही विकसित हुई किंतु इनमें
 सदेह नहीं कि आय सस्कृति में भोग की अपेक्षा आत्मज्ञान पर ज्यादा जोर
 दिया गया। फिर यह धारणा किसी तरह अपने को अश्व मानवता से विच्छिन्न
 करने के उद्देश्य को लेकर नहीं चलती। भले ही आत्मज्ञान का उन्मेष भारत में
 हुआ 'ब्रह्मज्ञानी होने के लिए हिंदू कुल में जन्म लेना सस्कृत को पवित्र भाषा
 मानना या हिंदू ढंग की उपासना करना आवश्यक नहीं है। इस देश के महाभाग
 प्राचार्यों ने योगाधिकार में जाति कुल या सम्प्रदाय को स्थान नहीं दिया है।
 मोक्षपद ही इन क्षुद्र भेदों से ऊपर है, उसका पथ अमकीण है।

लेखक के इन विचारों को देखते हुए उस पर सभाय सकुचित वृत्तिवाला
 आरोप थोड़ा हल्का जरूर हो जाता है परंतु हम यह मानने में संकोच नहीं
 होता चाहिए कि संपूर्णानन्द जी यहाँ पर भारत के प्रति ज्यादा आग्रहीता हो
 गए हैं। देशभक्ति के उस उच्चार में यह सहज स्वाभाविक था। 'आर्यों का आदिदेश'
 इसी मन स्थिति की देन है जिसमें लेखक ने आर्यों के बाहर से आनेवाली
 धारणा का बड़े विस्तार से खंडन किया है। संपूर्णानन्द का वेदविषयक अध्ययन
 इतना पुष्ट था कि उनके तर्कों में अपने आप एक प्रामाणिक स्वर और मुहावरा
 आ जाया करता था। ध्यान रखना चाहिए कि उनकी पुस्तक तिलक की उस
 प्रसिद्ध स्थापना के बाद आई थी कि आर्यों का आदिदेश उत्तरी घुव प्रदेश
 था। संपूर्णानन्द की इस पुस्तक ने भी इतिहासकारों को काफी आंदोलित किया
 था।

उनके दर्शन की चौथी पीठिका है दर्शन से विज्ञान का सम्बन्ध। इसके बारे
 में हम ऊपर लिख चुके हैं कि वे दर्शन को विज्ञान का पिछलग्नु नहीं अग्रज
 सहयोगच्छु ज्ञानयन मानते थे। विज्ञान के प्रति उनकी दिलचस्पी निरंतर बढ़ती
 गई। उन्होंने उसका उपयोग अलग अलग पुस्तकों में तो किया ही खगोलविद्या

की ओर उठा। धारण का मुख्य कारण भी यही प्रकृति थी। जिसी संवसा-
 तिर क्याओ के समार की पूर्ति के लिए उठा। 'सुखा म मंगलियर। तथा
 'सत्तरिध पाया। अगो पुनर्को निर्मा। इतना ही। हूँ भी मर कर देता पाया'
 धारणा है कि 'संपूर्णा' की रवि मंगोवविद्या धरणा बिना भूमि की कृति
 जस यशानिध विषया। त्रितो भी यमी रही है। वे शिखर की मोमाया और
 धारविद्या की ओर म भी तिरार मावपाय रहे। उद्दान विद्विनाम म ही
 तब स्वयं पर विद्या है— विज्ञान की महापता म मनुष्य ने प्रकृति पर विजय
 तो पाई, पर इमी के कारण धर्मबुद्धि की विरगित करता भूत गया।'

संपूर्णानन्द के जीवन दान का वाक्या सूत्र है 'स्थानुभूति' पर विश्राम।
 कबल कपी म काम उर्ध्व गता। करती उपान। बड़ी नीच है। पर उर्ध्व
 कुण्डल बटुतरे बावों म वे धारती मणा। तों करारा चाहो। क्या तुम स्वयं
 योगी हो? 'इम सम्बन्ध म दान ही निर्मा कर्मा रि सद्गुरु की कृपा ने
 गुह्यम योग के त्रिनि धर्मीम श्रद्धा उपाय कर दी है। मैंने ध्यान और ना के
 सम्बन्ध म जो कुछ लिया है वह सब का सब मेरे अनुभव का परिणाम हो या
 न हो। तितु मेरे हृदय विश्राम का व्यञ्जन धरण है। यह का माभूती धारणा
 नहीं है। उनक व्यक्तित्वगत जीवन्त को गामर म धाने का मैं उचित पात्र नहीं हूँ
 पर इतना कहना अनुचित नहीं माना जाएगा कि उनक परिवार पर कुछ तो ही
 सिद्ध योगी बीनाराम की कृपा रही। उर्ध्व पितामह सन्तान जो की योग म
 मच्छी गति थी। इही के नाम का आधार 'सत्तरिध संपूर्णानन्द' के नाम म धान
 पण जुहा जो बाण म पारिवारिक उपनाम अता था गया।

मैं उनक ज्ञान का अन्तिम और सबसे महत्त्वपूर्ण पण धारणे सामने प्रस्तुत
 करके इस विषय को समाप्त करना चाहता हूँ। यह पण है सौंदर्यानुभूति का।
 मला भद्रत दान से इगवा क्या सम्बन्ध? यही वह सम्बन्ध सूत्र है जो
 संपूर्णानन्द को दानिको के बीच से खींचकर साहित्यकारों के पास ले आता
 है। यही वह बिंदु है जो इस तकप्रधान मनोषी को रमय साहित्य की
 ओर भावुक करता है। उन्होंने चिद्विलास के उपोदघात म लिखा है—

यह मान लिया गया है कि 'दशन शुष्क विषय है। उसका कला से कोई
 सम्बन्ध नहीं है। साहित्य के विद्वानों ने रस का विचार करते हुए सौंदर्यानुभूति
 के विषय म कुछ कहा है पर उनका निरूपण अधूरा है। वस्तुतः वह दशन का
 विषय है।' परिणामतः चिद्विलास के छठवें अध्याय के सौंदर्यानुभूतिव्यवस्था
 में इस विषय की एक नई व्याख्या उपस्थित की गई है। योगी और कलाकार
 को एक दर्जे का प्राणी मानकर सौंदर्यानुभूति की प्राप्ति उमी भवस्था में बताई
 गई है जिसे समाधि कहते हैं। योगी का प्राप्य भिन्न है कलाकार का भिन्न
 पर प्रक्रिया दोनों की एक ही है। योगी का ब्रह्म निराकार है पर कलाकार की

समाधि-वत्स्य अनुभूति सौन्दर्यमयी है। इस दृष्टि से सपूर्णानन्द ने एस कलाकारों को हेय बताया है जो दिक् काल की सीमाएँ तोड़कर 'इम स्थिति' से अपने मन को जोड़ नहीं पाते। उनकी य सारी स्थापनाएँ आज के साहित्य के लिए बेकार साबित हो सकती हैं परन्तु इसमें सन्नेह की गुजाइश नहीं होगी चाहिए कि सौंदर्यानुभूति पर उनके विचार काल्पनिक नहीं हैं। वे ठोस दार्शनिक धरातल पर स्थापित हैं हमें पसन्द आएँ या न आएँ, यह अलग बात है। बहरहाल इस विषय पर उनके इस मधन ने हिन्दी को एक बहुत ही महत्वपूर्ण रचना प्रदान की थी। वह है 'माया की शक्ति'। भारत के बौद्धिकों को संबोधित करके लिखी हुई उनकी पुस्तक 'भारतीय बुद्धिजीवी' कभी विस्मृत नहीं होगी।

यहाँ सपूर्णानन्द के बौद्धिक व्यक्तित्व की नमस्कार छवि मात्र उपस्थित की गई है। आज उनका पाँचवें व्यक्तित्व नहीं रहा इस पर दुःखी होने की जरूरत नहीं है। उनके बाद मय 'व्यक्तित्व की भव और भी अधिक तटस्थ मीमांसा की आवश्यकता है। हम उनके जीवन रहते उनके पवतारोहण को भले ही न देख सके हों, पवत के जनन शिखरो से एकत्रित मधु का अवदान तो वे दे ही गए हैं। इस मधुप्रतीक को सहस्र श्रद्धाजलियाँ।

द्विचचन
तीन अतर्वातिऐ

नारिकेल कुजो का बूढ़ा ऋतुराज शंकर कुरूप

केरल से आए कई दिन हो चुके हैं। अब भी नौद आने के पहले भयबुली भाँवो में नारियल, ताड़ और सुपारी के पेड़ों से डँकी सरिताओं, सागर भीला और जलानया की मन मुकुर धरती घानी साड़ी के भाँवल में रगीन फूलों के स्तवक ढक्ती छिपाती अलस भाव मुद्रा में खड़ी हो जाती है।

आज भी मधुमाषिणी की उस मुद्रा भगिमा की याद मेरे मन को उमत्त बना देती है। केरल कचनार हरियाली और मुगधित भँकोरो का देश है। उसकी अमोनी लुनाई मन को बरजोरी खींचती है और उसके चरणों पर सेटा विशाल समुद्र 'यग्य म' अट्टहास करता है। चिकनी छलकदार प्रकृति हाथों के बघन से छट छूट जाती है। चेम्मीन। यह कोई मीनिका या हरिमीन तो नहीं कि मुटठी में बँध जाए। यह अपने धक्के से नौकाएँ उलट देती है। गीली सिकता पर कतम्मा के चरणों की छाप उभर आती है और मैं जो हजारों कीस दूर वाराणसी के सूखे और अकाल से जलते इलाके में बठा हूँ, निरन्तर इस धान पान, माँसू हास भरी धरती को गुज़ारता हूँ मानस मनु बरू। मानस मनु बरू। आ जा, ओ मानस की मना आ जा। एक बार तो आ जा।

पर वह नजदीक नहीं आती। गकर कुरूप कहते हैं कि 'स्नेहस्तिन फलम स्नेहम्'। स्नेह का फल स्नेह ही होता है। केरल की धरती की आर से मुझे काफी स्नेह मिला, विनोद कवि शंकर कुरूप के माध्यम से, जिनका मद्रालय अतिथियों के लिए तो हमेशा खुला रहता ही है अमद्रा के लिए भी। अमो पिछले वष भारतीय जानपीठ ने इन्हें एक लाख रुपये का पुरस्कार दिया। लख टकिया पुरस्कार। कुछ दबा हुआ। जैसे मैं मानता हूँ कि लखटकिया पुरस्कार या जान से ही कोई बड़ा कवि नहीं हो जाता। मद्रालय के द्वार तक पहुँचन हुए मन का यह धीर कई बार उदय कण्ठ उकसाया-कसमसाया था इसम 'ग' नहीं। पर कमरे से बाहर आकर जिसने स्नेहिन भाव से हाथ पकड़ लिया और भाव

श्यक्ता स ग्रथिव नम्रता के साथ भाषा भुजा लिया उसके सौजन्य को कृत्रिमता कहने की दखिना मेरे भीतर नहीं। किसी किसी आत्मी का ऐसा व्यक्तित्व होता है जो प्रथम क्षण ही मेरे मन पर अपना असली अवस छोड़ जाता है। यह मैं कैसे कहूँ कि यह सत्र मावुक्ता नहीं है, पर क्या यह सच नहीं है कि कभी कभी अत्यंत सूक्ष्म और उलझा हुआ सत्य सिर्फ मावुक्ता द्वारा ही पकड़ में आ पाता है? शंकर कुरूप का व्यक्तित्व इतना आत्मीयतापूर्ण है कि वह अज्ञानक मन में विलक' कर जाता है।

उन्होंने अपने पानपीठ पुरस्कार समर्पण समारोह में अपने भाषण में कहा था 'क्या आपस में रक्त सम्बंध, हृदय स्पंद में समान लय और विकास के इतिहास में सम प्रवृत्ति रखने वाली हमारी भाषाओं और साहित्यों के 'एक कॉमन वेल्थ' को वास्तविक रूप में परिणत करने योग्य गिलादक सांस्कृतिक आधारभूमि नहीं है?' स्पष्ट ही कवि शंकर कुरूप इस तरह के 'कामनवेल्थ' में विश्वास करते हैं।

प्रश्न भारतीय भाषाओं के कामनवेल्थ की आप निराधार कल्पना न कहकर व्यवहार में परिणत होने योग्य सम्भावना मानते हैं क्या आप इसके लिए कोई ठोस सुझाव दे सकते हैं?

उत्तर मैं भारत में सिर्फ दो भाषाएँ मानता हूँ। आर्य और द्रविड़। ये दोनों फैफड़े के दोनो भागों की तरह एक दूसरे की पूरक हैं। आर्य सस्कृति की भाषा के रूप में हिन्दी को प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए उसी प्रकार किसी एक द्रविड़ भाषा को भी। उस स्थिति में दोनों सस्कृतियों की निकटता सम्भव हो सकेगी।

प्रश्न जहाँ तक मैं समझता हूँ आज के भारत में आर्य और द्रविड़ नामक कोई भ्रम भ्रम चीजें नहीं हैं। सब मिश्र हैं। समं वत है। अगर कभी भी भी तो आधुनिक युग में उनका कोई महत्व नहीं है। क्या आप भ्रम भ्रम दो सस्कृतियों मानते हैं?

उत्तर 'मैं नहीं मानता। पर मेरे मानने न मानने से क्या होता है। लोग मानते हैं। दक्षिण में क्या असंशय है आपने दत्ता ही होगा। मैं जानता हूँ कि आर्य और द्रविड़ सस्कृतियों में कितना मिश्रण हुआ है। वेद और पुराणों की क्याभा स लेकर तमिल वाला ने उह नया रूप देने की कोशिश की है। आज तो यह भ्रमना भी मुश्किल है कि कौन तत्त्व किस सस्कृति का है। इसका होते हुए भी दक्षिण में ऐसी लोगो की कमी नहीं है जो नन नाडू (दक्षिण भारत) और मट नाडू (उत्तर भारत) की बात करते हैं। कोई नम् नाडू (हमारा देश) नहीं कहता। अभी कुछ दिन पहाण्णकुलम में तमिल सम्मति सच क एक जनस की सैन सम्पन्नता का। वहाँ भी यही बातें हैं। तमिल बात उत्तर में

सिफ बगान को अपने निबन्ध पाते हैं। यहाँ से सांस्कृतिक डेलीमेशन बगाल जाकर संयुक्त मोर्चे बना रहे है। किस उद्देश्य से? यह तो समस्त भारत के लिए चिंता की बात है। न तो भाषाओं में उतना अंतर है, न ही इनमें लिखे साहित्य में। सिर्फ लिपियों की भिन्नता के कारण भिन्नता दिखाई पड़ती है। अंग्रेजी के समथक अपनी स्वायत्त सिद्धि के लिए इस भिन्नता को और बढ़ाते रहते हैं, ताकि अंग्रेजी का प्रभाव बना रहे और वह फूले फले। राजा राममोहन राय ने 'लण्डन' किया जिसका हम फल भोग रहे हैं। एवं सवमाय भाषा के निर्माण में जितनी कठिनाइयाँ हैं। संस्कृति और भाषा का प्रश्न भी कितना अमंग्य और अनुपयुक्त हो जाता है इसे के० एम० मुखी को उदाहरण के रूप में रखकर देखा जा सकता है। उन्होंने संस्कृति का इस्तेमाल एवं सवमाय भारतीय भाषा के निर्माण को रोकने और अंग्रेजी को चलाने रहने के उद्देश्य से किया।

प्रश्न 'भारतीय ज्ञानपीठ का प्रथम पुरस्कार दक्षिण के एक कवि को मिला। इससे क्या उत्तर भारत के प्रति विद्यमान रोष में कुछ कमी आई है?'

उत्तर 'कुछ तो जरूर आई है। कलइमगल' के सम्पादक जगन्नाथन ने मद्रास में कहा कि यह एक अच्छा समाचार है। इससे उत्तर और दक्षिण की निकटता बढ़ती है।'

प्रश्न एक सवमाय भारतीय भाषा के निर्माण के लिए क्या आप कुछ सुझाव दे सकते हैं?

उत्तर भारतीय भाषाओं में सवनिष्ठ शब्दों को लेकर हिंदी विकसित हो तो शायद सवमाय भाषा का स्वप्न पूरा हो सके। इसके लिए आवश्यक है कि हम एक ऐसे राष्ट्रीय शब्दांश का निर्माण करें जिसमें भिन्न भिन्न व्यंशों के समान शब्द और समान व्यंशों के भिन्न भिन्न शब्दों का संग्रह हो।'

भाषा और संस्कृति के प्रश्न पर कवि शंकर कुरुष का दृष्टिकोण बहुत उदार और राष्ट्रीय है किन्तु उन्होंने सवमाय भारतीय भाषा के निर्माण के विषय में बहुत विश्लेषण नहीं किया है जो उचित भी है, क्योंकि एक कवि के लिए यह बहुत मनपसंद और वाचनापूर्ण विषय नहीं है।

शंकर कुरुष सम्पूर्ण केरल में महाकवि के रूप में समादृत हैं किन्तु उनका प्रति विरोध का स्वर भी कम सुनवर नहीं है। यह विरोध प्रायः ही उनकी व्यक्तित्व मानवतावादी दृष्टि के प्रति साहित्य-साधनित रहा है। उनकी दृष्टि की मात्र रोमांटिक कहकर केसरी में एक बड़ी समीक्षा आई थी जिसका स्वर था कि 'जिस लेखनी को रियलिज्म का नेतृत्व करना चाहिए था, वह पथभ्रष्ट होकर भटक रही है। शंकर कुरुष ने बासुरी संग्रह की श्रमिका में

स्वयं स्वीकार किया है कि हम सामोचा ३८ महीने का गर्भवती थी ।
(बागुरी पृष्ठ १०) । जोवन मुष्टगिरि जमे प्रगतिशील ममात्मक । नगर
कुछ पर हमेशा ही करता सामाजिक । जाति है कि समाजवादी की भूमि
पर न रहने का नगर कुछ जल सामाजिक भावों और धार्मिक निजी
धर्मों को मध्य में का धर्म । सामाजिक चारों ओर न चरम म
पर न जो कुछ गोपनीय ममा और सहा भोग होगा या सामाजिक नगर की
नियति न बहुत महत्त्व रखता है । दलील न मरे धर्म प्रत्यक्ष हमी लग
कीय नियति के दृष्टि न न दृष्टि न ।

प्रश्न संगत की प्रतिबद्धता व विषय में छापर क्या विचार है ? क्या छापर मानते हैं कि संगत को किसी एक या पार्थी सा विचारधारा में प्रतिबद्ध होना चाहिए क्योंकि तभी उसकी रचना में एक सादृश्य कमटना आता है ?

उत्तर प्रत्यक्ष लेखक का पहला अपने प्रति प्रतिबद्ध होना चाहिए। सगा की एक अलग विचारधारा है जो दूसरे मनुष्य की। दूसरे मनुष्य की ही तरह वह भी अपने को पूर्णतया मानने के लिए अपने विचारों का पक्ष धारण करता है। वह माया के माध्यम से आत्मोपनिषद् के लिए साधना करता है। इसी लिए उसकी अपनी प्रतिबद्धता अपने प्रति ही हो सकती है। हमारे बाप मेरी प्रतिबद्धता अपने देश के प्रति आती है। मनुष्य गुण अलग गुण मनुष्य के साथ मेरा देश मेरी अभिप्राय का क्षेत्र है। क्योंकि वह मेरी मातृभूमि है। मेरी जब इस मातृभूमि के अलावा और कहीं हो सकता है ?

प्रश्न तो क्या आप लोग के लिए सामाजिक उत्तरदायित्व का बोध आवश्यक मानते हैं ?

उत्तर : 'प्रत्येक लेखक का सामाजिक उत्तरदायित्व होता है। वह एक फूल की तरह है जो अपने अस्तित्व के लिए समाज से रस ग्रहण करता है। तने से कटकर वह जीवित नहीं रह पाएगा। मैं मानता हूँ फूल समाज के लिए है। इसी में फूल का महत्व है शोभा है।'

प्रश्न 'आपकी रचनाओं में जो सांस्कृतिक अभिजात है उसे प्रगतिशील आलोचक पसंद नहीं करते। किसी भी श्रेष्ठ कायकर्म में किसी मतवाद की छाया अनिवार्यतः भोजन या चाहना निहायत अनुचित प्रयत्न है। क्या आपको साहित्य में प्रचलित होते इस तरह के दसवाद और राजनीतिक दुराग्रह से कोई परेशानी होती है ?

उत्तर इस तरह के प्रयत्न हमेशा होते रहे हैं और होते रहेगे। यह ऐतिहासिक प्रक्रिया है। इतिहास हमारी नियति नहीं है। मैं किसी एक विचार धारा के सामने समर्पण क्यों करूँ ? ये सभी आशिक सत्य को धोपित करते हैं और उसी के प्रति हमारी निष्ठा की मांग करते हैं। संसार का कोई व्यक्ति

या कोई पुष्पक मनुष्य के भविष्य की यथातथ्य घोषणा करने में सक्षम नहीं है। भगवद्गीता तक यह नहीं कर सकती, तो औरों की ता बात ही क्या। एक आदमी सभी सत्य नहीं जानता नहीं जान सकता। कृष्ण, बुद्ध ईसा सभी असफल हो गए, फिर माक्स ही सदा सफल कस हो सकता है? वह भी 'केल' करेगा।"

प्रश्न 'कहा जाता है कि भारत में उच्च बोर्ड के साहित्यकारों को अपने प्रभाव या पंथ में लाने के लिए अनेक तरह के तत्त्व अंतर्राष्ट्रीय शिविर (रूस, अमरीका, चीन आदि), राजनीतिक सस्थाएँ (कांग्रेस, कम्युनिस्ट आदि) या फिर पूँजीपति वर्ग के लोग तरह तरह के दबाव डालते हैं। क्या आपके पास हम तरह का कोई अनुभव है?'

उत्तर लेखक को हमेशा अपने प्रति अपने दस के प्रति ईमानदार होना चाहिए वह इस शक्ति के सहारे बाकी सभी स्थावरो को असफल बना सकता है। मैं पूर्णतः स्वतंत्र हूँ। मैं किसी का दबाव नहीं मानता। मेरे पास 'फोरम फार कल्चरल प्रीडम' की ओर से कुछ आग्रह आया। मैंने उसे अस्वीकार किया। सजा ज़हीर मेरे मित्र हैं। मैं किसी भी प्रकार के बचन से रचनाकार का बाधा जाना पसंद नहीं करता।

प्रश्न 'आपको जानपीठ पुरस्कार मिला। इससे भारत के अधिकांश लोग प्रसन्न हुए होंगे कि एक बरेल्य का वर्णन किया गया। पर पुरस्कार सम्मेलन में प्रधानमंत्री नहीं आइ जबकि वे सोविशत भूमि नेहरू पुरस्कार समारोह में सम्मिलित हुई, इसे आप क्या कहेंगे?'

उत्तर मैं एक बहुमुखी राजकुमार की अपेक्षा प्रकाश देने वाली मामूली टाच अधिक पसंद करता हूँ।'

प्रश्न क्या आप जिसे सत्कृति आत्मकलास्वरूपावणी का धार्मिक चिंत कहते हैं वह प्रकारान्तर से अपने से भिन्न एक मतवाद के प्रति आपकी प्रति बढ़ता नहीं है?'

उत्तर 'मैं मेरे वंश के बाहर की बात है। एक दिन प्रातः काल बाहर आया तो देखा एक छोटा सा पीछा उठा हुआ है। वह बीज के द्विदल की भाँति सँभले खड़ा है। मुझे लगा कि वह प्रणाम की मुद्रा में सिर के ऊपर हाथ जोड़े विकास त्रय के अगले सोपान की यात्रा के लिए तत्पर है। मैं सम्पूर्ण संचराचर को उस विराट् हृदय की अभिव्यक्ति मानता हूँ। तिर्यमुष्मिल। श्री सन्निधि। यह सारा विश्व ही उसके प्रभाव से मेरे लिए सीधे बन गया है। मरी कविता विश्वहृदय इसी भावधारा को उपस्थित करती है।'

अचानक मैंने देखा कि कवि कुरुष का मुखमण्डल बहुत कोमल और आदर प्राप्त है। उन्होंने दोनों हाथ माथे के ऊपर जोड़कर पीछे की मुद्रा का परिचय दिया तो लगा कि इस कवि के भीतर आस्तिकता और बर्चस्व स्नेहाद्रता

का अदभुत समन्वय है। उस समय उनकी प्रत्येक शिरा में एक ही कम्प थी—
 'अमये बिटे ! मा कहाँ है ? कहाँ है मा ? अतीन्द्रिय के प्रति आदरांमथित
 जिनासा का यही भाव कुरुष के प्रकृति वर्णना की प्राणभूमि है। उह इस
 मन स्थिति में देखकर मने निश्चय किया कि अब इनसे रचना प्रक्रिया के विषय
 में सवाल पूछने का समय आ गया है।

प्रश्न 'विश्वहृदय के प्रति आपकी यह आसन्नित आपकी रचना प्रक्रिया
 में किस तरह सहायक होती है ?

उत्तर मैं अपनी भाषा के माध्यम से विभिन्न वस्तुओं के सही वक्तव्य
 को उपलब्ध करना चाहता हूँ। यह एक सर्वांगीण प्रक्रिया इसलिए हो जाती
 है कि एक ही चेतना वस्तु माध्यम और रचनाकार तीनों में तरह तरह से प्रति
 च्छादित हो रही है। मेरी चेतना का कोण मूल्यव्यक्ति है। विराट चेतना
 प्रतिदानहीन हो तो भी मूल्यव्यक्ति के अनुराग में कोई अंतर नहीं आता। मैं
 विग्रहाराधक हूँ। विग्रह एक प्रतीक है जो किसी न किसी सत्य को व्यक्त करता
 है। इसे आप भक्ति न कहकर आद्रता या द्रवणशीलता ही कहिए। यह मेरे
 भीतर बचपन से ही रही है। सत्य मुझे इसी के माध्यम से रिबील्ट होता
 है। मैं नहीं मानता कि ईश्वर सृष्टि से कहीं अलग है। मनुष्य का मस्तिष्क
 उसके स्वप्नों से बड़ा होता है। सृष्टि की वस्तुएँ उस विराट रचना प्रक्रिया की
 देन हैं। मैं इसे देखकर आश्चर्य से ठगा रह जाता हूँ।

असल में आज हम भारत के सही विज्ञान का खोज चुके हैं। बीसवीं शती
 के आधाता ने हमसे बहुत कुछ छीन लिया है।

प्रश्न यह विज्ञान तब तक आधुनिक अर्थों में साधक नहीं हो सकता,
 जब तक भारत के आधुनिक परिप्रेक्ष्यो से यह जुड़ता नहीं। आप समसामयिक
 भारत के किसी पक्ष को लेकर कुछ लिख रहे हैं ?

उत्तर मैं कोशिश कर रहा हूँ। इधर मैंने आधुनिक भारतीय इतिहास
 के कुछ चुने हुए दृश्यों को लेकर काव्य लिखने का प्रयत्न किया है। भासडा
 नगल को कन्द्र बनाकर कविता लिखी है। आपको नगी सूक्त की याद होगी।
 धनुधर रम के घोड़ों के समान चलने वाली शतद्रु (सतलज)। मैं जब इसके
 किनारे पड़ा होता हूँ तो मुझे एक विराट शक्ति गिव सम्मिलन का दृश्य
 दिखाई देता है। गतः पावती है गति है प्रकृति है। समूह मनुष्य जो इसे
 आलिंगन में बाँध रहा है गिव है पुरुष है। शतद्रु जब क्षुब्ध होती है तो भोग
 वात्सियों को मोहनजोदड़ो में बल देती है क्योंकि वे दुबल और पुरुषत्वहीन
 थे। गतः केवल कमवीरा का वर्ण करती है। उस कविता का एक अंग
 सुनिए

गतिस्वरूपा प्रकृति और गतिमान मनुष्य को सपुलक पूजता मैं भासडा

नगल पर खड़ा हुआ। दोनों ओर खड़े हैं मानव के आचानुवर्ती होकर गिरि-
पार्यद। भारतीय प्रभात। विमल मधुरिम। आदित्य विभु पुरुष प्रकाश के
पूजा से उम सगम की पूजा कर रहा है जहाँ शक्तिमान ने शक्ति का आलिंगन
किया।

प्रश्न वाह आपने तो खूब स्पष्ट बाबा। परन्तु प्रकृति गुरु की मून
धारणा तो आपको वही रही उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। और भी कोई
'धीम' ली है क्या?"

उत्तर हाँ, गाँधी जीवन पर भी लिख रहा हूँ। और यह सब कुछ
अनुप्राण छ'द म। लोग कहते हैं कि यह छ'द काव्याभिव्यक्ति के योग्य नहीं
है। पर मैं इसकी शक्ति आजमा रहा हूँ। मैं तो मानता हूँ कि भावशक्ति अपने
योग्य अभिव्यक्ति-माध्यम स्वयं ग्रहण कर लेती है।

प्रश्न इधर हिंदी में आधुनिकतावाद की बहुत चर्चा है। नुह पीपी
आगे आई है। नग्न यौन सम्बन्धों की चर्चा करनेवाले बीटनिकस बुभुक्षित,
विद्रोही नवयुवकों की सख्या बढ़ रही है जो परम्परा को मत और अब तक के
लिखे साहित्य को बूढ़ा कहते हैं। मैं समझता हूँ कि इस तरह के कथन में
सत्यास उत्तर है। आपका क्या जवाब है?

उत्तर मैं आधुनिकता का विरोधी नहीं हूँ बल्कि समर्थक हूँ। पर हमें
अपनी आधुनिकता को यूरोपीय आधुनिकता से अलग करना चाहिए। जानपीठ
पुरस्कार समारोह के समय दिल्ली में एक साहित्यिक गोष्ठी आयोजित हुई थी।
उमम बरमा ने एक बड़ी अच्छी बात कही थी। विश्व में पूँजीवाद है साम्यवाद
है चीनवाद है। अलग अलग देशों में अलग अलग विचारधाराएँ चल रही हैं,
इसलिए आधुनिकतावाद को अन्तर्राष्ट्रीय कहना बेकार और व्यर्थ है। कहाँ है
आधुनिकतावाद? पाँच हजार वर्षों से इस राष्ट्र में बहुत-से उत्थान पतन
देखे हैं। पर इसके बावजूद वह यदि आज तक बचा है तो स्पष्ट ही ऐसा उसका
भीतर की शक्ति के कारण हुआ है। हमें भारतीय आत्मा की उसी शक्ति को
उपलब्ध करना चाहिए।

प्रश्न भारत की साम्प्रतिक स्थिति आपके सामने है। अव्यवस्था, अकाल
अराजकता, बर्दशानी, घूसखोरी भ्रष्टाचार सत्तेह अनास्था आदि आदि। ऐसी
स्थिति में आप भारत के जिस सांस्कृतिक नाद की बात करते हैं उसके मद्धम
मुप्त या मत होने का आशय आपको नहीं होनी?

उत्तर मैं आत्मावादी हूँ। यह मेरी आस्था का ही एक अंग है। इसी के
कारण बहुत से लोग सोचते हैं कि मैं आधुनिक परिस्थितियों के प्रति ईमानदार
नहीं हूँ। किन्तु बिना आत्मावाद के मैं चल ही नहीं सकता। यही बात मैं देश
के भविष्य के बारे में भी कहना चाहता हूँ। हमें सामयिक उपलब्ध पुस्तक से

निराला होने की आवश्यकता नहीं है ।’

उन दिनों कलकत्ते में भारत और बेस्ट इण्डियन ब बीच क्रिकेट मच चल रहा था । उत्साही दसक पण्डाल क्षामियानो घोर बुमिया की होनी जता चुके थे । मेरे घाने के पहले कुरुप जी ट्राजिस्टर से कमेण्टरी सुन रहे थे । बहुत सा खेल वसे भी अश्रुत रह गया था । नवि वीतुर म बाघक बोन बने । मैं उठ आया । तभी मुझे याद आया कि एक स्थान पर कवि कुरुप ने विजती को पतले काँच के भीने अवगुण्ठन से भाँकने वाली विद्युत् की अप्सरा कहा है । ट्राजिस्टर उहे गधव कया सने, तो क्या आश्चर्य । ऐसे प्रेमालाप में अधिक अवरोध डालना उचित न होता । ‘वर्णानिरु अभिजाता कवि कला के पखो को सत्य की रक्त निराएँ प्रगान करती हैं और उसमे उछान की गक्ति भर देती हैं । इसमें शक नहीं कि शकर कुरुप में ‘कल्पना की मनोरम उडानें हैं किन्तु यथाय का अभाव नहीं । वे हिं दी पाठक के दृष्टिकोण से छायावादी कवि ठहरते हैं किन्तु एक ऐसे कवि जिनमें पन की सुकुमारता है तो निराला की यथायप्रियता भी । दूसरी ओर भारतीय परम्परा के प्रति उनका अभिज्ञान ब्रह्मानिक दृष्टिकोण से समवित होकर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की याद दिलाता है । इस दृष्टि से शकर कुरुप के वाङ्मय में सीकुमाय यथाय और मानवतावादी चिन्तन की एक अवभूत त्रिवेणी दिखाई पड़ती है ।

एक जलती शाम द्विवेदी जी के साथ

गमियां म आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जब काशी आते हैं हर शाम उनके निवास-स्थान पर एक खासी मञ्जलिस जम जाती है। भयानक सू से तपे दिन की उममती शाम कहकहो की बीछारा म नहा जाती हैं। बातों का दायरा मजीब प्रतिवादी छोरो को छूने लगता है। उसके घेरे मे हिन्दी के 'गोष ग्रन्थ सभान स लेकर लिग्वाल्मोतवा' साहित्यिक पुरस्कारो से लेकर हिन्दी विभागाध्यक्षा के कहकहरी मामले रुपये के भवभूत्यन से लेकर खण्डीगढ पर मँडराते पाकिस्तानी बायुमानो की भयानक धावेँ—सभी कुछ सिमट आते हैं। प० विष्णुकांत शास्त्री तुलसी के विनय काव्य पर घोष के मिलसिले मे प्रयोध्या हो आए। बनक भवन म बठकर विनयपत्रिका का पाठ कर आए। हनुमानगढी के हनुमान को भी सुना आए। महता के चरणोदको म सकल भय हज-नाशक शक्तियो के बारे म वैरागियों के भट्टट विश्वास के सतीफा पर ठहाके लग रहे हैं। डा० रामपूजन तिवारी आए हैं कमी 'रायिस्ट' के भव सूफिया पर 'गोष' करत हैं। 'गामद' हर 'रायिस्ट' कमी न कभी सूफी हो जाता है जसे वात्स्यायनजी ही। कहकहे ठठठाने हैं। पहल पण्डितजी की बातों म कबीर की साखियों सस्कृत, प्राकृत भषभ्रश की सूक्तियो के बेंन-भूटे टँकते से ह्मर नई कविता के कसीदे भी उमर रहे हैं सिफ मजाक म नहीं, काफी सजीदगी के साथ।

नय साहित्य के प्रति उनकी इस रुझान का ही नतीजा है, या किसी धीर का कि वे आजबल बहुन-सी बातों पर निस्सकोच अपनी राय व्यक्त कर देते हैं। मुझे यह परिवर्तन कुछ इतना प्रीतिकर लगा कि मैं उनसे साहित्य के कुछ महम मतलो पर ये सवाल कर बठा। भूमिका के रूप म प्रार्थना की कि यदि जबाब बिना साग-सपेट के दे सकें तो ही पूछू। व एव क्षण चुप रह मूछो म उगना डाले। (मैंने भी मान लिया कि इष्टरय्यु लेना बकार है।) फिर मुझे

अनुद्यत देख बोले— अच्छा पूछो ।

इधर आपने इतिहास लेखन के सिलसिले में आधुनिक साहित्य को खूब विस्तार से पढ़ा है । नवलेखन के बारे में आपकी क्या धारणाएँ बनीं ?

हाँ इधर बहुत कुछ पढ़ा है पर अभी भी खूब अच्छी तरह पढ़ने का अवसर नहीं मिला । कविता कहानी की बहुत सी चीजें देखी हैं । कुछ बापों अच्छी लगी । महत्त्वपूर्ण । बहुत सी फैशन की उपज हैं । अनुकरणात्मक । उनमें मुझे अनुभूत सच्चाई का अभाव लगा । मदानजी कहा करते हैं कि आज कल कविता तो है कवि नहीं हैं । इसका मतलब है कि कुछ अच्छी कविताएँ तो मिल जाती हैं पर कवियों का कोई विशिष्ट व्यक्तित्व नहीं बन पा रहा है । कविता के सकलनों को देखते जाग्रो, लगेगा कि बहुत सी कविताएँ एक जसी हैं । इन्हें देखकर मुझे लगा कि आज का कवि अपने अनुभवों के आधार पर कुछ विशिष्ट, कुछ अलग नहीं दे पा रहा है ।

तो क्या आप मानते हैं कि आज का साहित्य घुरीहीन और विकेंद्रित है ?

मैं इन शब्दों का प्रयोग तो नहीं करूँगा, पर बहुत बिखराव है यह सही है । मेरा कहना यह नहीं है कि बिखराव न हो । वह तो होगा । जीवन में ही बिखराव आ गया है, तो साहित्य में क्यों न होगा । पर अतृप्तता यदि सब कुछ पकड़ से छूट ही जाए तो फिर साहित्य का प्रयोजन ही क्या रहेगा । मुझे लगता है कि आज का साहित्यकार किसी भी जीवन-यापी महत्त्व मूल्य से सम्बद्ध नहीं रह गया है । जीवन की विसंगति विघटन और बिखराव के बीच वह खुद दिग्भ्रमित हो गया है और किसी नतीजे पर नहीं पहुँच पा रहा है ।

तो आप क्या साहित्य में सोद्देश्यता आवश्यक मानते हैं ?

सोद्देश्यता पिछले मेरे के साहित्यकारों के लिए एक शनिवाय वस्तु थी वह एक निश्चित उद्देश्य लेकर साहित्य लिखता था । जैसे प्रेमचंद यशपाल या जनेन्द्र को ही लो । ये कहानी लिखने के पहले एक उद्देश्य तय कर लते थे । उन्हें निश्चित बात कहनी थी । वैसे तो कहानी में इन्होंने यथार्थ का परिवेश स्वीकार किया कि तु यथार्थवादी यह प्रयत्न भी आइडियलिस्टिक (आत्मावादी) था । यानी एक आइडिया तय करके उसके अनुसार जीवन को उपस्थित करना । आज का लेखक इस तरह का कोई आइडिया लेकर नहीं चलता । यह ठीक है । क्योंकि 'आइडिया या उद्देश्य ऊपर से धारापित नहीं होना चाहिए जीवन के भीतर से फूटना चाहिए । मगर सांग कीर्ति करने पर भी उसकी रचनाओं से यह फूट नहीं रहा है ।

इस बात को छोड़ा और स्पष्ट कीजिए ।

या ममम्भो ! भारत की प्राचीन चित्ररत्ना को लो । उसमें रेखाएँ पढ़ल

बना ली जाती थी, यानी खाका तैयार करके उसमें रंग भरने का प्रयत्न किया जाता था। भारत ही क्या, सारे एशिया की यह प्रणाली थी कि रेखाएँ तय करके उसमें भरावट की जाती थी। रेखा यानी सीधी ब्रह्मरेखा। चित्रकार इसी मूल रेखा के आधार पर निश्चित भाव के चित्र निर्मित करता था। इसे विधर कितना भुकाए, कितना कब दे, कि वह शृंगार, रौद्र, या फिर हास्य या किसी और रस भाव की सृष्टि कर सके, यह उसका प्रयत्न होता था। रेखाओं की सारी भंगि मूल रेखा की दृष्टि में रखकर व्यवस्थित की जाती थी। पश्चिम की प्रणाली भिन्न है। वे लाइट और शेड (प्रकाश छाया) के संयोजन के द्वारा रेखाओं का बोध जगाने का प्रयत्न करते हैं। उनकी आधुनिक चित्रकला में यह बान और भी स्पष्ट हो जाती है। उनका प्रयत्न होता है कि पहले 'लाइन' तय न हो प्रकाश और छाया की ऐसी व्यवस्था की जाए कि 'लाइन' स्वयं आ जाए। हमारा आधुनिक साहित्यकार इस पद्धति को अपना रहा है, पर अभाग्य वगैरह हमारे प्रयत्नों के बावजूद कोई ठीक सीमा बन नहीं पाती, या उल्टी सीधी ऐसी बन जाती है कि पाठक विरक्ति अनुभव करने लगता है।

आपका मतलब यह है कि लेखक कोई निश्चित 'लाइन' उभार नहीं पा रहे हैं।

मैं भाज की कहानियाँ और कविताएँ पढ़ता हूँ तो लगता है कि कुछ बात बनी नहीं। बहुत कहाँ पर उसमें कुछ स्पष्ट होकर उभरा नहीं। महादेवीजी की एक पवित्र है मैं अपने विमुषण में कहती कुछ, कुछ कह जाती। भाज की एक सवमाय प्रवृत्ति है शब्द का कम से कम अपव्यय। यह एक अच्छी बात है। नई कविता में यह प्रवृत्ति खूब है। कम से कम शब्दों का खज, तथा सदाश को अधिक से अधिक अनुमान के लिए छोड़ देना। मगर ऐसा प्रकृति कारण किम प्रय का कि वह निरपेक्ष हो जाए। कहानियाँ पढ़ता जाता हूँ तो लगता है कि अनावश्यक बातें बनी जा रही हैं जिनका कहीं से कोई तारतम्य नहीं।

यही तो मैं कविता में कहानी का लक्षण है।

होगा। पर यह बात गाँठ बाँध ला कि जो इस पूरे विखराव को समालने में सक्षम हैं, जिनके पास समझने की कला है, वस्तुतः वे ही उच्च कोटि का सृजन कर सकते हैं जो अचेत हैं उनकी पकड़ में यह विखराव कभी बँध नहीं पाता। छूट जाता है।

आप नई कविता में क्या कुछ ऐसे कवियों का नाम लेंगे जो आपको इस सक्षमता वाली तुला पर सटीक उतरते हों।

क्यों नहीं, गिरिजाकुमार माथुर, भवानीप्रसाद मिश्र (बसे वे नई बातों में कुछ पुराने लगते हैं) सर्वेश्वर कृष्ण नारायण भारती में यह क्षमता दिखाई

पडती है ।

अज्ञेय के बारे में आपका क्या खयाल है ?

अज्ञेय में दोनों ही प्रवृत्तियाँ ज़िम्माई पडती है ।

और भुक्तिबोध ?

भुक्तिबोध का सबलन 'चाँद का मुँह टेढ़ा है मैंने पड़ा है । दो तीन कविताएँ निरस-देह उच्चकोटि की हैं, जैसे अंधरे में' । लेकिन गेप कविताओं को देखकर लगता है कि इनके जगल में कवि खो गया है ।

भारती के बारे में कुछ कहिएगा ?

भारती ने बहुत अच्छा रिश्ता है, काफी महत्वपूर्ण । इधर ठण्डा लोहा भी पड़ा । कई कविताएँ बहुत अच्छी हैं । और फिर 'ननुप्रिया' । उच्चकोटि की कृति है । कहीं कहीं भावुकता का रस जरूर गाढ़ा हो गया है, पर भारती समर्थ कवि हैं इसमें सन्देह नहीं । असल में पुरानी परम्परा की समृद्धि और नवीन की बोद्धिकता का सम वय बहुत जरूरी है । पुरानी परम्परा भाव तक सीमित है । बोद्धिकता का रूप वहाँ दर्शन का विषय हो जाता था । आज का कवि बोद्धिकता का पक्ष लेकर अनात्मन ससक्ति की बात तो करता है, पर हो नहीं पाता । परिणामतः साहित्य में न तो भाव जयत ठीक से प्रतिष्ठित हो पा रहा है न बोद्धिक विवेक । आधुनिक मनुष्य निष्ठात्मिका बुद्धि की ओर अग्रसर होना चाहता है पर साहित्य में उसकी प्रक्रिया क्या हो इस पर बहुत सही ढंग से विचार नहीं कर पा रहा है ।

आप बोद्धिक दृष्टि से साहित्य की सामग्र्य का विश्लेषण करके किस नतीजे पर पहुँचना चाहते हैं ?

देखो भाई, मैं कविता की प्रिमिटिव कला मानता हूँ । संगीत इसका एक छोर है । मात्र '०' । कविता में '०' और अर्थ का योग है । यहाँ '०' और अर्थ में कौन प्रधान है, कहना कठिन है । दोनों का तुल्यतर योग होता है । कविता में एक '०' हटाकर उसका पर्याय नहीं रखा जा सकता । कहानी में रखा जा सकता है क्योंकि कहानी अर्थ प्रधान चीज़ है । वह प्रिमिटिव नहीं है सिवलिजेशन (सम्पत्ता) से जुड़ी हुई चीज़ है । इसी कारण आधुनिक जीवन में त्रिपराय और उलभना की यत्न करने की क्षमता भी उसमें कविता की अपेक्षा अधिक है । कविता संश्लेषण प्रधान होती है वह साधारणीकरण चाहती है कहानी विश्लेषण प्रधान है । वह विभायीकरण की प्रक्रिया है । आप कुछ कवि जब कहानी लिखना है तब वह कवि घम ४ चुन होता है छ' व बिना कविता नहीं हो सकती । मैं यह मानकर चलता हूँ कि छ' का अर्थ साग मो' ढग में गिरान नहीं मान लेंगे । कला की सबसे बड़ी शक्ति उमकी नमनीयता है रिदम । जिसमें जिनका अधिक नव तीन की सामग्र्य है वट

उतनी ही उच्चकोटि की कला का सृजन कर सकता है। तानपूरे में स्वरा व 'कव' की जो गति है वह हारमानियम में नहीं है। अथ की प्रधानता तो इतिहास में भी है कहानी में भी। पर कहानी इतिहास नहीं है, क्योंकि उसमें 'क' के कारण एक विलक्षण शक्ति और सामर्थ्य आ जाती है जो इतिहास में नहीं होती। आज के कहानीकारों से मेरी शिकायत यह है कि वे समस्याओं से टकराकर खुद बिखर जाते हैं, उन्हें संभाल नहीं पाते, उनमें कर्वेंचर का अभाव है।

आपने अभी कुछ कवियों का नाम लिया था, क्या कुछ कहानीकारों का भी नाम लेंगे जिनमें आपको यह कर्वेंचर दिखाई पड़ता है ?

क्यों नहीं। मुम्हारी कहानियों में यह 'कर्वेंचर' है। मन्नु भण्डारी उषा प्रियम्बदा, कमलेश्वर, निमल वर्मा और शिवानी में मुझे यह क्षमता दिखाई पड़ती है।

नये साहित्यकारों से क्या आपको कोई शिकायत है ?

मेरी शिकायत यह है कि हिन्दी का सांस्कृतिक 'बकघाउण्ड' (पठभूमि) काफी कमजोर होना आ रहा है। नये लोगो को पढ़ने से परहेज है। अपना जो कुछ पुराना साहित्य या वाट मय है, उसका प्रति अरुचि हानी आ रही है। परम्परा ज्ञान लुप्तप्राय है। दूसरी कलाओं के बारे में भी चाहे प्राचीन हा या नवीन, उदासीनता बढ़ रही है। इतिहास से कटकर कोई भी कभी समृद्ध नहीं हो सकता। नये लोगो में तो जैसे न पढ़ने या न सीखने का फलन चल गया है। मेरे एक शिष्य हैं। पी एच० डी०। उनका मैंने अभी एक निबंध पढ़ा। लिखा है कि मैं पी एच० डी० होना नहीं चाहता था पर हो गया। यह तो मैं ही जानता हूँ कि बिचारे उस पी एच० डी० के लिए कितने व्यग्र थे। निबंध पढ़कर मुझे बड़ा दुःख हुआ कि बिचार को नाहक पी एच० डी० दे दी, क्योंकि इससे उसे अपने अनपढ़ होने का रोष लेने में बाधा पड़ रही है। यह हास्य है आज हिन्दी साहित्य कारों की। अध्यवसाय और परिश्रम जहाँ उपहास की चीज हो जाए वहाँ सांस्कृतिक स्तर की क्या आशा की जा सकती है ?

इस सांस्कृतिक दारिद्र्य का कारण क्या है ?

दरिद्रता का कारण दरिद्रता है और क्या ?

मेरा मतलब यह है कि क्या हिन्दी क्षेत्र पहले से ही सांस्कृतिक दृष्टि से ऐसा ही दरिद्र था कि अब हो गया है ?

पहले ऐसा दरिद्र नहीं था। अब हुआ है। कारण यह है कि हम अपनी विरासत के प्रति अचेत हैं। यानी कपूत। यह कितने दुःख की बात है कि बाप दादा के इतने बड़े उत्तराधिकार से हम कट गए हैं और अपने खोखलेपन को विनापन की चीज मानते हैं।

क्या प्राधुनिक स्थितियाँ न आप यह मानते हैं कि कोई भारतीय सभ्यति नामक चीज हो सकती है ?

क्या नहीं हो सकती ? गौतम को रूप दो का प्रयाग ही संस्कृति है। क्या आज भारत में पास कुछ भी ऐसा नहीं ज़िम्मा रूप दिया जाय। माना पढ़ने से अन्त में नता घा गई है पर जो है वह कृत्रिम निरन्तरणीय नहीं है। जिसमें पास धानी कोई जीवन दृष्टि नहीं है कोई दान नहीं है स्त्रीय पद्धति नहीं है वह कभी कोई बड़ी चीज द सभ्यता है इसमें मुझे सन्देह है। जो अपनी इस सभ्यति को नहीं समझ रहे हैं व एस ही चुड़चुड़ रहे, इसमें कोई गलत नहीं। माना कि आज बहुत परेगानी है भुगमरी है, बेरोजगारी है—पर 'लोग मर रहे हैं' ऐसा चिन्तान से क्या लाभ हान का है। यह सब कैसे गलत हो पातिर इसमें लिए भी कुछ करो, कुछ घटनाओं, चिन्ताना भर तो साहित्यकार का दायित्व नहीं है।

आप कहा जाता है कि सन साठ के बाद मवतेसन में एक परिवर्तन आया है। रचनाओं में बिल्लराव कुण्ठा, सन्नाह विसर्गति के स्वर दिया मुझर हुए हैं। इसका कारण लोग चीनी आक्रमण और करत में साम्यवादी सरकार की वर्तमानगी जसी घटनाओं में लगेते हैं। क्या आप इससे सहमत हैं ?

बिल्कुल नहीं। ये दोनों कारण फालतू हैं। यदि मैं प्रवर्तियों साहित्य में या जीवन में बड़ी हैं तो इसलिए कि सबेदन चित्त को लग रहा है कि इस देश में चीजें जमी चलनी चाहिए नहीं चल रही हैं। यह अपने प्रति अपना ही क्षोभ है। मैं इसमें उपयुक्त घटनाओं का कोई प्रभाव नहीं देखता।

कि तु जसी स्थिति चल रही है धानी धीरे निराशाजनक उसमें क्या आपको नहीं लगता कि साहित्य सिर्फ अंधेरे में खोख बनकर रह जाएगा ?

कसी वाहिदात बात है। मैं तो भाई धीरे आशावादी हूँ। इसलिए मैं पूरा अच्छी तरह जानता हूँ कि यह सब निराधार और बकवास मात्र है। तुम क्या समझते हो ये सब जो लोग लिख रहे हैं, वे लेखक हैं ? इनमें से बहुत से नये लेखक जीनेवाले नहीं हैं। कल को इनमें बहुत से सरकारी नौकरियाँ में चले जाएंगे। बहुत से वहाँ पहुँच जाएंगे जहाँ वे अनुशासनहीन भौंड पर लाठी धाज कराएंगे। बहुत से काम धंधा ठीक होते ही लिखा पढ़ना छाड़ देंगे। सारी निराशा हुवा हो जाएगी। साहित्य अंधेरे की चीख कभी नहीं बना है कभी नहीं बनेगा। अच्छे अच्छे लोग घात रहते हैं और आगे जिनमें जीवन के दृढ़ बड़ मूल्यों के प्रति आस्था होगी और वे साहित्य को सही दिशा की ओर ले जाएंगे।

क्या प्राधुनिक भारतीय साहित्यकार को राजनीति से कोई खतरा है ?

मुझे तो नहीं लगता। अभी तक तो यहाँ साहित्यकार ही राजनीतिक की

निंदा करता रहा है। किसी राजनीति ने साहित्यकारों के खिलाफ गायद कुंठ नहीं कहा। बात यह है कि राजनीति और साहित्यकारों को एक दूसरे का विरोधी समझने की धारणा पुरानी है। आज की सही राजनीति साहित्य को अलग करके नहीं चलती। लोकतंत्र की यही विशेषता है। एक ही मूलभूत विचारधारा साहित्य और राजनीति दोनों में अपने अपने ढंग से काम करती है। हा जहाँ तानाशाही है वहाँ साहित्यकारों को जरूर सतरा है। जैसे आजकल चीन में साहित्यकारों पर दबाव डाला जा रहा है और यूनिवर्सिटियों पर बम्ला किया जा रहा है भारत में ऐसी स्थिति बिल्कुल नहीं है।

गुटबन्दी करके गलत या सही तरीके से अपना विज्ञापन या पुरस्कार तथा सम्मानादि पाने के प्रयत्नों के बारे में आपकी क्या राय है ?

मैं यह मानता हूँ कि ग्रुपिज्म (गुटबन्दी) मध्ययुगीन मनोवृत्ति है। बिलकुल प्राधुनिक विरोधी। स्वतंत्र विचार का प्राधुनिक साहित्यकार गुट क्यों बनाएगा भला ! गुट से शक्ति पाने का प्रयत्न बिलकुल असाहित्यिक है। यह कैसे आश्चर्य की बात है कि जो साहित्य रचना में कोई पूर्वनिश्चित लाइन को मानकर नहीं चलना चाहते वे लाइन बनाकर चलना चाहते हैं।

किंतु ऐसा प्रयत्न सिर्फ नये लोग ही तो नहीं करते ?

जो भी करता हो वह मध्ययुगीन है।

पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के बीच के तनाव के बारे में आपकी क्या राय है ?

पुरानी परिपाटी वाले निरहेदय साहित्यिक प्रयत्न को दाद नहीं देते नयी को लगता है पुराने रास्ता रोक्कर खड़े हैं। हिन्दी में पुरानी पीढ़ी वाले प्रायः सहृद ही हैं। मुझे नहीं याद आता कि कभी पुरानों ने नयों के खिलाफ कोई 'पम्फलेट निकलवाया या 'मनिफेस्टो छपा।

कल बातचीत के सिलसिले में आपने कहा था कि साहित्यकारों को पुरस्कार, सम्मान आदि नहीं मिलना चाहिए ऐसा क्यों ?

मैं अपने निजी अनुभवों द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि ये पुरस्कार अगर बंद कर दिए जाने चाहिए। पुरस्कारों को देने में जो तटस्थता बरती जानी चाहिए वह नहीं बरती जा रही है। इससे हानि ही हो रही है। साहित्यकार अपने को निर्मोही और तटस्थ तो कहते बहुत हैं पर उनके मोह और आसक्ति की कोई सीमा नहीं रहती। हर हिन्दी साहित्यकार अपने अलावा किसी और को कुछ नहीं समझता। उसके घनिष्ठतम साथियों में से भी किसी एक को पुरस्कृत कर दो तो दोष बुरा मानकर पीछे पड़ जाते हैं। दल बाँधकर और बोट बटोरकर पाए जाओवाले पुरस्कार से साहित्य का कोई हित नहीं होगा।

इधर नवलेखन वाले प्राध्यापकों के खिलाफ और कुछ बूट प्राध्यापक नव लेखकों के खिलाफ हाथ धोकर पड़े हैं ऐसा क्यों ?

यह हिंदी का दुर्भाग्य ही है और क्या नहीं। प्राध्यापकों के प्रति विद्रोह असल में पढ़ने सिखने के प्रति विद्रोह का ही रूप है। अध्यापक की कमजोरी यह है कि वह अध्यापन को पेशा बनाकर उसी में कूपमण्डूकवत् जी रहा है। साहित्य उनके लिए वृत्ति है जीविका। वे परिश्रम से बचने के लिए नई वस्तु को ग्रहण करना नहीं चाहते। असल में साहित्य का अध्यापन और साहित्य रचना दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। प्राध्यापक को साहित्य को प्राप्ति पर पक्षेष्टव' में देखने का प्रयत्न करना चाहिए। अनुसंधान और ऐतिहासिक व्याख्या का अपना एक महत्व होता है। इतिहास एक अनंत प्रक्रिया है। कोई भी अनुसंधायक 'इदमित्य' नहीं कह सकता। अपने विचारों से मोहग्रस्त होकर नये विचारों को स्वीकार न करना भी मध्ययुगीन मनोवृत्ति का परिचायक है। प्राध्यापक का कार्य है कि वह अनासक्त भाव से नये साहित्य को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में रखकर देखे। जो लोग नये साहित्य को देखने का अवसर नहीं निकाल पाते और अपने ऐतिहासिक अनुभवों में लगे रहने के कारण नये को दान नहीं दे पाते वे नया द्वारा निन्त हैं। यह भी स्वस्थ प्रवृत्ति नहीं है।

गुबारे कारवाँ बाकी

शब्दालोक' श्री रामचन्द्र वर्मा के राजपट नगर वाराणसी स्थित मकान का नाम है। वाक्यपथीय भक्तृ हरि ने लिखा है 'न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यश्शब्दानुगमाद् ऋते' यानी कुछ भी शब्द के बिना नहीं है। यह बात वर्माजी के जीवन पर पूरी तरह लागू होती है। उनका पूरा जीवन शब्दमय है। १९११ ईस्वी में नागरी प्रचारिणी सभा ने हिन्दी के प्रथम प्रामाणिक और विस्तृत शब्दसागर का काम शुरू कराया। इस अनुष्ठान के कर्त्रीय पुरुष श्यामसुन्दरदास थे और दोनों रामचन्द्र—धुवन और वर्मा—उनकी भुजाएँ। आठवें खंड में भूमिका के साथ ही गई चित्रावली में यह प्रतीकात्मक चित्रित है। वर्माजी पिछले सत्तावन वर्षों से अपने जीवन का सम्बन्ध इस शब्दयज्ञ में होम करते आ रहे हैं। विमर्शमान से अपनी बातचीत के दौरान वर्माजी ने जो कुछ कहा उसके महत्त्वपूर्ण अंश यहाँ दिया जा रहे हैं।

— शब्द साधना की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा आपको कहा से मिली ?

मैं उस समय पन्द्रह सोलह वर्ष का था। अंग्रेजी की जैम डिक्शनरी देखकर प्रेरणा लगी कि क्यों न हिन्दी में भी एक ऐसा ही लघु कोश बनाया जाए। उस वक़्त हिन्दी में कोई काम चलाना कोश भी नहीं था। जै० फगुसन का १७७३ ई० में रोमन अक्षरों में अंग्रेजी हिन्दुस्तानी कोश निकाला था। हिन्दी में गौरी नागरी कोश हिन्दीकोश श्रीधरकोश मंगलकोश आदि छोटे माटे कोश अवश्य थे, पर ये पर्याय कोश मात्र थे। ये किसी काम के न थे। १९११ ई० में बाबू श्यामसुन्दरदास की आत्मा से मैं नागरी प्रचारिणी सभा के कोश विभाग में गया। यही से शब्द साधना विषयक मेरे सफलता का व्यावहारिक प्रारम्भ सम्भना चाहिए।

— आप कोश विभाग में कितने वर्षों तक रहे ?

१९२१ में कोश का काय पूरा हुआ। तभी मैं वहाँ से अलग हुआ। बीच में एक बार जब कोश विभाग जम्बू चला गया था मैं वहाँ न जा सका। लाला भगवान दीन, भट्टजी, शुक्ल जी, अमीरसिंह आदि गए। इस व्यवधान के प्रलावा में लगातार कोश विभाग में काम करता रहा।

— उन अठारह वर्षों में कोश विभाग में काय करते हुए हिन्दी शास्त्र कोश निर्माण के माग में आप लोगों को जिन जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा ?

उस समय की कठिनाइयाँ आज की दृष्टि से कितनी बड़ी मानी जाएंगी मैं नहीं जानता शायद आज हिन्दी की अभि यक्ति शक्ति के विवास के कारण वे कठिनाइयाँ कुछ तुच्छ लगें। हम शाब्द की व्याख्या करने में अपार कठिनाई होती थी। 'करना' शब्द की ऐसी व्याख्या कीजिए कि उसमें करना किया वही न आए। मुझे याद है कि इस शब्द की व्याख्या करने में शुक्लजी को और मुझे तीन चार दिन भाषा पचची करनी पड़ी थी। इसी तरह जोड़ना लगना, उठना आदि अति परिचित शब्दों की व्याख्याएँ अत्यन्त कठिनाई की चीज बन जाती थी।

— नागरी प्रचारिणी के कोश विभाग से हटने के बाद आप व्यक्तिगत तरीके से ही शास्त्र साधना के उस महत्त्वपूर्ण श्रम और अथसाध्य काम को करते रहे। क्या इस बीच किसी संस्था सरकार ने आपको कोई सहयोग या कायभार नहीं सौंपा ?

वह एक दुःखद प्रसंग है। मैंने पिछले बीस पच्चीस वर्षों में जिन मानसिक और आर्थिक कष्टों को झेला है, उनकी भाषा क्या सुनाऊँ। इस देश में अभी भी श्रम का कोई भूतय नहीं मिलता।

— फिर भी, मैं तो यही जानने के लिए आया हूँ। अपने साथ हुए दुर्व्यवहारों और सलूकों को भूल जाना व्यक्ति की शालीनता है। पर उन्हें इस तरह ढपा-तोपा रखने से तो अनर्थ परम्परा फूलती फलती रहती है। इसे जान लेने पर भी कोई कुछ कर पाएगा पता नहीं, पर जान लेना भी कम महत्त्वपूर्ण तो नहीं है।

शास्त्रकोश विभाग से हटने पर विलासपुर के महाराज के बुलाने पर डेढ़ दो साल उधर रहा। फिर मुझे साहित्य सम्मेलन में मानक कोश का काय सौंपा। यह काय सम्मेलन के शासन नियुक्त अधिकारी श्री जगदीशस्वरूप की कृपा से मिला। सम्मेलन के अन्य अधिकारी इस निजय के विरुद्ध थे। फलतः उन लोगों ने मेरे कार्यों में अनेकश बाधाएँ डाली। मेरे विरुद्ध प्रचार किया। यानी संक्षेप में यह कि मुझे चार वर्षों का वेतन दिया और दस वर्ष तक काम करवाया।

— इस तरह का कोई अनुभव क्या प्रांतीय या केंद्रीय सरकार के साथ भी हुआ ?

केंद्रीय सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने शब्दावली भीमासा के बाय के लिए ग्यारह हजार रुपये स्वीकृत किए। इसमें हिन्दी के कुछ शब्दों की व्युत्पत्ति और व्याख्या का कार्य होना था। मैंने पाँच छ हजार शब्दों का हिसाब रखा था। पता नहीं उनकी फाइल क किसी कागज में शब्द संख्या दस हजार किस तरह हो गई। मैंने कभी यह सरया लिखी नहीं। खर, शिक्षा मंत्रालय ने कार्य नहीं करवा दिया। यही नहीं, मानक कोश के लिए अनुदान की प्रार्थना के उत्तर में लिखा कि परीक्षण के बाद पता चला है कि मानक कोश को अनुदान न दिया जाए। मैं शिक्षा मंत्रालय के परीक्षण का भय जानता नहीं क्या। मैंने लिखा कि दो सालों में मूने की भेज दें। बस सारी योग्यता हवा। यह है हालत सावजनिक संस्थाओं की और सरकार की।

— हिन्दी के कोश निर्माण के भविष्य के बारे में आपके क्या विचार हैं ?

भविष्य के बारे में क्या कहूँ। कोश का कार्य अनन्त है। जा हुआ है, उस पर अनवरत संशोधन और परिष्कार होता चलना चाहिए। मगर कौन करे ? मानक कोश छप गया। लीजिए यह पेंसिए उसकी फाइल। आप कोई भी पर्मा उठा लीजिए, विस्तृत संशोधन मिलेगा। मरी तो यह हाबी है। देखिए शांति रंग हैं। पने जोड़ जोड़कर सुधार और संशोधन किए गए हैं। कई बार सम्मेलन वाला को लिखा है कि कोई आकर देख तो ले। कोई नहीं सुनता। कब तक अपने पास से छात रहें और बढ़ाते चले ? यह कब तक चले ?

— वाकई यह बड़ी दर्दनाक स्थिति है। सारा हिन्दुस्तान तो घटतक नहीं है आप लोगों की इन निस्वार्थ सेवाओं का कहीं न कहीं मूल्य तो है ही।

सो ठीक है। शुक्लजी मरे। अरबी निकली। उसी दिन मैंने प्रतिज्ञा ली कि मैं तो अपना बहुत कुछ चिन्ता पर लेकर चले गए, पर कोई पूछे या न पूछे मैं नियमित, मरे पास जो कुछ है लिखता जाऊंगा। लिखता रहा हूँ। निस्वार्थ भाव से काम करने वाला का कारवा गुजर गया। मैं गुबार की तरह बचा हूँ। देखिए, यह सब कब तक चलता है।

— जिस देश में सर्वप्रथम कोशकार शुरू हुआ निषट्ट बने यास्क जैसे निरक्तकार हुए उसी देश में ऐसे कार्यों के प्रति ऐसी उदासीनता क्या है ?

मैंने इस पर विचार किया है। मुझे लगता है कि मूल कारण उदासीनता ही है। लोग अपनी भाषा के बारे में ही उदासीन हैं। उनका कैसे परिष्कार

हो, शक्ति बढे, वैसे उसे सत्र प्रकार से समृद्ध किया जाए इस पर लोग का ध्यान ही नहीं जाता। और तो और साहित्यकार और विद्वान लोग भी इन सब चीजों के प्रति उदासीन हैं। सांस्कृतिक गतिरता ही मर गई है जैसे।

— क्या आपके विचार से लघु भाषमफोड शब्दकोश की तरह का कोई प्रायः परिपूर्ण किस्म का शब्दकोष हिंदी में है ?

मेरे देखने में नहीं आया।

— ऐसा क्यों ?

इसके लिए भाषा का स्थिरीकरण आवश्यक है। हमारी लिपि भी काफी संशोध है। शब्दों का क्रम वचनानिब तरीके से ठीक नहीं हो पाता।

— हिंदी कोशकारों की एक प्रवृत्ति यह भी है कि वे व्यवहृत भाषा से सीधे शब्द सकलन नहीं करते। संस्कृत, फारसी और हिंदी उदू क कोण लेकर शब्द सकलन कर देते हैं। सरया लाखा तक पहुँच जाती है, पर उनमें कभी कभी बहुप्रचलित शब्द नहीं मिलते। व्युत्पत्ति और सही प्रयोगों के निर्देश की तो बात ही और है।

आप ठीक कहते हैं। नानमशल और भागव शब्दकोशों में यह प्रवृत्ति अपनी चरम सीमा पर पहुँची दिखाई पडती है। वे लोग मोनियर विलियम के पूरे संस्कृत शब्दकोश को हिंदी में ढाल देते हैं। फारसी और उर्दू के भी ऐसे ऐसे शब्द सकलित कर लेते हैं जिनके उन भाषाओं तक में प्रयोग मप्रचलित हो गए हैं। त्वाष्ट्री हफू चण्ड भगु, सहीन स्फुजपु हेपक जैसे शब्दों का हिंदी से क्या प्रयोजन ! इतलत फाइली इक्षतराकिया मुस्तौजिरी जैसे शब्दों का हिंदी में प्रयुक्त होते हैं ? प्रयोग पर किसी की दृष्टि नहीं सरया लाखा में पहुँचनी चाहिए। यह कभी लेई वाद है जो हिंदी शब्दकोशनिर्माण में बहुत बड़ी र्कावट डाल रहा है। कोश का काम सभी भाषों बढ सकता है जब कुछ लोग शब्द और अर्थ की खोज में जीवन अर्पित करें।

— ऐसी प्रवृत्तियों पर तो प्रतिबन्ध लगना चाहिए। इन्हें रोकने की जरूरत है।

कोशकार जब तक सही ढंग के नहीं आते ये प्रवृत्तियाँ कभी रुकेंगी। असल में कोशकार को अपने उद्देश्य और जनता के प्रयोजन के बारे में स्पष्ट बोध होना चाहिए।

— शास्त्रीय विज्ञान की उन्नति के लिए क्या आप कुछ सुझाव देंगे ?

वर्तमान युग अनुसंधान का है। नाना विषया और क्षेत्रों में विद्यापिया को विनोयन बनाने के लिए करोडा रुपय खर्च किए जाते हैं। सभी सुविधाएँ जुटाई जाती हैं। कीड़े-मकौड़ा और पेढे-पौधों तक के अणु उपयोग के अध्ययन में इतना सत्र किया जा रहा है सभी क्षेत्रों में नये निष्कर्षों में ज्ञान का भंडार

बट रहा है फिर सभी ज्ञान विज्ञान के माध्यम भाषा और उसकी मूल गति शब्दों के आवरण का प्रयत्न इसी पमाने पर क्या नहीं किया जाता ? मेरी हार्दिक इच्छा है कि हिन्दी में शब्द विज्ञान का कार्य व्यवस्थित और शास्त्रीय स्तर पर चलाया जाए ।

— क्या आप हिन्दी के लेखकों और पाठकों को कोई सन्देश देना चाहते हैं ?

मैं तो अपने बुजुर्गों के आशीर्वाद पर चलता रहा । मैं हिन्दी का अदना सेवक हूँ । मैं मानेगा क्या दूँ । मेरी कामना जरूर है कि हिन्दी के साहित्यकार नाम और नाम की चिन्ता छोड़कर काम पर ध्यान दें । जहाँ तक हो सके गुंथ हृदय से हिन्दी की सेवा करें । अपने बारे में उदासीनता छोड़ें । सारे जमाने में कितनी उपलब्ध-पुष्प मची है कितनी गतिमयता है और हम यों ही अपना समय बिता रहे हैं । मुझे उर्दू के शामर की ये पंक्तियाँ याद आती हैं

इधर फलत बट रही हैं घड़िया

उधर जमाने बदल रहे हैं ।

आत्मनेपद
तीन आत्मवीक्षाएँ

मन का दर्पण बनाम कुछ न होने का कुछ

प्रिय भाई

आपने समय की जो वदित बांधी है, वह टूटन का आई और मैं हूँ कि वादा करके भी अपनी कहानियाँ की रचना प्रक्रिया पर कोई टिप्पणी लिख न पाया। ऐसा नहीं कि मैंने जानबूझकर इस काम में हिलाई की। बल्कि अब तो यही कि सोचने की बहुत कोशिश की और हर कहानी के साथ लिपटी स्मृतियाँ की, उसके सृजन के निती की मन स्थिति की और उन सबके साथ बागज पर कहानी घुट होने के पत्ते सीपक के पास मोटाक चित्रों को कुरदने का प्रयत्न किया है कि कुछ भी तरनीज के साथ विचारात्मक ढंग से कहना मुश्किल लगता है। मेरी यह निहायत घुरी घात ह कि मैं खरा सा मूड घात ही कहानी लिखने का सकल्प करके बैठ जाता हूँ और तीन चार सतरें लिखकर अतिम सतर की प्रायः मधूरी ही छोड़कर हाणिय पर या पत्ते के ऊपर खाली जगह पर घाडी निरखी बिदुभा भरी या सहरिया किस्म की सकडा रेखाएँ सीचकर गौर से दखना हूँ कि इनमें कुछ उभर तो नहीं रहा है। मसलन कोई चेहरा कोई मकान कोई लिडकी कोई पक्षी या फिर और कुछ नहीं, तो कोई पटी पनग कोई खाली कनस्तर या कोई फूना गुयारा ही मही। मैं सोचता हूँ कि मेरे इन चित्रों की वही किसी फायडीय मानम पुत्र ने देगा, तो क्या बन्गा—

‘‘गायन सजोफ्रेनिया (Schizophrenia) माना मनोवन का ह्याम। किन्तु मुझे याद है कि एक बार ऐसा करते मेरे अघोष पुत्र नरेन्द्र ने पास आकर टोका था ‘क्या बाबूजी हिरना बना रहे हैं न?’ मेरी कलम रक गइ थी और मैं उमकी और अजीब ढंग से ताकता रह गया था। बडा रीज जमान हूँ मैंने घरवाना को समझाया था कि आज मैं कुछ काफी महत्वपूर्ण काम करके व लिए एकांत में बठा हूँ ‘गौर वनी हाना चाहिए—और अब यह छाकरा मेरी नारी कारगुजारी पर हेडिंग मार रहा है कि मैं हिरना बना रहा हूँ। हाँ हाँ,

हिरना बना रहा हूँ भाग यही से । मैंने ढोंग धीरे वह बना गया । वह बना गया तो मैंने अपनी निभावनी पर पुनः नजर डाली । भाग सा बहता हूँ, बहुत गौर करने पर भी मुझे अपनी हिरना नजर नहीं आया । दा रेगाएँ समा नातर उचककर ऊपर उठर गई थी पर वह हिरना की भाँव से घायल हा समता रगती हा । दा रेगाएँ थोड़ा बच लेती तीव्र बाढ़ धीरे धीरे दो दाद धीरे पिती था य पर जगा सग गवती थी । पर वह आहूति हिरना की बनई नहीं लगती थी । पर ज्या-या मैं उम दागन को दगता रहा, मुझे जाने क्या लगन लगा कि इसपर उपर कुछ पिस घास करने से यह हिरना नहा, तो हिरना जमा तो खर हो जाएगा । धीरे मैंने कुछ पिस घास की भी । धीरे यह सग कुछ मिस मिलाकर एन भाड़े किस्म के हिरना जैसा हो भी गया । मैंने नरद को बुलाकर पिलाया तो उता दाद दो धीरे कहा कि उगने अपनी झाड़ग बापी म जो हिरना बनाया है, उनना अच्छा नहीं है । वह विरक्त होकर चला गया धीरे मैं काफी उता हो गया । इसलिए नहीं कि उसे मेरा बनाया हिरना पसंद नहीं आया बल्कि इसलिए कि हिरना बनाने के पहले जो मैंने कुछ नहीं सा कुछ बनाया था, वह बिल्कुल मल्ट हो गया था । सो भाई, रचना प्रक्रिया के बारे में सचेत होने का अर्थ मैं यह पिस घास ही मानता हूँ जिसके चलते लोगो को अपने मन माफिक आहूति भैसे ही दिख जाए धीरे के दाद भी दे दें । मृजक को तो यह पीड़ा भेजनी ही पड़ती है कि उसके कुछ न होने का कुछ इस सचेतना की मुठठी से पिसल ही गया, जिसे वह खूब चाहकर भी पुन कभी पा नहीं सकता ।

यह कुछ न होने का कुछ भारी दृष्टि से लेखक के मन से सम्बन्धित है । धीरे मन कोई प्याज की प्रिय तो नहीं कि उसने छिलके पर छिलके उतार दिए जाएँ धीरे इस खूबी के साथ कि सारा खेल-तमाशा दिखाकर उन्हें एन म एक समोकर साबुत भी रख दिया जाए । मन प्रायः सबका एक ही जाति का है कि तु कलाकार का मन सृजन की शक्ति और प्रक्रिया के बारे में सचेत होने के कारण कुछ भिन्न हो जाता है । क्रिया की समस्याएँ वस्तुओं के स्वभाव और समय का छंद मन की जागरूकता के अलग अलग पहलू हैं । वह कभी इस पहलू में पहलू बदलता है कभी दूसरे में । कहानी का स्वरूप यद्यपि सभी पहलुओं के समवाय से उत्पन्न होता है किन्तु यह आवश्यक नहीं कि मन में यह समवाय सृजा के पहले से ही निश्चित हो चुका हो । कभी क्रिया खींचती है कभी वस्तु और कभी समय । इसे और ज्यादा स्पष्ट करके कहूँ तो यह कि खुद अपनी क्रिया या कम या समानांतर जीवन जीने वाले किसी व्यक्ति के कम हम आकृष्ट करते हैं । किन्तु कम या घटनाएँ वस्तुओं की तरह हमारे सामने अपना सही अर्थ नहीं खोलती । इन कर्मों पर मन में बार बार मयन चलता

है। यह लेखकीय मन की विशेषता है कि वह अपने और दूसरों के कर्मों को वस्तुग्राही की तरह ऊपर पर अर्थों का 'लेवुस' सपाकर माना म नहीं रख लेता, बल्कि उनसे बार बार टकराकर उनके भीतर के छिपे धर्म को खोजने या उन तक पहुँचने की कोशिश करता है। कर्मों को भी समाज अपनी भावना व मुनासिब विभिन्न खानों में बाँटकर पहचानने की कोशिश करता है। उदाहरण के लिए समाज में नैकी बड़ी कायरता, शरता, दुष्टता, अत्याचार, बेईमानी पाप-पुण्य आदि के मोटे मोटे रूप तगुदा हैं। क्या लेखक के मन की गठन और भावना धीरे धीरे कुछ इस तरह की बन जाती है कि वह इन तगुदा खानों में बैठे कर्मों को तगुदा धर्म नहीं देता। वह उनके चमकीले और स्पष्टाभास में प्रतीत होते आवरण को खीरकर भीतरी धर्म तक पहुँचना चाहता है। य कर्म कितने परिचित पर कितने गूढ़ होते हैं नन्हो कहानी की चडिया की तरह। नहो जब इन्हें पहचानना नहीं चाहती थी तो ये जबदस्ती उसके हाथ में पिहायी गई और जब, उन्हें उतारना नहीं चाहती, तो लोगों ने जबदस्ती हाथों से उतरवा दिया। कर्मों के सही धर्म के बारे में इकाई और समाज के बीच एक तरह की कणामकश हमसा चलती रहती है। इसका मतसब यह नहीं कि कथा-कार, व्यक्ति और समाज के बीच व्याप्त सधप को तोड़ करना चाहना है। सच तो यह है कि इकाई और समाज की कर्मों के बारे में सोचने की प्रक्रिया जुदा जुग होती है। समाज, आवरणमूलक सत्यो या भूल्या का हिमामती होता है जबकि इकाई अपने भोगे हुए अनुभव और कमाय हुए सत्य को चाहकर भी भुला नहीं सकती। यह सधप एक प्रकार से दोनों के एक दूसरे के प्रति किन् चठने के प्रयत्न का ही रूप होता है।

मैंने पहली कहानी जिस मूड या प्रेरणा या मन स्थिति में लिखी यह तो आज स्पष्ट नहीं है पर मैं इतना अवश्य जानता हू कि इसमें इकाई के निजी अनुभव की प्रमुखता थी। 'दादी मा कहानी का अब धीरे धीरे उसका ऐतिहासिक प्राप्य भिन्न रहा है। यानी अब मेरे नातिप्रोति आलोचक भी यह कहने लगे हैं कि नई हिन्दी कहानी की शुरूआत टानी मा से हुई। (देखिए माया, जनवरी १९६५ नामवरसिंह का निबंध) किंतु अब भी दादी माँ की विशेषताएँ स्पष्ट करने का प्रयत्न ऊपरी आवरण तक ही सीमित है। प्रेमचन्द की गाम क्याए वगैरह चरित्रों के सामाजिक खानों में बैठे कर्मों के तगुदा अर्थों की प्रधानता देती थी। इसी कारण प्रेमचन्द सामाजिक यथाथ के बाहरी रूप के सफल कथाकार हो सके। दादी माँ ग्राम जीवन की पहली कहानी थी जिसमें निजी अनुभव और भोगे हुए सत्य की व्याख्या को व्यक्त किया गया था। कुछ लोग इसका सम्मरणात्मक होना कहानी का दोष मानते हैं किन्तु निजी अनुभूति की प्रखरता और उसकी सही अभिव्यक्ति की माग के कारण, इस

कहानी का सम्मरणात्मक हो जाना स्वाभाविक है।

चरित्र और उनके नाम इसी कारण मुझे बहुत बहुत आकृष्ट करत रहे हैं। अधर विद्वानी समीक्षाओं और उनकी प्रवृत्तियाँ व 'नवलेखी' लोग 'चरित्र' नाम ही पुरानेपन की मध्य लोजकर चरित्रों के खिलाफ झटका देते रहते हैं। चरित्र प्रायः भी आधुनिकतम तत्त्वों के लिए भी प्रबल चुनौती है। मानव पदार्थ, बाह्य और आन्तरिक, दोनों ही पहलुओं से हमारी सचेतनता और गृह्य प्रक्रिया के लिए चुनौती है। मानव पदार्थ सामान्य पदार्थ या वस्तुओं से बिल्कुल भिन्न ढंग से हमारी बुद्धि के आग्रह बनते हैं। हम किसी भी मनुष्य को उस रूप में नहीं समझ सकते जिस रूप में हम मेज-कुरसियाँ किताबों को समझते हैं। मनुष्य को सिर्फ एक ही प्रकार से अवगत किया जा सकता है वह है उसकी सम्पूर्ण परिस्थितियों के बीच स्थिति का अवबोध। जड़ पदार्थ अन्तर्गत रूपों में विभाज्य हैं। किसी बड़े पत्थर को देखकर निश्चित किताब का जहाँ से वह पत्थर लिया गया है अवबोध सम्भव नहीं है किन्तु मात्र सिर हाथ उगली दाढ़ी या आँखें देखकर एक मानव सत्य का बोध होता है कि य मनुष्य गरीब व अवयव है। फिर व्यक्ति उस प्रकार से हमारे अध्ययन का विषय बनने को तैयार भी नहीं होता जैसे जड़ पदार्थ हो जाते हैं। मानव पदार्थ अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के अधिकारों से सम्बन्धित है। चूँकि मानव सत्य हमेशा ही परिस्थितियों से आवेष्टित है, इसलिए चरित्र का तात्पर्य इन परिस्थितियों के सही रूपों का विश्लेषण है। और ये परिस्थितियाँ दूसरी ओर आवृद्ध समय के छंद से जुड़ी होने व कारण परम्परा आधुनिकता समसामयिकता और दूसरे कालयुक्त आग्रहों से आवृद्ध भी होती हैं। इसलिए चरित्र का नाम सुनकर चौंक जाना या इनकी केन्द्र भरकर कहानी व गठन की बात करने की प्रक्रिया को पुराणापन मानना बौद्धिक निबलता का सूचक है। मेरी अनकानक कहानियाँ चरित्र प्रधान हैं। अगर मैं ईमानदारी से कहूँ तो यह कि मेरी पचास प्रतिशत से अधिक कहानियाँ ही प्रेरणा से चरित्रों का योग है यानी गृह्य प्रक्रिया की दृष्टि से मुझे परिस्थितियों से सम्बन्धित आश्रयित चरित्र पहले आकृष्ट करत हैं बाकी चीजें बाद में। जगत व चरित्र ज्यों व त्यों कहानी के अंग प्रायः नहीं बनते। रचना प्रक्रिया के बीच कहानी के ध्वनि की सचेतना इन चरित्रों का सङ्गठन अनेक टुकड़ों में बाँटकर पुनः नये ढंग से उनके संयोजन का प्रयत्न करती है। इस पुनसंयोजन में लेखक की निजी अनुभूतियों की लगाव भी अन्तर्गत काम करता है। भिन्न भिन्न परिस्थितियाँ व नम्र अनुभवा व सांसारिक द्रव्य चरित्र सङ्गठन का एक निश्चित अंग को दृष्टि में रखकर जाहल रहते हैं। समय की सफाई इस बात में होती है कि वह अपने भीतर चरित्रिक स्थितियों और संघर्षों का तथा जीवन की वास्तविकता का ऐसा सूत्र, सही

और प्रामाणिक अनुभव रखे कि भिन्न भिन्न समया में उपलब्ध चरित्र-खण्डों को सही ढंग से जोड़ सके।

यह जोड़ाई एक जीवित चरित्र तो दे देगी, कि तु यह चरित्र एक 'आइडिया' बन जाए एक सूक्ष्म कथ्य का रूप ले ले इसके लिए कुछ और उच्च-स्तरीय चेतना की आवश्यकता होनी है। जिस दार्शनिक लहजे में 'प्रो रेफ्लेक्सिव फागिटो' कहा जाता है। चरित्रों के बहुविध तमों के भीतर, समय के छत्र की सही प्रश्रिया का अभाव एक कम परिपाटी से अलग करके इस तरह से अपनी चेतना प्रवाही धारा (स्टीम ब्राव नाशमनस) में घटाना कि चरित्र की घमि व्यक्ति एक निश्चित आइडिया का रूप ले ले यह बहुत कठिन और सूक्ष्म कथा कम है। यह कथाकार के लिए तो चुनौती होती ही है प्रबुद्ध पाठक के लिए भी। मेरी हिंदी पाठको से यह निष्कायत रही है या यों कहिए कि प्रकारांतर से अपने प्रति निष्कायत रही है कि लोग चरित्रों को तो पकड़ और समझ लेते हैं किन्तु उनके जीवन के सम्बद्ध असम्बद्ध कर्मों का क्या इस ढंग से नियोजित किया गया है अथवा इस नियोजन के भीतर से कोई ध्वन्यायक कथ्य उभरता है या नहीं इस समझन की बहुत कम कोशिश करते हैं।

इन सभी धारणाओं को अपनी शक्ति भर रूप बन के लिए मैं ग्राम-जीवन से ही अधिकांश चरित्र चुने। यह मेरी विचारात्मा इसलिए है क्योंकि मैं इन चरित्रों के बाह्य और आन्तरिक रूपों को ज्यादा आसानी से समझता हूँ। किन्तु एक कारण और भी रहा है इकाई की प्रधानता वाल चरित्र जन धारा में नहीं किनारा पर छाड़े हुए ही ज्यादा मिलते हैं। मैं अपनी एक कहानी का यहाँ धारणा करने चला हूँ, यद्यपि यह मुझे पसंद नहीं पर रचना प्रक्रिया पर ध्यान करने पर भी सब-कुछ ढँपा-तोपा रह जाए, यह सब सम्भव है। कहानी है 'धारा जो नई कहानियाँ में छपी थी। इसमें एक प्रमुख चरित्र है तिवरा। गाँव से दूर एक जंगली परती के छोर पर भोंपड़िया में रहने वाले एक आदिम सत्कृति के भगवानेय परिवार की लड़की। मुसहर कजड़ा या एसी ही कुछ।

इस कहानी को मैं कहता हूँ जो लेखकीय इकाई है याड़ी छप याड़ी खुली। पहली बार इस लड़की को पढ़ते समय मैं एक पक्ष के नीचे बैठता हूँ जिसकी बारिश घुली जड़ा का स्तूप उघड़ा हुआ दीव्य रहा है जमीन भी जान कस-कस में छिपाए रहती है। इस देवदर पत्ती बार यह बात मुझा कि पड़ा की गाँवें जिनकी लम्बी, चौड़ी छिनकार छपर होती हैं उतनी के भी उतनी लम्बी चौड़ी पत्ती नीचे होती हैं।' यह पवित्र उमर पक्ष के बार में जिनकी मौजू है उसमें कौन अधिक ध्यान में जावेन के बार में जिसकी परम्परा और धातु निरता की जड़ें और गाँवें प्रतिकूल निगाहा में छाई हैं फिर भी दाना ही

एक ही पेड़ का हिस्सा हैं। सभी में उस परती को लगा है उसने छोर पर स्थित भापनी का, और लगता है 'भापनी जैत लज-गान का साथ लगा हम परती को तोड़ने की कोशिश कर रही है, फिर भी पूरी तरह इसे ध्यान जोन में मिला न गयी। भापनी और जोन वाली धाधुनि गन्धुनि की धारा के बीच कुछ ऐसा द्वेष है जो उसमें पूरी तरह धुन मिला नहीं सर। यह सपप जारी है। धाधुनि जीवन का सफ़ारा को हमारी धाधुनि सम्पत्ता तो रही है पर ऐसे परित्र हैं जो पूरी तरह उस धारा में नहीं आते। य धारा में आए मैं इसका पूरा समर्थक हूँ। मैं धाधुनि जीवन की प्रगति और भविष्यो-मुसी महापाप में आस्था रखता हूँ। धारा में आस्था रखता हूँ। पर धारा में कूँ या बहा बिना जाने का दर् भी समझना चाहता हूँ। 'तिउरा पास के बरब की एक आदत में काम करती है। साहियाँ ब्याउजें, धाधुनि जीवन के धाधुनि गिगार मुनीम उस एक दूसरी गिगार में मोड़ता है। तिउरा न ईमानदारी के साथ धाधुनि सम्पत्ता की गिगार में मुड़ने की कोशिश की। उस गम्बती होने पर मुनीम छोड़ देता है और उसने माँ बाप उस घर से नहीं निकालते बरि परती की उस झोड़ी को छोड़कर और तिउरा को भी वे चने जाते हैं। इसी बीच मैं जो एक पड़ा सित्ता बेकार और उपेक्षित प्राणी या नौकरी पा जाता है। माँ-बाप खुश हैं। धाधुनि सम्पत्ता की इस नई उपलब्धि धानी गहर में नौकरी पाने की खबर पर। पर मैं सोचता हूँ नई जिन्गी कौन सी है वह जो मैं अभी अभी गलम कर चुका हूँ जहाँ मेरे लिए कोई सहारा न था। स्पष्ट ही यह पशन उन सबके लिए है जो धारा में उस्ताह स कूँ पर न तो उस किनारे पहुँच जहाँ कोई सहारा मिले न इस किनारे जहाँ उनको पुरान का ठिकाना था। धारा में कूँने वाला हर कोई पार ही तो नहीं लगता और जो नहीं लगे क्या उनकी जिंदगी कम धाधुनि है? कहानी चरित्र प्रधान है। तिउरा का चरित्र ही मुख्य है मगर यह चरित्र एक आइडिया में बदल जाता है जिस धाज का आलोचक या तो समझ नहीं पाता, या फिर कोशिश नहीं करता क्योंकि वह जानता है कि इन धामीण चरित्रों में भला ऐसी क्या बात हो सकती है जिस पर सोचा जाए। हिंदी में कठमुल्लापन बेइतहा है। कामू के चरित्रों के बारे में जो अकसर धामीण चरवाहे गबई स्कूल के मास्टर आदि होते थे, क्योंकि उसने अल्जीरिया के अरब कबीलो को बहुत निकट ॥ देखा था, यही आरोप लगाया गया था, और लगाया था साथ में। किंतु कामू के साथ आत्मघाती पीडा नहीं थी कि उसकी रचनाएँ आचलिक खाने में डालकर रख दी गई और उन्हें गम्भीरता से पढ़ने की कोशिश नहीं की गई। बहरहाल।

मेरी रचना प्रक्रिया का दूसरा महत्वपूर्ण बिंदु वस्तुओं के स्वभाव से सम्बद्ध है। अपने बाहर और मानवीय अस्तित्व को छोड़कर, दूसरा जो कुछ

भी है सभी पन्थ हैं, वस्तुएँ हैं। पदार्थ किसी वस्तु के लिए निश्चित पद का अर्थ ही तो है। इस कारण वस्तुओं के रूप में हमें जो कुछ प्राप्त है वह नाम-रूप का क्रीडाक्षेत्र है। वस्तुएँ इस निश्चित नाम और रूप से कुछ भिन्न हैं ? इस प्रश्न के विषय में क्यावार की जागरूकता परिस्थितियाँ और मनुष्य के कर्मों को समझने की यही दृष्टि देती है। जब और चेतन जगत का यह विभाजन, दैनंदिन जीवन में कभी समस्या नहीं बनता किन्तु मानव मन की प्रक्रिया इनसे प्रभावित जरूर होती है। इसी कारण ऐसी स्थिति में जब मन की दैनंदिन गति बाधित होती है अथवा कोई मकट या उद्वेग का क्षण आता है वस्तुओं और मनुष्य के बीच कृत्रिम रूप में अज्ञान स्थापित सम्बन्ध टूट जाते हैं अथवा बदल जाते हैं। यह स्थिति केवल दो प्रकार से आती है। एक तो अज्ञानमय मन स्थिति में दूसरे अज्ञान अचेतनता में। इसे मैं उदाहरण देकर स्पष्ट करूँ

‘अधेरी चादर से ज्यो ज्यो उजास फूटने लगा, मुझे मरा ही घर आगन बुहारी, गिलास लोट, बाल्टी, धर उधर गिरा हुआ पानी सभी सब कुछ जैसे अपरिचित, मायूस, डरे डरे से प्रतीत होने लगे।’ (मुर्दा सराय) अपनी पत्नी की मृत्यु से आघातित परिस्थिति में मानव और जब पदार्थों के बीच का परिचय सूत्र कटा-सा प्रतीत होने लगा।

दूसरी ओर ‘खरा पीपल कभी न होने कहानी के अज्ञान बच्चे, उस पीपल को, जिसकी छाया में वह अनेक खेल रचात थे, अचानक भूल गए

मैं तो इन छोकरो पर हैरान हूँ कि जो सुबह ११ शाम तक इन मले मानसा के चारों ओर हाथ में हाथ फँसाये चक्कर लगाया करते थे और जिनके दिला की गुनिया, कबूतरों की तरह फड़फड़ाती हुई, पुरुषोत्तम काका या तुनसी बुढ़िया के कहकहों के अड्डों पर हमें गाँ मँडराया करती थी वे ही इन्हें इस तरह बिल्कुल बस भूल गए। वहीं ये इसी तरह खरा पीपल को भी तो नहीं भूल जायेंगे ? सच ही छाकरे एक दिन खरा पीपल को बिल्कुल भूल गए।

यह भूलना एक तरह से मानव का वस्तुओं पर अधिष्ठान है। मानव की प्रवृत्ति है कि वह वस्तुओं को हमेशा अधिष्ठित करना चाहता है। क्याकार की जागरूकता इस बात में नहीं है कि वह मानव और पदार्थों के सम्बन्धों को स्वयंसेवक मानकर चल, बल्कि व्यक्तियों और पदार्थों के बीच आन्तरिक स्तर पर बनते विगड़ते सम्बन्धों के प्रति सतत जागरूक रहे।

वस्तुएँ भूल में नामरूप की मानवरोपित धारणाओं से रहित होकर जिस स्थिति में रहती हैं उसके प्रति सचेतनता हमारे कार्य को आसान बनाती है। कलाकार के साथ कठिनाई यह है कि वह जिस भाषा का प्रयोग करता है वह भी व्यक्त होकर एक वस्तु बन जाती है। यानी जो जीवित ब्रह्ममय शक्ति हमारे भीतर है, जिसमें किसी भी धारणा को हम व्यक्त करना चाहते हैं जब

गमन्यायमात्र कायर सत्ता है, तां घपन घाप निमित्तय वस्तु का रंग रक्षण कर सत्ता है। हमारी कठिनाई मुबद्द क बास्म कहानी क पुत्रनाम तो मा है

ऐत मोक्ष पर पणित पूरमान का मुख प्राप्त हो जाता । व नाम चाहकर भी गुप्त स भरा वायव भी रहा वायव मय । विजयी ही बार गुप्ता प्राता । टाय ग कुछ बट जात का वह बारहा वाणिज्य मय । पर हर बार अगार की तरह दत्त वत्त हृण सयज जार मूह व बाहर विजयत ही विजय हृण साव की मान म कुछमुनाकर रह जात । अतनी दग अतयन वाणिज्य व वायव व हमारा ही यह नामोना हो जात ।

अंगार की तरह जलती तत्त्वोपपत्ति परायाव मुक्त ॥ बाहर भाग्य राग म धन
जाती है । तब या उपाति या पाठ गति है जो जड़-वस्तु म प्रसंग है । पर राग
तो जड़ पदार्थ से भिन्न नहीं है । दाह को राग म वस्तु जानने से रागन के लिए
व्यापार हुआ। विधिया का उपयोग करता है । विष्णु मन्त्र प्रतीक मिथक
उपमान भाग्य तरीक इगो प्रकार की विधिया है । किन्तु इन विधिया का घेरा
भी वस्तुभा के स्वभाव को ठीक से समझकर ही पार किया जा सकता है ।
पदावि विष्णु या प्रतीक या भाग्य काई प्रयोग मूल्य या स्थूल पदार्थ प्रयत्न
वस्तुभा से ही निमित्त होता है । यह सहा है कि इनके निर्माण म सृजक की
उपातिवाही चेतना का भी संयोग जाना है । इसी कारण इनकी भाभा और रंग
जागतिक पदार्थों से विभक्त भिन्न होते हैं । धर्म का संयोजन भी भावरणमूलक
तनुदा लाना से भिन्न ढंग से किया जाता है । परन्तु कुल मिलाकर क्या की
गठन विधियाँ (डिवाइसज) वस्तु के अन्तर्गत ही परिणहीन की जाएगी । मरी
आरम्भिक कहानी के विषय म लोग का आरोप था कि इनम प्रकृति का चित्रण
बहुत ज्यादा होता है । किन्तु वे चित्रण कभी भी स्टिल को प्रेक्षी नहीं थे,
उनम वस्तुभा के स्वभाव और मानव सम्बन्धों की स्थितियाँ स्पष्ट थी । मैं
प्रमुख और पदार्थ के बीच की हारमनी का नायक रहा हूँ और प्रकृति के
विषय म उसकी भयानकता और निममता के दार्शनिक दृष्टिकोणों को
समझने प्रभु के बाद भी मेरी इस धारणा म परिवर्तन नहीं आया है । यह सही
है कि कभी कभी इन सम्बन्धों का मरी व्याख्याना म रोमण्टिक भाव उभरा
है किन्तु जहाँ प्रकृति के प्रति चेतना का उद्गम सम्पूर्ण हाथा वहाँ एना जाना
अस्वाभाविक नहीं है । मेरे इमजज प्रतीक और मिथक अथवा लाकव्यात्मक
अभिप्रायों को समझने के लिए मेरी इन धारणाओं का जानना जरूरी हो जाता
है । मरी रचना प्रक्रिया म ऐसे तत्त्वों की इतनी याप्ति और विविधता है कि
मैं बहुत संक्षेप म इसकी पूरी चर्चा नहीं कर पाऊँगा ।

मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि लम्बे लम्बे वाक्यों में अपनी बात व्यक्त करने वाले लेखक ब होते हैं जो समय के धार में बहुत स्पष्ट और प्रवर्गमय

धारणा रखते हैं। किंतु लम्बी लम्बी सास लेने की प्रक्रिया को, समय के बारे में बहुत जागरूक होना मान लेना भी ठीक नहीं होगा। वाक्या के गठन और निमाण की मरी प्रक्रिया दाना व धींच पड़ती है। यह मुझे अक्सर दोषपूर्ण लगती रही है।

उत्तराहरण के लिए

'ऐ छोकरे, सुनता भी है जाने क्या से बुला रहा हूँ और तू है तानसून का दादा बना कि बस अनापचारी भरे जा रहा हूँ' मडकर देवता तक नहीं। दीनू न मुड़कर देखा, नक्रद दा अजन गालिया निवाल ली थी, हलक तक, तावडनोड दाग नेन के लिए पर मामने डाकिय को खडा देखकर महम गया।

यह पूरा का पूरा एक वाक्य होता है। यद्यपि इसमें अनेक वाक्य और पूर्ण वाक्य इस तरह संयुक्त हैं कि सबकी इकाई अलग अलग प्रतीत होती है। पक्बु एगन व बारे में मैं कभी भी जागरूक नहीं रहा, जो समय का ठीक से अनुमानित करने का बिन्दुल आधुनिक तरीका है। मेरी दृष्टि हमेशा उम वक्तव्य के साथ एमी धिपकी रहती है, जो प्राय अपने सहो रूप में एकत्र होने से बतराता है कि अग्नि यक्ति के कृत अक्ष पर ध्यान नहीं जाता। मेरे मित्र श्री जगदीशजी भारतीय नानपीठ बाने अक्सर डाँटते हैं 'गिबजी, काश, तुम यदि एक बार अपने लखन को दुहरा लेते— तो सब वक्त हूँ यह और भी निखर जाता।' उनकी शिक्षाप्रद यह है कि मैं डाटम बहुत मारता हूँ। बसे मेरी यह आदत इधर कम हुई है। पर मैं साधार हूँ। मुझे हमेशा यह लगना है कि जिस ढंग और गति से मेरे दिमाग में भावा की भीड़ अटुला रही है 'वक्त होने के लिए उस ढंग और गति से मेरी लेखनी साथ नहीं दे पाती। इस खाखाभृगीय प्रक्रिया में बीच के एकाध वाक्य या शब्द जरूर गाल हो जाते हैं। और लेखनी अपनी मजबूरी के गिनाकूल के रूप में तुप्त वाक्य या शब्द के लिए टाटस छोड़ देती है। मेरी रचना प्रक्रिया की यह बहुत बड़ी त्रुटि है। लेखनी चुप हानी है तो इस पक्ति लिखकर घटी चुप रहती है कभी कभी हपता, और चलने लगी तो इस गति से कि पन के पन रगे जाते रहे और सॉम लेन रके तो पाए कि तजनी उगली बुरी तरह दुख रही है। 'गाथ निम्बेलित जिसे कान्ड माइड कहत हैं, उस अवस्था में मोच सावकर लिखने की प्रक्रिया प्राय मरी नहीं रहती। बच पन में यही हाल दूसरे कामों के साथ भी था और कभी हडबडी में कुछ टूट फूट जाता तो पिताजी बिगडते 'कक लगन में जम है न ? मैं कभी सोच नहीं पाया कि कक और जल के बारे में उनके मन में आरोपजनक विचार क्या थे ? पर उनके बार-बार टोकन का कुछ खास असर हुआ नहीं लगता।

एक बार यही चीज कुछ इसने ज्यादा ईमानदारी के साथ अपने एक मनो विज्ञान के प्राध्यापक मित्र से कही थी, तो वे बोले 'जानत नहीं मनोवैज्ञानिक

विश्लेषण में इस क्या कहते हैं इस एन एटेम्पट का वह विवरण भाव टाइम। यह समय सीमा के प्रतिनिधित्व का प्रयत्न है और यह प्रतिनिधि जिजीविषा का सूचक है। उन्ही के बगल में बैठे एक दूसरे मित्र न इस मनोरोग कहा 'मनिरिद्विप्रेतिय साइकोसिस' यानी उत्साह विषाद मनोचक्र प्रतिधमिष्यति बहिर्मुपनायानी प्रकारांतर से वही सब सम।

किन्तु एक बात में मानता हूँ कि समय को जिना अधिष्ठान किण्वीत जाने की विवशता मुझमें सही नहीं जाती है। मैं इसको ग्राह्य करता हूँ। घड़ी नहीं मानता और इसीलिए कुछ घड़ी और कुछ घड़ी के घण्टे भी बरी रहता हूँ। टाइम और 'यूज' समयानिर्णयन नहीं तो समयानुक्रमण में ज़रूर करता हूँ। यह समय का अभिज्ञान मेरी रचना प्रक्रिया को अनेकानेक रूपों में प्रभावित करता रहा है।

समय के प्रति लेखक की प्रतिबद्धता, युग बोध के प्रति सचेत अभिज्ञान में निहित है। समय का वह सचेत द्रष्टा लेखक की रचनाओं में अपने आप झूठ होता है। हमारे जीवन का कोई भी ऐसा अंग नहीं है, जो समय से भावहीन हो। जीवन के प्रति साक्षी होने का भाव समय के प्रति साक्षी होना ही है। आज भी क्या साहित्य में समय-सत्त्व की अभिव्यक्ति का सर्वसाधारण तरीका चेतना प्रवाह पद्धति (स्ट्रीम क्राइव वागमनेस) ही है। मैं वस्तुतः प्राप्त सत्य का उत्तम पुरुष (फेस्ट पर्सन) ही नहीं समय सत्य का साक्षी और भोक्ता पुरुष भी है। एक आलोचक को भुझते यह निश्चित रही है कि मेरी कहानियों में प्रायः एक में ज़रूर होता है। यह मैं समय के प्रति मेरी निजी प्रतिबद्धता का साक्षी है जिसके माध्यम से जीवन के प्रत्येक क्षण को मैं सही ढंग से देखना चाहता हूँ। दूसरी ओर यह मैं इस बात का भी सबूत है कि मैं वर्तमान युग में जो सामूहिक और यात्रिक सत्याभासा से परिचालित होने के लिए विवश है अपने निजी खून मांस से उपलब्ध सत्य को कहने का प्रयत्न करता हूँ। यह मैं एक प्रकार से सभी प्रकार के अनुभवलब्ध विम्बा प्रतीका, चरित्राक्षी तथा सन्देशों को सहज सरलीकृत करके एक स्वाभाविक अतर्निहित एकता के छंद में डालने का माध्यम बन जाता है। स्मृति पुरावत्तन (मेमोरी फ्लोइड) की पद्धति में भी समय चक्र का सही नियोजन कथाकार की समय प्रतिबद्धता या सचेतना का प्रमाण होता है। प्रायः भूत से वर्तमान में अथवा वर्तमान से भूत में सफ़र कहानियों में एक मामूली घटना लगती है, परन्तु समय धारा का उद्वेग या परावत्तन इतनी सहज चीज नहीं। यह एक अणु विस्फोट की स्थिति है। इसे ठीक से न संभालने के कारण कहानी का कलेवर ज़रूर अथवा क्षतिग्रस्त हो सकता है। इसके प्रति चेतना इसीलिए बहुत ज़रूरी है। एक छोटा-सा उदाहरण मैं नहीं अपने अग्रपति की मृत्यु के बाद रामसुभग की ओर प्राकट्य

होती है। यह एक अभिधायक वाक्य है। कहानी में मृत्यु का रूप दिखाकर, ठीक उसके बाद प्यार प्रणसा का चित्रण एक 'गार्किंग' चीज है इसे कहने के कई तरीके हो सकते हैं—एक तरीका यह भी है 'कई महीने बीत गए। बरसातें आई और गई। पानी सूख गया, बादल का घिरना बन्द हो गया। बीछारों से टूटी जजर दीवारों के धाव भर गए। नई मिट्टी से सज सँवरकर वे पहने जैसी ही लगने लगी।' इस प्रसंग में कहीं न'हा का जिक्र नहीं है, पर सचेत पाठक जान जाएगा कि बरसात का और बादल घिरने का और बीछारों का और नई मिट्टी का अर्थ क्या है? वही रामसुभग, नन्हों से तिरस्कृत होकर चला जाता है। न'हा उसे प्रेम नहीं करती ऐसी बात नहीं। पर रामसुभग के प्रति उसके हृदय में अनेक प्रकार के दुःस्वप्न भी हैं इसलिये वह उसे सहज स्वीकार नहीं करती। मुद्दत के बाद एक बार क्लकत्ते से रामसुभग की चिट्ठी आई। नन्हों उस बाचती रही। एक-एक अक्षर को उच्चारण में पहाड़ सा समय लग गया, जैसे चबूतरे के पास कलसी के नीचे पानी गिरने से ज़मीन नम हो गई थी। जौ के बीज गिर थे। जाने कब के। इकट्ठे एक में सटे हुए उजले हरे अँखुवे फूटे थे। नन्हों सहृमान्ना एकटक उन्हें देखती रही बड़ी देर तक।' ये अँखुवे सिर्फ कलसी के पास ही नहीं हैं। न'हा के भीतर भी वही हैं। और इनके ऐसा हाने में कितना और कसा समय लगाया होगा न'हा ने?

भाई बात बढ़ती जा रही है और गप्प तो गप्प ही है। शायद ही कभी खत्म होने को आए। यह तो रचना प्रक्रिया का विश्लेषण हुआ नहीं। आप भी जाने क्या सोचत होंगे। अच्छा बाकी कभी फिर

मेरी कहानी-रचना की नेपथ्य-भूमि

काशी

३१ मार्च '६३

प्रिय सम्पादकजी

आपका आग्रह कि मैं अपनी कहानी रचना की नेपथ्य भूमि का संक्षिप्त विवरण लिख भेजू मेरे लिए गलब्रह हो गया है कि क्या सचमुच मुझे अपनी कहानियों की रंगाला का सारा कूड़ा करकट बचे लुबे टुकड़े प्रघनिमित्त और उपेक्षित मूर्तियाँ तूलिका साफ करते अनेक रंगों में बदरंग बने चिपड़े, कटे फटे कैनवास अनफिट होत चेहरे मोहरे पफ पाउडर व डब्बे आदि यानी वह सब कुछ जो एक नेपथ्य भूमि में नाटक समाप्त हो जाने के बाद तिरस्कृत सा फेंका रहता है दिखाना ही पड़ेगा ? उत्सव धीत जाने पर अवशिष्ट उपाना के देखने से जो टीस हाती है उस कादम्बरीकार में विगतोत्सवा का मगरी बहकर उच्छवास में व्यक्त किया है । भाई ! मेरी कहानियों का उत्सव क्या समाप्त हो गया कि मैं उनके निर्माण से बचे लुबे टुकड़ा का लेला-आला जुटाऊँ ? अपने पाठकों की सट्टा का ऐसा भी बहुत कम है जो इने गिने हैं भी क्या वे अपने मानस मक्ख पर बन-ठनकर उतरी कहानियाँ की यह नेपथ्य भूमि दगदग बिन्क नहा जाएँगे ! अभी कुछ दिन पहले एक पत्र मिला अन्तर्नीय । मित्रा था कि मैं आपकी कहानियाँ पढ़कर बहुत उत्साहित हूँ । मैं भी कहानी रचना करने का आकाँक्षी हूँ । पर मेरी कहानियाँ में तो कल्पना की उड़ान है न तो प्रतीमा । नीचे हस्ताक्षर देखा तो थोड़ी राहत मिली क्योंकि वह पाठक नहीं पाठिका थीं । मुझे लगा कि यह पत्र मननी ॥ मर पाम आ गया है क्योंकि पाणिनाया के पत्र अक्षर मेरे एक ब्याकार मित्र व पाम जान प्राप्त हैं जिन्हें धार मनाटे में पुम्बन छाने व पत्र यानी भूमि का ही कल्पना की पाठिकाण टेलीफोन पर हलो हलो करत परगान कर दनी हैं और उनकी बातचीत में ही कहानी

का सारा फलमफा बंधार जाती है। एक पवित्र में व्याकरण की चार अनुष्ठियाँ। और तुरा यह कि कल्पना की उठान नहीं है। हूठ भला ऐसी पाठिकाओ से मेरा क्या वास्ता। सो भाई साहब, आप क्यों अलानाहक मेर पाठको का भडकाने का जाल फना रहे है। अपने राम ने कहानी को न तो बभी टेड' माना और न तो उसके कोई 'ट्रेड सीक्रेटस' ही हैं।

अब देखिए न क्या साहित्य के एक स्वयंभू समीक्षक ने पूछा है कि मेरी अधिवादा कहानिया में एक मैं क्या रहता है? वे खुद आगे उम में मैं का प्रयोजन बताते हैं कि यह शायद सेतु है जिसके न होने पर ये कहानिया बगती ही नहीं। लीजिए प्रश्न भी पूछा और जवाब भी दे दिया। मैंने मैं खली अपनाई, क्या? जाहिर है कि हर लेखक का एक अपना मैं है अतःभुवन गवाक्ष जिसके भीतर से ही वह सब कुछ देखन का प्रयत्न करता है जो देखा जा सकता है। यह मैं केवल वही नहीं होता जना सचमुच मैं का कोई विशिष्ट रूप नहीं होता। मगर एक मैं है और मैं उसे अपनी शारीरिक और मानसिक सभी शक्तियों के सहारे एक विशिष्ट रूप देने के लिए प्रयत्नशील रहा हूँ। एक मित्र ने एक बार हँसते हुए कहा आपकी कहानिया अब थोड़ी टसपरेष्ट हान लगी है पहन तो ऐसा लगता था कि जमे माटे मूत की फिफरी के अंदर से देगना पड रहा हो।" उनके कथन को सुनकर मैं मुसकराकर रह गया क्योंकि मैं उस समय बीजता तो उनका प्रतिवाद ही करता। गो कि उन्होंने बात सही कही थी। मेरा मैं पहले से अधिक साफ हो रहा है यह मेरे लिए दुहरे सतोप की बात थी। फिफरी थी तो थी उमस इतना तो लगना ही चाहिए कि मैंने वष्य वस्तुओं में चमक ल आने के लिए कभी भी दूसरे के चमकील स चमकील गवाक्ष में भौंकने का प्रयत्न नहीं किया। यह दपण मेरा स्वयं का था, मेरी सारी खूबिया और नुटिया से निर्मित। इसके पहल भी मेरे हासे हुए थे इसकी बीभण शक्ति भी मेरी ही अर्जित थी।

यह क्या कम आश्चर्य की बात नहीं है कि मैंने साहित्यिक जीवन का आरम्भ कविताभा से किया किंतु उम समय भी मेरे ऊपर लोक कथाभा की एक अजीब मोहिनी छाई हुई थी। मेरी माँ हर रात सोने के पहले कहानियाँ कहती अदभुत व्यथा और कपोल भरी कहानियाँ। आपिन राजकुमारों की नियति में दिवंग राजकुमारियाँ की, प्यास पखेह और कद गुक सारिकाभा की। उनकी कहानिया का आधा भाग लोकगीतों में निबद्ध होता। जिनकी धीमी धीमी गंध रातरानी की तरह वातावरण में छा जाती। मेरी दादी तज जीवित थी। माँ स कही अधिक प्यार दुनार मुझे उनसे मिला। वे कहानियाँ नहीं कती थी लोक गान नहा गानों थीं मिक मरे परा को धण्णे सहमाती थी कि मुझे नाद आ जाए। मैंने अपनी प्रायिक सामने अपने समुक्त परिवार को टूटते देना एक एक ठिन्ना

रेखे के कटने का दद भी भेला । और जाने कब, कसे मेरे मन मे कुछ ऐसे चरित्र घर कर गए जो इन जीवित सम्बन्धों के टूटने से व्यथित थे और इसलिए कभी कभी आंगन का विभाजित करनेवाली दीवारों पर चढ़कर निमग्न अट्टहास भी कर लेते थे । ये चरित्र खास दणों में स्वायत्त पर ठेस लगत बोलला भी जाते थे, लडते भिडते भी थे पर तुरंत यों बैठ-बोल लेते कि जस कुछ हुमा ही नहीं । इसी "यथा घुमडन के दिनो मैंने दादो माँ" लिखी और एक मित्र के आग्रह पर प्रतीक में भेज दी । अक्टूबर १९५१ के 'प्रतीक' में वह कहानी छपी । परिवार के विषय में मर मन में एक अजीब मोह है । उसकी बहुत सी चीजें आउट ऑफ डेट हो चुकी हैं उसमें अवांछित शासन की अधिकता और कभी-कभी वसमभक्त लोगों की असहनीयता के कारण बड़ी कटुता भी आ जाती है पर समग्रमनुष्य जीवन और अत्याधुनिक जीवन में ता विशेष रूप से पारिवारिकता और उसकी सहानुभूतिपूर्ण बहारदीवारी हम कितना कितना आश्वस्त करती और सहारा देती है । यही परिवार अपनी समूची रूप विरूप छटा और स्थिरता गतिशीलता के साथ मेरी अनेक कहानियों में छाया हुआ है ।

मुझे कहानी लिखने के लिए जो चीज सबसे अधिक विवश करती है वह है मनुष्य का चरित्र । चरित्र यानी करेक्टर असमर हाट करता है । वह अपने में गैटिङ्ग आकषण से जैसे मेरी मन बुद्धि को खींचता है । यह यकिन चरित्र स्पूल व्यक्तित्व का एक अंग होते हुए भी प्रायः अदृश्य रहता है कि तु जिस क्षण वह अपनी पूरी शक्ति से प्रकट होता है उस क्षण ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे उसने निरर्थक मांगी के लादे को एक रूप दे दिया । एक फूल को गंध दे गया एक नाम को अर्थ से जोड़ गया । ये पात्र क्या है ? मेरी कहानियों के अधिकतर पात्र अपेक्षित तिरस्कृत माटी के ढल ही तो हैं अथवा बबूल के सूखे पेड़ जो किसी राह चलते पथी को भी अपनी ओर खींच नहीं पाते । एक जंगल में मेरी छावनी थी चाचा वहाँ का काम-काज सभालते । आस पास मीलों तक ढाक का जंगली पेड़ कटीली झाड़ियाँ । अगहर का नाला बरसात में उत्तरी सीमान्त को नीची ऊँची पहाड़ियाँ की गल में ढाल देता । इस छावनी के इद गिद मुसहर कजड, नटो के खेमे पड़े रहते । घायाबरीय कबीले विचित्र तरह की पागाँवें विचित्र सहृद । इनके साथ पशु-पक्षियों की पूरी जमात होनी । खुद मेरे गाँव में भी अक्सर इनके दीरे होत रहत । दापहर को पीपल और बरगनो के नीचे बठकर मैं इनके परिचार को इनकी आगा आक्रान्ताओं प्रेम-कटुता को आचार-व्यवहार को धण्टो देखा करता । सुडौल गठील बदन के पटठे, साँप सीतर, नेवल कुत्ते । लट्ठ भस्ते । लडकियाँ की चुलबुली आँखें दोपहर को मुनसान दरवाजा पर खड होकर रोटी माँगनी हँसोड नट्टिनें गुन्ना गोन्ती मूंग गुरियाँ बचती इधर उधर घूमती । नाम को दरवाजा पर बठकर आँहा गात नट गाँजे की दम लगात हुए मुस्ताते ।

यह सब-कुछ इतना इतना देखा है कि चाहकर भी इसे 'आर पार की माला' 'पापजीवी' इन्हें भी इतजार है, संपरा आदि कहानियां म कहा बाध पाया । यह सारा तिरस्कर्त उपेक्षित जीवन मेरे लिए कमी रहस्य न रहा । मेरे सामने वह नट-या के घाँवल के दाग की तरह या चोली में छिपी अफ्रीम की पोटली की तरह स्पष्ट था । वात्स्यायन ने 'पापजीवी' को 'द त्रिमिनल' नाम से 'वाक' के प्रवेशक म छापा, तो लिखा कि 'दे आर मोर सिण्ड दन दि सिन इटसेल्फ' । मुझे लगा कि कहीं मैंने उनका सब देखा जाना दद अथवा उनका सब कुकर्म-कुक्ष्य सामने रख दिया होता तो पता नहीं बुद्धिजीवियों की य सहानुभूति के पात्र होने अथवा घणा के । ये जो भी होत, उत्तरदायी तो हमी हैं कि मनुष्य के एक बहुत बड़े अंग को पशु के घरातल पर जीवन व्यतीत करने के लिए विवश किए हुए हैं ।

इन कहानियों ने बेशक लोगों का ध्यान आकृष्ट किया । कुछ को आतर्कित भी किया । बहुतों ने इसे शोष कहा । अनक ने अद्भुत प्रियता । और कुछ बचकाने लोग इन्हें पुरानी थीम कहने से भी न शूके । 'वाक्जून' इन भंडासा के य कहा-नियां जिनके लिए लिखी गई थीं उनक द्वारा सवेनना के साथ स्वीकार की गई । निद्वन्द्व समीक्षकों ने इनकी अछूनी थीम को सराहा प्रशंसा दी । यही उपलब्धि क्या कम थी । मनुष्य अपनी सम्पूर्ण अच्छाई-बुराई, 'गारीरिक पूर्णता अपूर्णता, मानसिक मलिनता-स्वच्छता के साथ सृष्टि का सर्वोत्तम प्राणी है । उसकी सम्भावनाएँ अनंत हैं उसकी 'वित्तियाँ अपरिमय । अस्तित्ववाद की माला जपने मात्र से मानवीय अस्तित्व और उसके बाधित जीवन को अथवत्ता देने की समस्या हल नहीं हो जाती । हमें मिथ्यात्व की चादर को फाड़कर गहराई में जाना ही पड़ेगा ।

आचलिकता । मुझे इस शब्द को सुनकर पहले भी हसी आती थी अब भी आती है । पर पहले इसे सुनकर भाटी की सोधी गच्च से नाक भर जाती थी और अब सुनता हूँ तो लगता है कि किसी चिड़िया बेचनेवाले की दूकान में आ गया हूँ या कि किसी विनेज ब्यूट्रियो शॉप में । मैंने बहुत बार कहा कि भाइयो मैं आचलिक नहीं हूँ । मुझे इस पणत में मत बिठाओ नहीं तुम्हें एक न्तिन लगगा कि जिसे अपना समझत थे वही बेगाना हुआ या कि विश्वास देकर 'सबोटाज' किया । मैंने इस आचलिकता को हमें 'डकोरेसन पोस' की तरह इन्तेमान किया । हमारा मरी कहानियां का यह पलक रहा क्योंकि मेरे पास इनसान के रण बिरण चरित्रों की समस्याएँ और उनकी गहराई की समझने का ही पूरा समय नहीं है फिर यह चिड़ियास्तान और टेपरिकाठ मकहाँ तक छोटा फिरेगा । मैंने आचलिकता से क्या लिया ? प्रकृति उन्म और मायूस जो मेरे चरित्रों के पैरों के नीचे स्थित है । लाकक्याएँ सिर्फ इसलिए कि वे कहीं न कहीं किसी विषय या प्रतीकस जुड़ी हैं जो

मेरी अभिव्यक्ति को उपयुक्त सचेत दे पाएंगी। पर भांगन, चहारतीवारी और जगले जो मनुष्य के मन के प्रतिबिम्ब हैं और मानसिक दृढ़ के समय इनसे छनकर ही वे आवाजें आती हैं, जो इनसानियत का सबन देती हैं। मेरी गांव की कहानियाँ की समस्याएँ चरित्र मानसिक दृढ़, सपथ आचलित नहीं हैं। सावभौम हैं। मने इसे छुआ पररा चित्रित किया सिर्फ इसलिए कि मैं इसे ही अच्छी तरह जान पाया हूँ। मेरी अनुभव परिधि बढ़ेगी तो वह भी आया जिस भाज आचलित नहीं कहा जाता। 'वहाववति, धातामृग, 'वगीकरण' अघकूप, 'भाखें 'ताडोपाट का पुल, 'अपेरा हंसता है' आदि कहानियाँ आचलित नहीं हैं। इन्हें फिर से पढ़ना पड़ेगा तब लगेगा कि इनमें कुछ ऐसा है जो आचलित कहानियों में नहीं होता कुछ ऐसा जो विचारों की प्रगति के अत्याधुनिक मोड़ की छाप से अक्षित है। असल में परेदानी यह है कि हम लोगों को कंटेयरी में रखकर उनको अलग अलग समझने के बटस छुटकारा पासेते हैं। इससे बड़ी सूखता और क्या होगी कि हम मान लें कि चिंतन और विचारों की सूक्ष्मता सिर्फ सहरी कहानियों में होती है। सहरी कहानियों में यह ले आना आसान जरूर है। एक तिरस्कृत डेला, एक उड़ता पत्ता एक बिखरती जीण टहनी, एक काँटी की डाल, एक सूखी हुई छाल, एक गुड़ी मुड़ी गठीली जड़ सबके हाथों में साथ-साथ मिली नहीं बन जाती। अमनी-द्रनाय के पास ये ही निरर्थक उपादान एवं साथ-साथ कला का नमूना बन जाते हैं। तो कला का मूल्यवान् उपादानों की अच्छाई-बुराई के आधार पर करना आलोचक की रिक्तता और खोललेपन का नहीं तो और किसका सबूत है ?

नई कहानी पुरानी कहानी के भगड़े असल में उनके निकट महत्वपूर्ण हैं जो ऊपरी सतह के बीच विवत का चित्रण ही कहानी का उद्देश्य मान लेते हैं। नई कहानी का अर्थ अन्वेषण है मगर किस चीज का अन्वेषण ? नारी के द्रव्यक्रीत शरीर के साथ उद्वेलित मन स्थिति की क्रीडा और वासना का अन्वेषण महत्वपूर्ण है या उस व्यक्ति की वह मन स्थिति जो इससे बाद अपने इस काय की निरुपेक्षता को सोचकर ग्लानि से गलित होती है कौन महत्वपूर्ण है ? एक में बाहरी आवरण की गति है, सहरी के चित्र है बिन्दु खण्डित बिम्बों और बिखराव के साथ व्यक्त किया जाता है दूसरी में जीवित मानवता का सबूत है जिसमें बिखराव नहीं एकाग्रता और सम्पन्नता है। ऐसा ही हाल जीवन के दूसरे कार्यों और क्षेत्रों का भी समझना चाहिए। क्या हम मनुष्य तब होते हैं जब होटल, रस्तरों सड़क भौड़ जनाणव में मटकते घबके खाते, खोसली हँसी हँसते एक-दूसरे को गालियाँ देते अपने मिथ्या ग्रह का विस्फार करते, स्नायुओं की अनगल बातचीत और चाय काफी की उत्तेजना से विक्षिप्त बनते चाबी दिए हुए जापानी खिलौना से हिलते झुलते नजर आते हैं अथवा हम मनुष्य तब होते हैं जब इन सभी विवगताजय कामों से छट्टी पाकर थक थकावट लौटते हैं और जब हमें एक घर न होने की कचोट,

या घर होने पर आत्मीयता न पाने की पीड़ा, तोड़ती सी प्रतीत होती है? अवेपण नारी नारी के बीच समर्पित सम्बन्धों का कि अवेपण उस व्यक्तित्व या चरित्र का जो लबादे की तरह पेसाबखाने की दीवाल पर कील से टांग दिया गया है? अवेपण । यह एक खोखला शब्द मात्र है । मैंने अपनी कहानियाँ में इस ऊपरी मतह की हलचल का अवेपण अवेपण के लिए कभी नहीं किया, इसलिए मेरी कहानियाँ तथाकथित नई कहानी नहीं कहें जा सकती तो न कहें जाएँ । मुझे इसके लिए चिन्ता नहीं । आलोचकों से मिथ्या स्वोक्ति पाने की मुझे परवाह नहीं ।

मनुष्य, जीवन भविष्य । ये प्रश्न शायद आज कोई भय नहीं रखते हम जीवन ऊष्मा के कथाकार न हाकर सत् गतिहीनता को ही अपना आदर्श मान चुके हैं । मेरा अपना एक मत है एक विचारधारा है । मेरी कहानियाँ के चरित्र धातावरण, उद्देश्य सभी इस विचारधारा के भीतर से ही उठें, ऐसा मेरा प्रयत्न रहा है । अब तक यह बात मेरे पाठकों और समीक्षकों को स्पष्ट न हो सकी तो यह मेरी दुर्बलता है । मैंने गाँव से सीम दासी के नये प्रयोग लोककथाओं के टुकड़े अथवा लोकगीतों के बिम्ब चित्र अपनी इसी विचारधारा की पुष्टि और अभिव्यक्ति के लिए चुने । शिल्प की भी स्वाभाविक स्थिति गहरी या तथाकथित आधुनिक कहानियों की अनिवार्य पृष्ठभूमि मान ली गई है । बरगद का पेड़, कवड़े का फूल महए के फूल आर पार की भाला, ताड़ीघाट का पुल, ये किसके पक्ष हैं ? टूटे शीशे की तस्वीर के शिल्प या वा लोगो ने समझे ही नहीं या तो वे मानना चाहते नहीं कि गाँव की आधुनिक कहानियों में भी अद्भुत मौलिक शिल्प हो सकता है ।

इसलिए भाई नेपथ्य भूमि का विवरण देना न देना दोनों बराबर हैं । क्योंकि समसामयिक साहित्य का सही मूल्यांकन विरले लोग ही कर पाते हैं जिनकी दृष्टि सज्जित दायरी से सभी तरह से मुक्त हो । नहीं तो कथाकार को यदि वह अपनी आस्था और विश्वास में जीवित रहा तो प्रतीक्षा ही करनी पड़ती है उन पाठकों की समीक्षकों की निणयदाताओं की जो आज अभी प्राइमरी स्कूलों में पढ़ रहे हैं या भगले वर्षों में पढ़ा होंगे । आप कहें कि नेपथ्य भूमि की बात तो अब भी रह ही गई तो रहने दीजिए । जिन्हें नाटक पसन्द नहीं उन्हें नेपथ्य भूमि का विवरण समझाकर भी क्या लाभ । और मेरे लिए तो यह विवरण देना और भी कठिन है क्योंकि मैं न तो गिरत बाजार से चिन्तित हूँ और न ट्रेड के लिए चमकीले विनापनों में विश्वास करता हूँ । एक बात और । भारत का सामाजिक जीवन क्या अब आगे भी रेस्तराँ के म खोखली हँसी हसने और गप्पबाजी करने समय काटनेवाला तक ही सीमित रह सकेगा ? स्थिरता टूटी है कुछ बसर है तो दूसरे घण्टे के साथ समाप्त हो जाएगी ।

आरकेस्ट्रा के बीच एक अलग आवाज

प्रियदर्मा या युगेन (ऐसा ही कुछ लगता है तुम्हारा नाम) तुमने पूछा है कि एक कहानीकार के रूप में मेरा परिचय क्या है। तुम्हारी यह आवाज कई दृष्टियों से रहस्य से भरी भरी लगी। इसलिए नहीं कि यह अक्सर सुनाई पड़ने वाली उन नगी और बेलीस आवाजों से भिन्न थी जो साहित्यकार से उसका परिचय पूछती नहीं, अपना एक नियम जरूर ला देती हैं बल्कि इसलिए भी कि आज कहानी के वातावरण में अन्ध कीकी, कक्क मधुर, असम्बादी सम्बादी आवाजों का एक ऐसा 'आरकेस्ट्रा' जारी है कि पाठक तो पाठक लेखकों तक ने कान पर हाथ धर लिए हैं और इस स्वर सगम में एक ऐसी आवाज जो कुछ कहने के लिए नहीं कुछ गुनने के लिए उभरी है रहस्य से भरी लगे तो इसमें क्या आश्चर्य। अब देखो न आज की हिन्दी कहानी को लेकर कितना कितना कहा गया और कहा जा रहा है और यह सब कुछ कितना कितना लीला और शोर गरावे से भरा हुआ है। लगता है कि हर आवाज एक दूसरे का गला दबाव के लिए ही जगड़ी-जगड़ी है तान लय से मल करने, साज सजाने सहयोग करने अथवा सम्बादी स्वर बनने के लिए नहीं। इनमें कुछ नय स्वर हैं कुछ पुराने। कई तरह के बाजे भी हैं। बंधुवर इन्द्रनाथ मंगन के पाग इन बाजों की पूरी सूची भी है। और उन्होंने नई कहानी में पिपानो गिटार बासमिन ग्लोब यानी सभी तरह के बाजा की ध्वनि गलियाँ भी तोज निवानी हैं। उनका हिमाव से मेरी कहानियाँ मन्गवाजी हैं यानी मिरगिया बघाकार'। मचता यह है कि यह नाम अगर दना हो है तो मुझ नहीं मेरे मित्र रेणु को मिलना चाहिए यानी रमिरियाकार का। मुझ तो यह बाजा भी भारी ही लगता है। मुझ अगर पसन्द करना ही पड़े तो उस 'गजड़ी गायक' का धुनूँगा जो बाधे पर भिगा की ओनी के साथ साठे में लज्जी भी लज्जा सता है और कभी धान की धानियाँ स धुन्वित मडा म, कभी रबी

पगलो से भरे मेनों की तिरछी डगर में, कभी भनभन करती परती की बालू
 भरी पगडण्डी से बाली छाया की तरह फिसलता हुआ एक गाँव से दूसरे गाँव
 की दूरी नापा करता है। प्यास लगी तो मुँह के पास बठ गया, छक्कर पानी
 पिया, इधर उधर से घाग या भाचिस माँगकर बीड़ी धराई और फिर लागा ने
 माँग की तो बजली, लावागी चती के बोल उभर पड़े। हथेली की गमन से
 मसरे के पास की छोटी भाँके गनक उठी, स्वर और गीत का समा छा गया
 ग्राह एकत्र घटती घरती की माधी गंध ! है न ? पर उस गायक से पूछिए
 तो उसे कौन प्यारी है ? यात्रा या खजड़ी ? खजड़ी खजड़ी कम प्यारी नहा है,
 पर साधन सम्बल ही तो है वह। यात्रा जीवन है, खजड़ी जीवन-संगिनी।

मुझ आगा है कि तुम अब इसके बाग कोई प्रश्न न करोगे। लोग जीवन
 की इतनी रंगीनी भी तुम्हें एक क्षण के लिए घाज के दमघोट वातावरण से
 उठाकर कहीं दूर की पगलो की हरियाली में पहुँचा आ गई होगी, जहाँ तुम
 मान मूढ़कर मरमा की पीली पीली खुनखुदार मोजरा का दुश्य देख रहे होगे
 और बड़े प्रेम से भाचलिक बधावार की धावागी की बगशीन दे रहे होगे।
 वह तुम्हें दुआ देगा, भीम की भोली और खजड़ी सोटे में सटकाकर कंधे पर
 रख लगा और एक लम्बी साँस लेकर किसी दूसरे गाँव की डगर पर चल देगा।

गायक ! तुम्हारी यह खजड़ी खाती क्या है ?' ग्राह, आसिर तुमने वह
 सवाल पूछ ही दिया न ! इसी का तो मुझे डर था। तुम एक अच्छे आदमी
 हो। भले लोग ऐसा सवाल नहीं पूछते भया। जानते हो इस सवाल से क्या
 होता है ? यह सवाल खजड़ी के पत्तों को तोड़ देता है। भाँका को कुचल देता
 है। इस सवाल के उत्तर में क्या गायक को मुसकराकर चुप हो जाना पड़ता है।
 पर ऐसे ही चुप वह पहने नहीं हाता था। कवि बचन के अन्त्यो में —

ओ सरगी साधु से मैं पूछता था,
 क्या इसे तुम हो सिलाते ?

ई हमार करेज साथ और बचवा
 खासकर वे वे बताते।

और मैं मारे हसी के लोटता था
 सोचकर उठता सिंह्र जब
 तब न थी संगीत कविता से,
 कला ॥ प्रीति से मेरी जि हारी।
 याद आते हो मुझे तुम ओ
 लडकपन के सवैरों के भिलारी ॥

हा इसीलिए मैंने कहा कि आगे कुछ पूछना मत। नहीं वो मुश्किल होगी।
 ई मोर करेज साथ सुनकर हमारे आलोचक हसेंगे, क्योंकि भाचलिक कहानी

त उगरी गीत गीत घोर रगाती तब हा गीमिग है । गान्त की घामा म उगरी की तन्मीत वे गरी उठाता बाता । बगति तब ऊपर का तन्मीनित गरी तू जाता है घोर तू तब गाय गेगा गदगा है त्रिमय गद भी हाता है घोर घुमी भी । तब उग सगता है कि यह मोना भाता घामनित बया-गायक मर हो गही है, यह तो भीडा का दगात घोर गममगा भी है । तो बहा यह हमारी बगनीत घोर दुषा का मोन-गात त बरन गय । इगतिग बातर है कि दसात गान-गुतो तब ही घपते की सीमिन रगा जात ।

बया-गायक दस भी गममगा है, पर उमर बहूत की गित्त म बोर् पत गही घाता । यह उमी घुन म तब गीत म दूमरे गीत की घपनी घातरा यात्रा जारी रगता है । उमी प्रकार बया-हारा बद् कुमी न पाग बत्तर पानी पीता है घोर उती प्रकार घरा गीत का सारा द् घिताय हुन मुगतरावर गज्जो पर घाय देता है उगरी घावाड ॥ महत् तब म तब हाती जाती है घोर उगर् द् गिद गीत न घायल भीरा न भुण्ड बारा तरफ मँडरात रता है ।

नितती घलग घात हैं हमारी यात्राए । यानी हर यात्रित का तब घलग पय है घपना तब घलग घनुभव है । तेम ही वय तेमी ही यात्राए घजाने बाल से होती आ रही है घोर होनी रहेंगी । पर हमारे इन घलग घलग पया की समेटवर तब तामष्टिपय भी घनता है घोर यात्रा बहाँ भी हाती है । यहाँ यात्रित हाता है मनुष्य, सागा यघो स सास्त्रित यात्रा म सगा हुमा मनुष्य । मनुष्य घाज बाफी लम्बी यात्रा तय कर चुका है । है त ? पर बया हमारे समानातर ही ऐस घाव वय नगी हैं जिा पर घाने घाने यात्रित बहूत पीछे छूट गए हैं जो रास्ते की हर मुदिशन स जम्हने हुन गिर गिर पडते हुन पुन उठकर विरोधा स टकराते हुन भाग बड़ने की बागिंग कर रहे हैं हाँ इहें घाय जो भी नाम दे लें सामाजिक रूप से पापघोवी राजनीतिक रूप से 'पिछडा हुमा । पर सच यत्ि आपकी मनुष्य जानि की महत् यात्रा के सभी मोडो की सही परिप्रेक्ष्य म देखना है तो इनकी घलग घलग यात्रा घोर पय की बाधाघो से जूझती इनकी आत्मा की घावाड भी सुननी होगी । इसी घावाड का तकाजा घा कि मैंने नये मुसहरो बज्जो डोम तथा घनक बायाबरीय बबीलो पर घनेक बहानियाँ लिखी । इह भी इतजार है — बहानी सग्रह को पत्कर जय गुग्गर हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा कि तुमने घदमुन ससार को प्रत्यक्ष कराया । सुभागी नहो विहरिया कबरी दीनू फुनन मियाँ, सिजोगी, लहरी जगिया पण्डित घूरेलाल आदि सचमुच इतजार मे थे तो मुझे लगा कि व्यक्तितगत यात्रा मे पीछे लौटकर सडखडाते सहयात्रियो को घाम लेना, उनके सुख दुख मे हस रो लेना भी एक पवित्र काय है ।

किन्तु बया बहि यात्रा म ही लोग समय और अवसर के इतजार मे

बैठे हैं ? भीतरी यात्रा, अन्त यात्रा में क्या कोई किसी के इत्तजार में नहीं है ? किसी दिन सामान्य रूप से माने जाने वाले ढंग-ढरें से प्रतिकूल किसी सहज काम के होने पर अनुभूति की जो रोगिनी उठती है, क्या वह उस बल से नहीं आती जो अभी जलने के इत्तजार में था ? समझ हरेक राज को मगर फरेव खाये जा की अनुभूति से क्या कहीं भीतर की अवचेतना का कोई अछूता 'बल्व' नहीं जल उठता ? क्या हर मनुष्य के मन की नाना पतों में भाव-बोध, ईश्वरिक साक्षात्कार और आत्मिक दानियाँ के अत्यन्त प्रकाशपूर्ण बल्व नहीं छिपे हैं ? और क्या इन नाना पतों को बेघती कभी परिधि पर चक्कर लेती, कभी केन्द्रो मुख सत्तरण करती बुद्धि की यह अन्त यात्रा किसी माने में वह यात्रा से कम आकर्षक और महत्वपूर्ण है ?

और फिर इन यात्राओं के पथ क्या देशकालातीत समानांतर ही हैं ? या वे एक-दूसरे को वहीं काटते भी हैं ? क्या नाग जाति वण भाषा में बँटी मनुष्यता के इन अनेक यात्रापथों की कहीं तिमुहानी चौमुहानी भी है या नहीं ? नया पुराना, आधुनिकता परम्परा, आदर्श-यथाय, ये सभी कुछ तो नाम हैं इन तिमुहानियों चौमुहानियों के । है न ? फिर क्या आज का युग बोध इतना सीधा है कि उस किंचित में बाँधकर कह दिया जाए ?

हाँ, तो मुना इन कहानियों को लिखते समय ये सभी प्रश्न ये सभी मोड़ मरो चेतना में उपस्थित ही नहीं थे, सजग थे । इसलिए इन कहानियों को उम ढंग से मत पढ़ो जैसे आबलिक कहानियों को पढ़ने की शिक्षा दी जाती रही है । नहीं तो तुम्हें बिदा महाराज, पापजीवी इहे भी इत्तजार है शाखामग बहाववस्ति आदि कहानियाँ सिर्फ वगमत चरित्रों का स्क्व सगेंगी और नहीं, मरहला, खेल कज बीच की दीवार आदि कहानियाँ भारी प्रतीत होने लगेंगी । एक को पढ़कर लगगा कि किसी समाजशास्त्री के अनुसंधान कक्ष में घा गए हो और दूसरी को पढ़कर लगगा कि इसमें न धरती की सुवास है न पीतो की गमक ।

कितनी कहानियाँ लिखी हैं ? हाँ ज्यादा नहीं, जो कहानी भगले हपत पडोगे वह बिस्मूल ताजी है और यह अटछावनवी कहानी है ।

तो इह पढ़ते वक्त एक सजग यात्रिक की तरह क्याकार के साथ चलो यही उसकी प्रायना है यही उसकी आरजू । मगर मैं पहले से बताए देता हूँ कि मैं चौमुहानी या तिमुहानी पर कुछ देर रुकने के ता पक्ष में हूँ, पर तुम वहाँ की चाकचिक्य में यदि विलग रहोगे तो मैं लाचार होकर चल पड़ूँगा क्योंकि मेरा रास्ता तिमुहानी या चौमुहानी से गुजरता जरूर है पर वहाँ खरम नहीं होता ।

'ता इधर घमयुग में जो खेल-कहानियाँ आदि किसी शिवप्रसादसिंह की

निवारी हैं वे क्या आप ही की हैं ?”

‘जी।’

‘मानी कीतिलता और मूग्घन ब्रजभाषा वाले शिवप्रसादसिंह की ?’

‘हां।’

‘अच्छा !’ थोड़ा आश्चर्य, थोड़ी हैरानी, थोड़ी निराशा से मेरी ओर देखा था उस दिन डा० उदयनारामण तिवारी ने। हिंदी विभाग में यह बात-चीत चली थी उनसे। डा० तिवारी का मुँह पर स्नेह है। उन्हें जहर लगा होगा कि कहानियाँ बहानियाँ लिखकर यह समय खराब कर रहा है। मुझे कोई गुरु गम्भीर शोध काय करना चाहिए।

एक मित्र है जो मुझे ‘मोरियण्टलिस्ट’ कहते हैं। और इस तरह अपराधी की तरह सिर झुका लते हैं गोया मुझे कम्युनिस्ट कह दिया हो।

जाने कैसे लोग ने यह बड़ मूल धारणा बना ली है कि किसी चायघर या काफी हाउस में गम गम पानी से बलेजे की झटकर चारमीनार सिगरेट के बड़ब धुएँ से फेफड़े को खरखरा कर, सुबह से शाम तक सड़को पर मटरगस्ती करने या सम्पादक के पास बैठकर गप्पें हाँकने से ही अच्छी कहानी निकलती है। कुछ और दूसरे भी हैं जो यह माने बैठे हैं कि ये हल्की फुल्की चीजें यानी कहानी बहानी उन्हें लिखना चाहिए जो अध्ययन और श्रम से परहेज रखते हो, यानी दिमागी कामों के काबिल न हो।

सच मुझे उस समय बड़ा अचम्भा होता है जब निहाई पर लोहा पीटने वाले धूरे भिल्ली की हारमुनियम बजाते देखता हूँ। कुदाल की मार से बजर पथरीली धरती तोड़नेवाले भीखम चाचा सतपुतिया के फूलों की या सहलाते थे जैसे पालतू खरगोश के कान में स धून झाड़ रहे हो। यदि मैं जंगल की सप्त लकड़ियों को टंग की चोट से छिलगान वाले टीमलमुसहर से कहूँ कि मल ग्रामी झाल की धूँ की अपनी पथरीली उँगलियाँ से ऐसी मुलायमियत से बसो झाड़ रहे हो तो वह क्या सोचेगा ? जाने क्यों गिरघारी मुनीम को मैं अपना ग्राम नहीं मान पाता जो दूकान से ग्रामर चारों खाने चित गिर जाता है और खाने के लिए जगानेवाली मामूम धीवी पर बरस पड़ता है। न ही सहरीसिंह को ही जा कीन्तार झूट पहनकर मटरगस्ती करते हैं और चारपाई पर लटकर अपने खाली जब को नय युग या आधुनिकता का तवाजा बहरार युद्ध का स गोप दत्त रहते हैं।

‘आप भी भोलू चौधरी खूब हो अरे भल ग्रामी तालाब में इतनी सुन्दर जलकुम्भी लगा’ तो उमर तट पर य नामगता क्या रुध निया ?

भोलू चौधरी मरी आर या दगन हैं गोया मैं बिल्कुल नामान हूँ क्या इसमें अचम्भ की क्या बात है ? दगन नहीं जितने खूबसूरत गवर्नर पून जितने

हैं ? बाड न बनाऊ तो क्या इन्हें गाव की भैंसी को चरने के लिए छोड़ दूँ और फिर वे चरती ही तो नहीं भैया, इसमें हेलकर पानी को गदला कर देती हैं और मदिया मारकर बैठ जाती हैं ।”

शकापुत्र बनाम अनास्था के बटे । यह शिखरा का सेतु के एक निबन्ध का शीर्षक है । वही से यह एक परिच्छेद भी उद्धृत कर रहा हूँ ।

‘साहित्यकार इन सबसे असह्य ‘इकाई’ तो नहीं है । वह खुद इस पागल तंत्र और उच्छल चक्र के नीचे पिसता है । दूर से बैठकर आस्था और सदेह होनेता की बात तो स्वयंभू आलोचक ही करता है, सजक अपनी पीड़ा को चाहकर भी नहीं भूल सकता । बस उसके लिए एक ही रास्ता है, वह है आत्म-विश्वास और अपनी ईमानदारी में आस्था । इसी के बल पर शका सदेह, अनिश्चितता, अताकि जीवन के बीच वह अपनी कला के माध्यम से सहसा लोका तक जीवन का सदेश पहुँचा सकता है । वह अपने दुःख और सुख को सबके दुःख और सुख के साथ मिलाकर जी सकता है ।’

शिखरा का सेतु पुस्तक की समीक्षा लिखते हुए मेरे आदरणीय मित्र डॉ० प्रभाकर माधवे ने लिखा था— शिवप्रसादसिंह भावसवाद की आर्थिक मजदूरियों से परिचित हैं, वे अस्तित्ववाद की गहन निराशा भरी ‘नो एम्बिट’ वाली विवशता से भी परिचित हैं—य सीमाओं को जानकर भार पार देखना चाहते हैं । वे सचेतन रूप से अवचेतन में अवगाहन करते हैं यही उनकी आधुनिकता है । सच तो यह है कि मैंने कभी भी किसी बाद या दशन को साहित्य का आवरण नहीं बनाया है । मैं ऊपर से लादी हुई आस्था का उतना ही विरोधी हूँ जितना आत्मघाती निशाहीन अनास्था का । मैं मानता हूँ कि परम्परा को जानकर उसके अवाञ्छित तत्वों को अस्वीकार करना आस्था है क्योंकि तब वहाँ सञ्ज्ञान अस्वीकृति का भी एक सम्बन्ध होता है । नतिकता को जानकर उसके आडम्बर को तार तार कर देना आस्था है, पर मैं यह भी मानता हूँ कि परम्परा को बिना जाने उसे अस्वीकार करने का प्रयत्न ढोंग है । नतिकता, आस्था या सत्कृति को बिना समझे उससे कतराने का प्रयत्न लोखलेपन का घोटक है । मैं साहित्य को आत्म अन्वेषण की प्रक्रिया मानता हूँ और मेरा विश्वास है कि मनुष्य मात्र स्वभावतः चरम अनास्था का विरोधी है ।

बहुत पहले की बात है । एक कवि या जान क्लेयर । लोगो ने उसे पागल समझा और वह पागलखाने में बन्द कर दिया गया । उसी पागलखाने में, काली दमघोट बाहरदीवारी के भीतर सभी प्रकार की घुटन पीड़ा आत्मविदीनता विश्रुतलता के बीच उमने सत्य को एक रोगनी पाई और अपने को पहचान सका ।

अपनी सभी विपदाओं का मैं ही स्वयं भोगता हूँ—

आत्महारा । फिर भी मैं जिंदा हूँ ।

सी जुगुप्सा, तिरस्कार शोरगुल
कुछ न होने के निरपेक्ष से न
जीवन की खुशियों का कट
बड़ा है ।

काली से काली रात्रि के भीतर विडम्
भुक्ति की यह चेतना ही कलाकार की उप
"यह मुर्दा सराय और पाशवर्ती पी
'मुर्दा सराय, उस कहानी का शीप
वर्ती पीपल और कुछ नहीं अब सचेत अ
की सारी मुदनी को शका से ग्राह्य करत
"तो क्या यह कोई अस्तित्ववादी क
'मैंने कहा न कि मेरी कहानियों को
पढ़ना ठीक नहीं है, और फिर क्या मुर्दा
है ? '

आशा है तुम मेरी कहानी को बिल्कुल
पढ़ोगे और मुझे बताओगे कि यह तुम्हें क
बस ।

खी जुगुप्सा, तिरस्कार शोरगुल के,
' कुछ न होने के निरर्थक से भाव मे
! जीवन की खुशियों का कुछ भी भ्रम नहीं होता
बढ़ा है ।

काली से काली रात्रि के भीतर विडम्बना ग्रस्त जीवन की मुक्ति में
मुक्ति की यह चेतना ही कलाकार की उपलब्धि होती है ।

“यह मुर्दा सराय और पार्श्ववर्ती पीपल क्या है ?”

‘मुर्दा सराय, उस कहानी का शीपक है जो तुम भगते हफते पढ़ोगे । पार्श्व
वर्ती पीपल और कुछ नहीं एक सचेत असंपत्त द्रष्टा मात्र है जो अपने दृढ़ गिर्द
की सारी मुदनी को शका से ग्रहित करते रहने में ही संतोष पाता है ।’

“तो क्या यह कोई अस्तित्ववादी कहानी है ?”

‘मैंने कहा न कि मेरी कहानियाँ को किसी बाद के चश्मे के भीतर से
पढ़ना ठीक नहीं है, और फिर क्या मुर्दा सराय में अस्तित्ववाद ज़िंदा बचता
है ?”

आशा है तुम मेरी कहानी को बिल्कुल निष्पक्ष और स्वच्छंद भाव से
पढ़ोगे और मुझे बताओगे कि यह तुम्हें कसी लगी ।

बस ।

